21वीं सदी के हिंदी निबंधों में सांस्कृतिक चेतना

(2000 से 2018 ई. के मध्य प्रकाशित निबंधों के सन्दर्भ में)

21 VI SADI KE HINDI NIBANDHON ME SANSKRITIK CHETNA

(2000 SE 2018 E. KE MADHY PRKASHIT NIBANDHON KE SANDRBH ME)

A Thesis

Submitted in partial fulfillment of the requirements for the award of the degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY
in

(Ph.D. Hindi Part Time)

By

Manpreet Singh
(41700072)

Supervised By

Dr. Vinod Kumar

Transforming Education Transforming India

LOVELY PROFESSIONAL UNIVERSITY
PUNJAB

2021

समर्पण

माता पिता को

जिन्होंने जन्म दिया

गुरुजन को

जिन्होंने समय को समझने के लिए

दृष्टि दी

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि शोधार्थी मनप्रीत सिंह ने '**21वीं सदी के हिंदी निबंधों में सांस्कृतिक चेतना (2000 से 2018 ई. के मध्य प्रकाशित निबंधों के सन्दर्भ में)**' विषयक शोध प्रबंध मेरे निर्देशन में स्वयं लिखा है। इसकी सम्पूर्ण सामग्री शोधपरक एवं मौलिक है। मैं इस शोध प्रबंध को लवली प्रोफैशनल यूनिवर्सिटी, फगवाड़ा, पंजाब की पीएच. डी. हिन्दी की उपाधि हेतु मूल्याँकनार्थ प्रस्तुत करने की संस्तुति करता हूँ।

दिनांक : 05-01-2021

(डॉ. विनोद कुमार)
एसोसिएट प्रोफेसर,
समाज विज्ञान एवं भाषा संकाय,
लवली प्रोफैशनल यूनिवर्सिटी, फगवाड़ा, पंजाब

घोषणा - पत्र

मैं मनप्रीत सिंह शोधार्थी पीएच. डी. हिन्दी सत्य व निष्ठापूर्वक प्रमाणित करता हूँ कि '**21वीं सदी के हिंदी निबंधों में सांस्कृतिक चेतना (2000 से 2018 ई. के मध्य प्रकाशित निबंधों के सन्दर्भ में)**' विषय पर किया गया शोध मेरा मौलिक शोध कार्य है। प्रस्तुत शोध प्रबंध लवली प्रोफैशनल यूनिवर्सिटी, फगवाड़ा, पंजाब की पीएच. डी. हिन्दी की उपाधि हेतु किया गया है। यह शोध **डॉ. विनोद कुमार** एसोसिएट प्रोफेसर, स्कूल ऑफ़ समाज विज्ञान एवं भाषा संकाय, लवली प्रोफैशनल यूनिवर्सिटी, फगवाड़ा, पंजाब के निर्देशन में पूरा किया गया है।

मैं यह भी प्रमाणित करता हूँ मेरे द्वारा किया गया प्रस्तुत शोध प्रबंध आंशिक अथवा पूर्ण रूप से किसी अन्य उपाधि के लिए अन्य किसी विश्वविद्यालय को प्रस्तुत नहीं किया गया है।

दिनांक : 6-12-2020

Manpreet

मनप्रीत सिंह (शोध छात्र)

पंजीयन संख्या : 41700072

समाज विज्ञान एवं भाषा संकाय,

लवली प्रोफैशनल यूनिवर्सिटी, फगवाड़ा, पंजाब।

प्राक्कथन

जब से मेरा हिन्दी साहित्य से सम्पर्क स्थापित हुआ, निबंध विधा ने मुझे सर्वाधिक आकर्षित किया है। रुचि का विषय होने के कारण पिछले कई वर्षों से वर्तमान हिन्दी निबंधों का अध्ययन करता रहा हूँ। सौभाग्य से शोध-निर्देशक एवं हिंदी विभाग ने मुझे अपनी रुचि के अनुसार इस विधा को चुनने को कहा, तो मैंने **"21वीं सदी के हिन्दी निबंधों में सांस्कृतिक चेतना (2000 से 2018 ई. के मध्य प्रकाशित निबंधों के सन्दर्भ में)"** विषय पर शोध कार्य करने का निश्चय किया।

साहित्य और समाज का बहुत गहरा सम्बन्ध है। जब हम किसी समाज में जन्म लेते हैं, तो साहित्य से ही हमें ज्ञान प्राप्त होता है, यह हमारे जीवन का आवश्यक अंग है। साहित्य से समाज है और समाज से साहित्य है, इसलिए यह दोनों का गहरा सम्बन्ध है। वर्तमान समय में प्रचलित समस्याओं पर 21वीं सदी के निबंधों का अध्ययन करते हुए, समस्याओं का साहित्य के द्वारा निराकरण करना ही हमारे शोध का उद्देश्य है। साहित्य के अतिरिक्त दूसरा कोई उपादान नहीं है जो इन समस्याओं का निराकरण कर सके।

प्रथम अध्याय 'भूमिका' में हिन्दी निबंध और ललित निबंध का अर्थ और स्वरूप तथा संस्कृति, चेतना और सांस्कृतिक चेतना का अर्थ स्वरूप और परिभाषा पर प्रकाश डाला गया है, साथ ही संस्कृति के प्रमुख आयाम जो कि वर्तमान के निबंधों में भी प्रस्तुत हैं- धर्म और नीति, भक्ति और दर्शन, कला, समाज और राजनीति, सभ्यता, प्रकृति को निरूपित किया गया है।

द्वितीय अध्याय 'हिन्दी निबंध परम्परा और सांस्कृतिक चेतना' में निबंध के इतिहास को विवेचित किया गया है। भारतेन्दु युग से लेकर शुक्लोत्तर युग तक के

प्रमुख निबंधकारों की सांस्कृतिक चेतना पर विचार और उनके समय की स्थितियों और संस्कृति का वर्णन किया गया है।

तृतीय अध्याय '21वीं सदी के हिन्दी निबंधों में सांस्कृतिक चेतना : भक्ति और दर्शन पक्ष' में भक्ति और दर्शन का अर्थ स्वरूप और परिभाषा का वर्णन किया गया है। भक्ति और एकता को दर्शाते हुए पुरातन काल और वर्तमान काल की तुलना की गई है। 21वीं सदी के निबंधों में एकता और भक्ति को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारणों का वर्णन किया गया हैं। वर्तमान में हमारी एकता और देश-भक्ति और दर्शन को विवेचित किया गया है। इन समस्याओं के निराकरण के आवश्यक वर्तमान गुण दर्शाए गये हैं।

चतुर्थ अध्याय '21वीं सदी के हिन्दी निबंधों में सांस्कृतिक चेतना : धर्म और नीति पक्ष' में धर्म के अर्थ स्वरूप और परिभाषा, नीति के अर्थ स्वरूप और परिभाषा का वर्णन किया गया है। धर्म और नीति संस्कृति के प्रमुख घटक माने जाते हैं। इसके उपरांत धर्म और धर्मनिरपेक्षता, विज्ञान और धर्म, धर्म और राजनीति, धर्म और संस्कृति, धर्म एकता का माध्यम, अंधविश्वास, दान, उत्सव-पर्व-त्यौहार एवं मेले, दया भावना की विवेचना की गई है। इन्हीं बिन्दुओं पर 21वीं सदी के निबंधकारों द्वारा किये गये प्रयासों को स्पष्ट किया गया है। वर्तमान में इन समस्याओं से छुटकारा पाने के लिए हमें क्या प्रयास करने चाहिए, 21वीं सदी के निबंधों के द्वारा इसको स्पष्ट किया गया है। जिसमें हमें सफलता हासिल हो सके।

पंचम अध्याय '21वीं सदी के हिन्दी निबंधों में सांस्कृतिक चेतना : सामाजिक और राजनैतिक पक्ष' में समाज का अर्थ और परिभाषा, राजनीति का अर्थ स्वरूप और परिभाषा, को विवेचित किया गया है। इस अध्याय में समाज और राजनीति, पारिवारिक संबंध, नारी की स्थिति, सामाजिक जीवनमूल्यों की प्रतिष्ठा, बाजारवाद,

प्रकृति और पर्यावरण, वर्तमान राजनीतिक दशा, वैश्वीकरण, भ्रष्टाचार, स्वार्थ-भावना को विवेचित किया गया है, और 21वीं सदी के निबंधकारों द्वारा किये गये प्रयासों को स्पष्ट किया गया है। वर्तमान में हमारे समाज और राजनीति को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारकों का वर्णन किया गया है। समाज और राजनीति को पुष्पित करने वाले आवश्यक गुणों का वर्णन किया गया है।

षष्ठ अध्याय '21वीं सदी के हिन्दी निबंधों में सांस्कृतिक चेतना : लोक जीवन एवं सांस्कृतिक पक्ष' में वर्तमान में हमारे बदलते सांस्कृतिक मूल्यों को इस अध्याय में प्रस्तुत करते हुए, निबंधकारों के प्रयासों को स्पष्ट किया गया है। हमारे जीवन के तहस-नहस होते मूल्यों का यहाँ वर्णन किया गया है। साथ ही आज जो बिंदु हमारे जीवन को प्रभावित करते हैं, उन बिन्दुओं को यहाँ विवेचित किया गया है। लोक संस्कृति, लोकजीवन, लोकगीत और लोकपरंपराएँ, ग्रामीण एवं शहरी संस्कृति, वर्तमान सांस्कृतिक जीवन, संस्कार और संस्कृति, कला और विरासत, रीति-रिवाज, शैक्षिक स्थिति, उतर-आधुनिकतावाद को 21वीं सदी के हिन्दी निबंधों के परिपेक्ष्य स्पष्ट किया गया है।

सप्तम अध्याय '21वीं सदी के हिन्दी निबंधों में सांस्कृतिक चेतना : व्यावहारिक पक्ष' में प्रमुख संकेतिक निवारण बिन्दुओं का व्यावहारिक दृष्टि से अध्ययन किया गया है। विभिन्न व्यक्तियों से बात-चीत करने पर हमें वर्तमान समय के प्रमुख निवारण बिन्दुओं का पता चलता है, साथ ही कौन से कारक आज मानवीय जीवन को प्रभावित कर रहें हैं, उनका भी पता चलता है। किसी भी विषय के बारे में हर व्यक्ति का अपना अलग दृष्टिकोण होता है। इसी तरह हमने अपने अनुसंधान में विभिन्न व्यक्तियों से बात-चीत करते हुए प्रमुख निवारण बिन्दुओं को विवेचित किया है।

शोध प्रबंध के उपर्युक्त अध्यायों के पश्चात अंत में **'उपसंहार'** दिया गया है। सर्वप्रथम मैं इस शोध प्रबंध के निर्देशक परमपूज्य गुरुवर **डॉ .विनोद कुमार** हिन्दी विभाग, एसोसिएट प्रोफेसर, समाज विज्ञान एवं भाषा संकाय, लवली प्रोफैशनल यूनिवर्सिटी, फगवाड़ा, पंजाब के प्रति हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ, जिनकी महती प्रेरणा और मार्गदर्शन के फलस्वरूप ही इस शोध प्रबंध को सम्पन्न करने में सफल हो सका हूँ। संसार में आप के पास कुछ भी न हो लेकिन अगर आपको गुरु का सही निर्देशन मिल जाए तो सफलता तक पहुँचने में कोई उलझन नहीं महसूस होती। यह मेरा सौभाग्य रहा, जो मुझे पिता तुल्य गुरुवर का मार्गदर्शन प्राप्त हुआ। उनसे समय-समय पर जो उत्साह, स्नेह व सहयोग प्राप्त हुआ, वह अविस्मरणीय है। मैं पूरे विभाग के अन्य गुरुजनों के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, जिन्होंने समय-समय पर अपने अमूल्य सुझाव और दिशा-निर्देश प्रदान कर मेरा मार्गदर्शन किया।

अपने इस शोध कार्य में मुझे जिन आत्मीयजनों का सहयोग प्राप्त हुआ है, मैं उनके प्रति भी आभार प्रदर्शन करता हूँ। सर्वप्रथम मैं अपने माता-पिता और बड़े भाई के प्रति स्नेह, सहयोग एवं प्रोत्साहन के लिए जितना भी कहूँ, कम ही होगा। सभी परिवार के सदस्यों के प्रति मैं आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने मुझे यहाँ तक पहुँचाने में अपना पूरा सहयोग दिया है।

Manpreet

मनप्रीत सिंह (शोध छात्र)

विषयानुक्रमणिका

प्रस्तावना

प्रथम अध्याय : सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि

1.1. निबंध का अर्थ, परिभाषा एवं प्रकार

1.2. संस्कृति का अर्थ और परिभाषा

1.3. चेतना का अर्थ और परिभाषा

1.4. सांस्कृतिक चेतना का अर्थ और परिभाषा

1.5. संस्कृति के विविध आयाम

1.5.1. प्रकृति और संस्कृति

1.5.2. धर्म और संस्कृति

1.5.3. सभ्यता और संस्कृति

1.5.4. साहित्य और संस्कृति

1.5.5. समाज और संस्कृति

1.5.6. कला और संस्कृति

1.5.7. परिवार और संस्कृति

1.5.8 जीवन मूल्य और संस्कृति

निष्कर्ष

द्वितीय अध्याय

हिन्दी निबंध परम्परा और सांस्कृतिक चेतना

2.1. भारतेन्दु युग के प्रमुख निबंधों में सांस्कृतिक चेतना

2.1.1. धर्म और नीति पक्ष

2.1.2. सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक पक्ष

2.2. द्विवेदी युग के प्रमुख निबंधों में सांस्कृतिक चेतना

2.2.1. धर्म और नीति पक्ष

2.2.2. सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक पक्ष

2.3. शुक्ल युग के प्रमुख निबंधों में सांस्कृतिक चेतना

2.3.1. धर्म और नीति पक्ष

2.3.2. सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक पक्ष

2.4. शुक्लोतर युग के प्रमुख निबंधों में सांस्कृतिक चेतना

2.4.1. धर्म और नीति पक्ष

2.4.2. सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक पक्ष

निष्कर्ष

तृतीय अध्याय

21वीं सदी के हिन्दी निबंधों में सांस्कृतिक चेतना : भक्ति और दर्शन पक्ष

3.1. भक्ति और दर्शन का स्वरूप

3.2. ब्रह्म और जगत

3.3. माया और जीव

3.4. मोक्ष

3.5. वर्तमान काल में भक्ति चिन्तन

निष्कर्ष

चतुर्थ अध्याय

21वीं सदी के हिन्दी निबंधों में सांस्कृतिक चेतना : धर्म और नीति पक्ष

4.1. धर्म पक्ष

4.1.1. धर्म का अर्थ स्वरूप और परिभाषा

4.1.2. धर्म और धर्मनिरपेक्षता

4.1.3. विज्ञान और धर्म

4.1.4. धर्म और राजनीति

4.1.5. धर्म और संस्कृति

4.1.6 धर्म एकता का माध्यम

4.2. नीति पक्ष

4.2.1. नीति का अर्थ स्वरूप और परिभाषा

4.2.2. अंधविश्वास

4.2.3. दान

4.2.4. उत्सव-पर्व-त्यौहार एवं मेले

4.2.5. दया-भावना

निष्कर्ष

पंचम अध्याय

21वीं सदी के हिन्दी निबंधों में सांस्कृतिक चेतना : सामाजिक और राजनैतिक पक्ष

5.1. सामाजिक पक्ष

5.1.1. समाज का अर्थ स्वरूप और परिभाषा

5.1.2. समाज और राजनीति

5.1.3. पारिवारिक संबंध

5.1.4. नारी की स्थिति

5.1.5. सामाजिक जीवनमूल्यों की प्रतिष्ठा

5.1.6. बाजारवाद

5.1.7. उतर-आधुनिकतावाद

5.1.8. प्रकृति और पर्यावरण

5.2. राजनैतिक पक्ष

5.2.1. राजनीति का अर्थ स्वरूप और परिभाषा

5.2.2. वर्तमान राजनीतिक दशा

5.2.3. वैश्वीकरण

5.2.4. भ्रष्टाचार

5.2.5. स्वार्थ-भावना

5.2.6. देश-भक्ति

निष्कर्ष

षष्ठ अध्याय

21वीं सदी के हिन्दी निबंधों में सांस्कृतिक चेतना : लोक जीवन एवं सांस्कृतिक पक्ष

6.1. लोक जीवन पक्ष

6.1.1. लोक संस्कृति

6.1.2. लोकजीवन

6.1.3. लोकगीत और लोकपरंपराएँ

6.1.4. ग्रामीण एवं शहरी संस्कृति

6.2. सांस्कृतिक पक्ष

6.2.1. वर्तमान सांस्कृतिक जीवन

6.2.2. संस्कार और संस्कृति

6.2.3. कला और विरासत

6.2.4. रीति-रिवाज

6.2.5. शैक्षिक स्थिति

6.2.6. राष्ट्रीय एकता

निष्कर्ष

सप्तम अध्याय

21वीं सदी के हिन्दी निबंधों में सांस्कृतिक चेतना : व्यावहारिक पक्ष

7.1. राष्ट्रीय एकता का व्यावहारिक अध्ययन

7.2. देश भक्ति का व्यावहारिक अध्ययन

7.3. धर्म और धर्मनिरपेक्षता का व्यावहारिक अध्ययन

7.4. अन्धविश्वास और दान का व्यावहारिक अध्ययन

7.5. त्यौहार एवं दया भावना का व्यावहारिक अध्ययन

7.6. पारिवारिक संबंध और नारी की स्थिति का व्यावहारिक अध्ययन

7.7. जीवनमूल्य, बाजारवाद एवं पर्यावरण का व्यावहारिक अध्ययन

7.8. वर्तमान राजनीतिक दशा का व्यावहारिक अध्ययन

7.9. लोकगीत और लोकपरम्पराओं का व्यावहारिक अध्ययन

7.10. वर्तमान सांस्कृतिक जीवन का व्यावहारिक अध्ययन

निष्कर्ष

उपसंहार

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

आधार ग्रन्थ सूची

कोश ग्रन्थ

सहायक ग्रन्थ सूची

पत्र-पत्रिकाएँ

परिशिष्ट

i प्रस्तावना

मनुष्य जीवन-संघर्षों में सीमित रहने वाला प्राणी मात्र न होकर सामाजिक संस्कृति का निर्माता है। संस्कृति मानव जीवन की ऐसी अवधारणा है, जो उसे गतिशील बनाए रखने का उद्यम करती है। एक ऐसा पर्यावरण है, जिसमें रहकर मनुष्य एक सामाजिक प्राणी बनने के साथ-साथ प्राकृतिक दशाओं को अपने अनुकूल बनाने की क्षमता प्राप्त करता है। यह उसी क्षमता का परिणाम है कि कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी मनुष्य स्वयं को परिवर्तित करते हुए, समयानुकूल ढल जाता है।

मानव में सृष्टि के प्रारंभ से ही जीवन जीने की आकांक्षा उत्पन्न हुई और इस जीवन के सुखद क्षणों की खोज में वह सदा से प्रवृत्त रहा है। प्रकृति के द्वारा दी गयी सुविधाओं से संतुष्ट न रहकर, वह अधिक से अधिक वस्तुओं को अपने लिए उपयोगी बनाने में सदैव प्रयत्नशील रहा है। सामाजिकता के संरक्षण में पुष्पित एवं पल्लवित होने वाली भावभूमि पर यह मनुष्य का सांस्कृतिक जीवन है। प्रकृति अन्य प्राणियों को जैसा रखना चाहती है, वह वैसे ही रहते हैं, परन्तु मनुष्य अपना विकास करने के लिए दूसरे जीवधारियों से अधिक प्रयत्न करता आया है।

चेतना मनुष्य के मस्तिष्क में क्रियाशील और गतिशील भावावेग बोध की प्रक्रिया है। इसी के माध्यम से व्यक्ति, निरीक्षण, चिंतन, शंका, तर्क-ज्ञान और इच्छा से सम्बन्धित मानसिक स्वरूपों से परिचित होता है और निश्चित समय में अपने मानस में चलने वाले घात-प्रतिघातों को परख सकता है। मनुष्य की चेतना इस बात पर निर्भर करती है कि व्यक्ति के अन्दर सोच-शक्ति, विचार-शक्ति, संचित-शक्ति, चिंतन-शक्ति विद्यमान है और वह इनका प्रयोग कर सकता है। चेतना वह विशेष गुण है, जो मनुष्य को जीवन प्रदान करती है; जिसके द्वारा वास्तविकता व्यक्त होती है और

जीवन के विभिन कार्य चलते रहते हैं। आन्तरिक बोध द्वारा विचार, रुचि, मन और आचरण का परिष्कार एवं उन्नत करने की प्रक्रिया सांस्कृतिक चेतना है।

प्रस्तुत शोध मानव जीवन की इसी संस्कृति पर आधारित है, जो भारतीय संस्कृति और मानव जीवन की दिशा और दशा को निर्धारित करने वाला एक निर्देश भी है। आज वर्तमान में हमारे देश के अंतर्गत बहुत सी सांस्कृतिक समस्याओं की भरमार है, जो हमारे राष्ट्र की कमर तोड़ रही है। स्वतन्त्रता के समय जब हमने संविधान स्वीकार किया था उस समय का भारत और आज के भारत में बहुत बदलाव आ चुका है। दलीय-प्रतिबद्धता, पारिवारिक सम्बन्ध, बाजारवाद, पर्यावरण, पति-पत्नी सम्बन्ध, विवाह समस्या, कृषि, मजदूरों का जीवन, बाल विवाह, विधवा विवाह, सास-बहु सम्बन्ध, बदलते नैतिक मूल्य और सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक बहुत सी समस्याओं की भरमार है। इन सभी समस्याओं को आधार बनाकर वर्तमान में "21वीं सदी के हिन्दी निबंधों में सांस्कृतिक चेतना (2000 से 2018 ई. के मध्य प्रकाशित निबंधों के सन्दर्भ में)" विषय पर शोध करने का प्रयास किया गया है। जिसमें वर्तमान समाज को एक नई दिशा और दशा प्रदान की जा सके। साहित्य के अतिरिक्त दूसरा कोई उपादान नहीं है, जो इन समस्याओं का निराकरण कर सके।

प्रस्तुत शोध में वर्तमान के जिन निबंधों का अध्ययन किया गया है, वह निम्न है: निबंध संग्रह- *काल क्रीड़ित, अलोक अनवरत, कोई खिड़की इसी दीवार से, जहाँ देवता सोते हैं, नेह के नेग, राम-रंग-रस भीजी चुनरिया* (डॉ.श्यामसुन्दर दुबे), निबंध- भारत और भारतीयता का अर्थ, बाज़ार का तिलिस्म और हमारा बदलता स्वभाव, बचपन का बदलता देशकाल, सांस्कृतिक बदलाव का समय, स्वतंत्रता का विवेक, (गिरीश्वर मिश्र), निबंध- आओ व्यक्ति का वसंत खोजें, होली सभ्यता की रस लिपि, नव वर्ष संकल्प की आंच, चाहिए हरी-भरी दुनिया, (डॉ. परिचय दास),

निबंध संग्रह- *छोटे-छोटे सुख*, (डॉ.रामदरश मिश्र), निबंध संग्रह- *अराजक उल्लास*, (डॉ.कृष्ण बिहारी मिश्र), निबंध संग्रह, *है कुछ-दीखें और, शब्द संसार* (कैलाश वाजपेई), निबंध संग्रह- *परम्परा का पुनराख्यान, रसवंती बोले तो, धूप का अवसाद,* (डॉ.श्रीराम परिहार), निबंध संग्रह- *चिन्तन-अनुचिन्तन* (डॉ. सुधेश)।

प्रस्तुत शोध में इस निष्कर्ष तक पहुँचा गया है कि मानव चाहे व्यक्तिक, चाहे सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक कोई भी मूल्य अपनाए, वह सम्पूर्ण मानवीय जाति एवं संतति को मान्य हैं, जिससे समाज एवं विश्व के कल्याण को कोई चोट न लगे।

ii समस्या कथन

"21वीं सदी के हिन्दी निबंधों में सांस्कृतिक चेतना (2000 से 2018 ई. के मध्य प्रकाशित निबंधों के सन्दर्भ में)"

किसी भी क्षेत्र के लोक जीवन एवं संस्कृति को वहां निवास करने वाले लोगों के स्वभाव, रहन-सहन, खान-पान, बोली, वेशभूषा, विविध संस्कारों, लोक विश्वास, धार्मिक एवं देवी देवता, पर्व एवं उत्सव, लोक कथा, लोक गीत, रीति-रिवाज आदि के माध्यम से अच्छी प्रकार समझा जा सकता है। संस्कृति किसी जाति या देश की आत्मा है। इससे उन सब संस्कारों का बोध होता है, जिनके सहारे मानव अपने सामूहिक अथवा सामाजिक जीवन के आदर्शों का निर्माण करता है।

वर्तमान में मानव बहुत सी समस्याओं में घिरा हुआ है। वर्तमान जीवन आज भी अंधविश्वास एवं रूढ़ियों से ग्रस्त है, जिसमें युवा पीढ़ी बर्बाद हो रही है। 21वीं सदी के हिन्दी निबंधों में भी सांस्कृतिक चेतना की झलक दिखाई पड़ रही है। कोई भी लेखक अपने युग के प्रभाव से नहीं बच सकता। वह अपने वातावरण और परिवेश को अस्वीकार नहीं कर सकता, या तो वह उस समाज और परिवेश के यथार्थ को अपनी कृतियों का आधार बनायेगा, या उससे ऊपर उठकर अति उन्नत समाज की कल्पना करेगा। इसी तरह 21वीं सदी के निबंधों में भी लेखकों ने वर्तमान की चिंता को प्रकट किया है, जिसकी एक-एक समस्या पाठकों के समक्ष जीवंत होकर खड़ी है।

इन सभी समस्याओं को आधार बनाकर प्रस्तुत शोध में "21वीं सदी के हिन्दी निबंधों में सांस्कृतिक चेतना (2000 से 2018 ई. के मध्य प्रकाशित निबंधों के सन्दर्भ में)" विषय पर संपन्न शोध कार्य करने का प्रयास किया गया है। प्रस्तुत शोध में भारतीय संस्कृति द्वारा समाज के कल्याण के पथ को प्रशस्त करने का प्रयास है।

iii समस्या औचित्य

साहित्य समाज का दर्पण है और समाज के दिशा निर्देशन में सहायक होता है। भारतीय संस्कृति समाज का आवश्यक अंग है, जो हमारे समाज को एक नया दृष्टिकोण और उच्च आदर्श को प्राप्त कराने में सहायक होती हैं। मानव एक विवेकशील प्राणी है, जो एक समाज का निर्माण करता है। इसके पीछे उसकी सभ्यता और संस्कृति परिलक्षित होती है और इस संस्कृति और सभ्यता को उसके सिद्धान्त रचते है। स्वतंत्रता के समय और वर्तमान समय में अंतर आ चुका है। वर्तमान में मानव बहुत सी समस्याओं में घिर चुका है। आज मानव जीवन एक दु:स्वप्न सरीखा हुआ जा रहा है। संशय, असुरक्षा, अनिश्चितता और तीव्र गति के दबाव आदमी के जीवन और उसके रोजमर्रा के कामकाज में ऐसे तनाव को जन्म दे रहे हैं, जो व्यक्तिगत स्वास्थ्य के साथ-साथ, सामाजिक सद्भाव को गहरा आघात पहुँचा रहे हैं। वर्तमान में मानव ने अपनी योजना के तहत अपना ध्यान अपनी सीमित स्व की मांगों की आपूर्ति तक संकुचित रखा है। आज जो कुछ हो रहा है, वह एक गहराते सांस्कृतिक संकट का संकेत है। सांस्कृतिक मूल्यों की जीवन और व्यवहार में सार्थक अभिव्यक्ति है और सतर्क, संवेदनशील दृष्टि में उनकी तलाश ही हमारा मार्ग प्रशस्त कर सकती है।

आज भारत की सांस्कृतिक विविधता को संपन्नता के स्रोत के रूप में समझने-समझाने की जरूरत है, जिसका उपयोग समाज के विकास में किया जाए। प्रस्तुत शोध भी भारतीय संस्कृति द्वारा समाज के कल्याण के पथ को प्रशस्त करने का प्रयास है, यह विषय प्रासांगिक है। इस दिशा में किया जाने वाला शोध भी मानव जीवन में उसको एक नई दिशा और दशा दिलाने के लिए सफल होगा। समसामयिक परिस्थितियों में इनकी अपरिहार्यता और भी आवश्यक है। अतएव: इस विषय की

उपयोगिता सपष्ट और चुनौतिपूर्ण है, जिसे शोधकर्ता एक अच्छे प्रयासपूर्ण ढंग से औचित्य के धरातल पर पूर्ण करेगा।

iv शोध कार्य के उद्देश्य

वर्तमान समय में ऐसी कई समस्याएँ पैदा हो गयी हैं, जिसके कारण आदर्श मानव समाज पर प्रश्न उठने लगे हैं। भौतिकता की चकाचौंध में जीवन-मूल्यों को उपेक्षित किया गया है। रहन-सहन, खान-पान, चाल-चलन की दृष्टि से जन-जीवन अस्त-व्यस्त रहने लगा है। स्थायित्व की आवश्यकता, हर समय और समाज को होती है। बदलते मूल्यों के साथ सामंजस्य बैठाने की प्रक्रिया सांस्कृतिक समन्वय का मार्ग प्रशस्त करती है। संस्कृति अनवरत परिवर्तित और प्रवाहित होने वाली स्थिति है, जिसके दायरे में बने रहने के लिए स्वयं को परिवर्तनशील बनाना होता है। यह परिवर्तनशीलता का ही परिणाम है कि विपदा-आपदा की कठिन से कठिन स्थिति में भी मनुष्य अपनी जिजीविषा को जीवित रखता है। इस दृष्टि से "21वीं सदी के हिन्दी निबंधों में सांस्कृतिक चेतना (2000 से 2018 ई. के मध्य प्रकाशित निबंधों के सन्दर्भ में)" विषय अतीत न होकर वर्तमान की विसंगतियों को आवाज तो देता ही है, भविष्य के मार्ग को भी प्रशस्त करता है। मानव-समाज में जिस प्रकार हमारा जीवन निरंतर है, उसी प्रकार उसे संचालित करने वाले सिद्धान्त भी हैं, जो आगे हमारे जीवन को एक नई दिशा और दशा देने के लिए सार्थक सिद्ध होते हैं। यह विषय भारतीय संस्कृति के द्वारा हमारे मानव जीवन में हमारी परिस्थितियाँ और हमारे जीवन को एक नई दिशा और दशा प्रदान करने के लिए उचित हो सकता है। अत : इसी तथ्य की पृष्ठभूमि में प्रस्तुत शोध के निम्न उदेश्य निर्धारित किये गये हैं :

- **बदलते जीवन मूल्यों के सन्दर्भ में सांस्कृतिक चेतना और उसके महत्व को रेखांकित करना।**

- **सांस्कृतिक समन्वय के क्षेत्र में हिन्दी निबंधकारों द्वारा किये गए प्रयासों की पहचान करना।**
- **सांस्कृतिक चेतना से सम्बद्ध निबंधों में सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक स्थितियों के प्रभावों का मूल्याँकन करना।**
- **वर्तमान जीवन में व्यवहृत संबंधों को हिन्दी निबंधों के परिपेक्ष्य स्पष्ट करना।**
- **सांस्कृतिक मूल्यों की समयानुकूल प्रत्यावर्तित स्वरूप की अर्थवत्ता को प्रत्यक्ष करना।**

v शोध कार्य में चुनौतियाँ

निबंध विधा को साहित्य की सृजनात्मक विधा के रूप में मान्यता आधुनिक युग में ही मिली है। आधुनिक युग में ही मध्ययुगीन धार्मिक, सामाजिक रूढ़ियों से मुक्ति का द्वार दिखाई पड़ा है। इस मुक्ति से निबंध का गहरा सम्बन्ध है। वर्तमान के निबंधों में निबंधकारों ने बिना किसी परिवर्तन के उसे प्रमाणिक एवं सजीव रूप से प्रस्तुत कर पाठकों को उद्वेलित कर दिया है। कोई भी साहित्यकार अपने समय के प्रभाव से नहीं बच सकता। वर्तमान में भी ऐसे ही निबंधों में निबंधकारों ने एक-एक समस्या को पाठकों के समक्ष खड़ा कर दिया है। उन समस्याओं की मानसिकता तक पहुंचना एवं उसकी गहराई तक पैठना ही प्रस्तुत शोध की बहुत बड़ी चुनौती है। इस विषय पर उपन्यासों और अन्य विधाओं में अन्य विद्वानों ने शोधकार्य किया है, उन सब के शोधकार्य का विवेचन करना भी एक चुनौती भरा काम है।

यदि इस क्षेत्र में किये गए सभी कार्य एवं साहित्य की विवेचना की जाए, तो इसकी उपलब्धता की सम्भावना बहुत कम होगी और शोध अपने लक्ष्य से भटक जायेगा। अपनी सीमाओं में रहते हुए कार्य को अपने लक्ष्य तक पहुँचाना अपने आप में एक चुनौती है। इससे पहले बिलकुल ही ऐसे विषय पर कोई भी काम नहीं हुआ है।

इस विषय पर प्रस्तुत शोध द्वारा भारतीय संस्कृति और मानव जीवन के विकास में एक नया आयाम देने का प्रयास रहा है। अतएव: निर्धारित समय सीमा और विषय सीमा को ध्यान में रखते हुए, शोध को परिपूर्णता से करना, जिससे अपेक्षित लक्ष्य पाया जा सके, अपने आप में एक चुनौती भरा कार्य रहा।

vi शोध प्रविधियाँ

किसी भी कार्य को सम्पूर्णता देने के लिए, उसकी एक रूपरेखा बना लेना आवश्यक है और उस विषय को निर्धारित अवधि में अपने निष्कर्ष तक पहुँचाने के लिए कुछ प्रविधियों का सहयोग लिया जाता है। इसी प्रकार प्रस्तुत शोध में भी अपने शोधकार्य की विषय विवेचना एवं कार्य को पूर्ण करने हेतु, कुछ शोध प्रविधियों का उपयोग किया गया है। शोध प्रविधि से संबंधित जिन पुस्तकों का अध्ययन किया गया है, वह निम्न हैं- डॉ. बैजनाथ सिंहल, *शोध प्रविधि,* एच. के. कपिल *अनुसन्धान विधियाँ,* विनयमोहन शर्मा, *शोध प्रविधि,* आर. ए. शर्मा, *शिक्षा अनुसन्धान के मूल तत्व और शोध प्रक्रिया*।

प्रस्तुत शोध “21वीं सदी के हिन्दी निबंधों में सांस्कृतिक चेतना (2000 से 2018 ई. के मध्य प्रकाशित निबंधों के सन्दर्भ में)” विषय के लिए भी कुछ शोध प्रविधियों की सहायता से शोध कार्य संपन्न किया गया है।

आलोचनात्मक शोध प्रविधि

साहित्यकार अपने कृतित्व की रचना के समय जिस मनोस्थिति एवं पृष्ठभूमि से संबंधित होता है, उस तक तो पाठक एवं शोधकर्ता का पहुँच पाना कठिन होता है, परन्तु निरंतर अध्ययन, विवेचन, व्याख्या एवं चिंतन के द्वारा आलोचना करने का प्रयत्न अवश्य किया जाता है। रचनाकार एवं उसकी कृति में उल्लेखित सूत्रों का

आलोचनात्मक अध्ययन करते हुए, नवीन निष्कर्षों को प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है।

तुलनात्मक शोध प्रविधि

इस प्रविधि में कृतियों अथवा प्रवृतियों का सम और विषम तत्वों की दृष्टि से अध्ययन किया जाता है। किसी भी विधा में रचनाकार किस परिस्थितियों में किस प्रकार की रचना करते हैं, उन कार्यों का भी अध्ययन करते हुए शोध में निष्कर्षों को तुलनात्मक विवेचन द्वारा प्रतिपादन करने का प्रयास रहता है।

सर्वेक्षण शोध प्रविधि

इस प्रविधि का अनुसरण, साहित्य के किसी अंग, विधा या प्रवृति का क्रमबद्ध वर्णन उपस्थित करने में किया जाता है। यह पद्धति शोध के लिए सूक्ष्म एवं गहन अध्ययन की पृष्ठभूमि तैयार करती है।

ऐतिहासिक शोध प्रविधि

इतिहास में उपलब्ध मूल्यों के स्वरूप, उनके आधार, उनके पालन सम्बन्धी सिद्धान्तों का अध्ययन करते हुए, इस विधि का प्रयोग किया गया है।

vii परिसीमांकन

किसी भी विषय का सीमाबद्ध होना, उसकी कुशलता एवं पूर्णता का द्योतक है। सीमा से बाहर वह ज्ञान रेखा को पार कर लेता है, तो वह अपनी निर्धारित मान्यता को प्राप्त नहीं कर पाता। प्रस्तुत शोध “21वीं सदी के हिन्दी निबंधों में सांस्कृतिक चेतना (2000 से 2018 ई. के मध्य प्रकाशित निबंधों के सन्दर्भ में)” भी अपने आधार ग्रंथों की प्रष्ठभूमि में किया गया है। इस विषय में अन्य साहित्यकारों ने उपन्यासों और अन्य विधाओं में कार्य किये हैं, यदि उनका कार्य अध्ययन किया जाए,

तो शोध न केवल अपने विषय से भटक जाता और प्रमाणिकता एवं कुशलता से कार्य भी पूर्ण नहीं हो पाता। साहित्यकार भी जो कार्य करता है, उसे एक सीमा में रहकर ही पूर्णता प्रदान करता है, उसी प्रकार शोध भी इसी लक्ष्य को आधार बनाकर समय एवं सीमा के अंतर्गत ही पूर्ण किया गया है।

इसी तरह से 21वीं सदी के निबंधों को आधार बनाकर, विषय और सीमा में रहकर शोधकार्य करने का पर्यास रहा है, जिससे विषय और समय सीमा में रहते हुए, भटकाव से बचा जा सके। किसी भी विषय का अध्ययन उसके समय और अध्ययन की सीमाओं को देखते हुए ही किया जाता है, अन्यथा वह अपनी मान्यता को प्राप्त नही कर पाता। समय और सीमा से बाहर जाने पर विषय और सीमा दोनों में भटकाव आना संभव हो जाता है। अतएव: इसी लक्ष्य को आधार बनाकर वर्तमान स्थिति को प्रमुख रखते हुए "21वीं सदी के हिन्दी निबंधों में सांस्कृतिक चेतना (2000 से 2018 ई. के मध्य प्रकाशित निबंधों के सन्दर्भ में)" विषय पर संपन्न शोध कार्य करने का प्रयास किया गया है।

viii परिकल्पना

किसी भी शोध कार्य को करने से पूर्व, उसके संभावित निष्कर्षों का अनुमान लगाना अथवा उसकी संभावनाओं की कल्पना करना, उसकी परिकल्पना कहलाता है। प्रस्तुत शोध में भी कुछ परिकल्पनाओं पर विचार किया गया है, जो निम्न हैं :

- कोई भी लेखक अपनी रचनाओं में जो संसार रचता है, वह उसके दृष्टिकोण एवं व्यक्तित्व को प्रस्तुत करता है। उसके व्यक्तित्व का प्रभाव उसके साहित्य में भी दृष्टिगोचर होता है।
- वर्तमान में भी हिन्दी निबंधों में लेखकों ने आज की समस्याओं को पाठकों के समक्ष जीवंत कर दिया है, उन समस्याओं का निराकरण करने के लिए कल्पना

की गई है, तांकि आने वाले समय में हम समाज में प्रचलित समस्याओं से छुटकारा पा सकें और समाज को एक अच्छी दिशा प्राप्त हो सके।

- नया दिन नई सुबह और सूर्य की पहली किरण, जीवन में अवश्य आते हैं। हम सो साल जीयें, हर व्यक्ति हर दिन ऐसी कल्पना करता है, जब हममें कोई कमी होती है, तब हम सोचने के लिए मजबूर होते हैं और तब हम पर भय और आशंका के भूत हावी होते हैं। इन तथ्यों पर प्रस्तुत निबंधों में प्रकाश डाला गया है।
- 21वीं सदी के निबंधों में जिन समस्याओं को लेखकों ने प्रस्तुत किया है, वह मानव समाज में आज हो रहा है। इन समस्याओं पर विचार करते हुए, मानव जीवन के नवीन मार्ग खुलते प्रतीत हो रहे हैं।
- वर्तमान के निबंधों में निबंधकारों पर अपने समय का प्रभाव दिखाई पड़ रहा है, कोई भी लेखक जो रचता है, वह अपने समय से प्रभावित होकर ही रचता है। वर्तमान स्थितियों पर विचार करते हुए भी एक अच्छे समाज की कल्पना की गई है।

इस तरह से शोधकर्ता के द्वारा भी इन परिकल्पनाओं पर विचार किया गया है।

ix पूर्व सम्बद्ध साहित्यावलोकन

किसी कार्य को सही दिशा में ले जाने के लिए, उसके पूर्व में किये गये कार्य का अवलोकन बहुत सहायक होता है। पूर्व में जो कार्य हुए हैं, उसकी जानकारी, उसका अध्ययन एवं अवलोकन आवश्यक है। इससे धन की, समय की, शक्ति की बचत होती है, जिससे दुहराई से बचा जा सकता है। इससे शोधकर्ता को अपने विषय के समस्त कोणों को समझने में सहयता भी मिलती है।

विषय से सम्बद्ध अब तक किया गया शोध कार्य

- शोधकर्ता सुधा सिंह ने गुजरात यूनिवर्सिटी से 2013 ई. में **"पंडित विद्यानिवास मिश्र और भोलाभाई पटेल के निबंधों में सांस्कृतिक संदर्भ एक तुलनात्मक अध्ययन"** विषय पर शोध कार्य किया है। इस शोध में शोधकर्ता ने विद्यानिवास मिश्र और भोलाभाई पटेल जी के निबंधों का वर्गीकरण, उनके सांस्कृतिक संदर्भ को प्रस्तुत किया है। उनका मुख्य उद्देश्य था, पाठक को उनके निबंधों से परिचित कराना, जिससे पाठक को उनके निबंधों तक पहुँचने की सहायता मिल सके। दोनों निबंधकारों में समानता-असमानता को भी प्रस्तुत किया गया है।

- शोधकर्ता ईश्वर सिंह ने महर्षि दयानंद यूनिवर्सिटी में 2002 ई. में **"स्वत्तान्त्योतर हिन्दी निबंध साहित्य में ग्रामीण संस्कृति"** विषय पर कार्य किया। इस शोध में उन्होंने ग्राम-समाज में व्यक्तिक एवं सांस्कृतिक स्वतंत्रता का चित्रण किया और इसी के साथ विविध ग्रामीण तथा सामाजिक रूढ़ियों को उद्घाटित करने का भी प्रयास किया गया है, और निबंध परम्परा में ग्राम-संस्कृति का योगदान, तथा भारतीय संस्कृति को ग्राम-संस्कृति की देन का विवेचन किया गया है।

- **"हिन्दी में सांस्कृतिक निबंध परम्परा और कुबेरनाथ राय का निबंध साहित्य"** विषय पर शोधकर्ता स्नेह लता पाण्डेय ने 1986 ई. में पंजाब यूनिवर्सिटी से शोधकार्य किया है। इसमें उन्होंने सांस्कृतिक निबंध स्वरूप और हिन्दी में उसकी परम्परा और कुबेरनाथ राय के निबंधों में सांस्कृतिक संवेदना का

स्वरूप, शिल्प-विधान और साथ में उनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डाला है।

- शोधकर्ता विजय सहस्राबुधे ने 1984 ई. में सावित्रीबाई फूले, पुणे यूनिवर्सिटी में **"हिन्दी ललित निबंधों में संस्कृति विषयक चिंतन –आचार्य हजारीप्रसाद दिवेदी जी और परवर्ती निबंधकारों के विशेष सन्दर्भ में"** विषय पर शोध कार्य किया। इसमें उन्होंने हजारीप्रसाद दिवेदी और उस समय के परवर्ती ललित निबंधकारों के निबंधों के जरिये सामाजिक और मानसिक स्थितियों एवं घटनाओं को प्रस्तुत किया है।

- द आई. आई. एस. यूनिवर्सिटी में 2015 ई. में पूनम सेठी ने **"कुबेरनाथ राय के ललित निबंध स्वरूप एवं विश्लेषण"** विषय पर शोध कार्य किया। इस शोध कार्य में उन्होंने कुबेरनाथ राय के निबंधों का परिचयात्मक विश्लेषण, वर्गीकरण, मिथकीय चेतना और ललित निबंधकारों में उनका स्थान पर प्रकाश डालते हुए, उनके समस्त निबंध साहित्य का विवेचन प्रस्तुत किया। इसके अंतर्गत हिन्दी के प्रमुख ललित निबंधकारों आचार्य हजारीप्रसाद दिवेदी और विद्यानिवास मिश्र के साथ उनका तुलनात्मक अध्ययन करते हुए, ललित निबंध साहित्य में राय के स्थान को रेखांकित किया है।

- शोधकर्ता रविन्द्र कुमार ब्रिज्बसी राय ने **"स्वतान्त्र्योतर हिन्दी निबंध साहित्य के विकास में कुबेरनाथ राय का योगदान"** विषय पर 2012 ई. में सरदार पटेल यूनिवर्सिटी में शोधकार्य किया है। इस शोध में स्वतान्त्र्योतर निबंध परम्परा और ललित निबंध, जिसमें स्वतंत्रता के बाद निबंध साहित्य की

परम्परा को दिखाया गया है। साथ ही किस तरह ललित निबंध, निबंध के एक अलग प्रकार के रूप में उभरा है और निबंध से उसकी क्या भिन्नता है, इसका विवेचन किया गया है और कुबेरनाथ राय के निबंधों का अवलोकन और वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है। इसके साथ ही शिल्पगत विवेचन किया गया है, जिसमें भाषा-शैली और प्रयुक्त कहावतों मुहावरों का विवेचन किया गया है।

- शोधकर्ता वंदना मुकेश शर्मा ने 2000 ई. में सावित्रीबाई फुले, पुणे यूनिवर्सिटी से **“नौंवे दशक का निबंध साहित्य-एक विवेचन”** विषय पर कार्य किया। इस शोध में शोधकर्ता ने हिन्दी निबंध साहित्य का स्वरूप, विकासात्मक अध्ययन भारतेन्दु युग से लेकर नौंवे दशक तक और शिल्प विवेचन किया गया है।

- गुजरात यूनिवर्सिटी में 1996 ई. में शोधकर्ता जोशी हस्मुख्लाल ने **“हिन्दी ललित निबंध: उदगम, स्वरूप और विकास”** विषय पर शोध कार्य किया है। इस शोध में शोधकर्ता के द्वारा निबंध साहित्य का स्वरूप और ललित निबंध उदगम भारतेन्दु युग से लेकर के 1980 ई. तक विवेचित किया है। संस्कृति, लोक-तत्व, पुराण, इतिहास को ललित निबंध कथ्य के रूप में विवेचित किया गया है।

प्रथम अध्याय : सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि

1.1. निबंध का अर्थ, परिभाषा एवं प्रकार

1.2. संस्कृति का अर्थ और परिभाषा

1.3. चेतना का अर्थ और परिभाषा

1.4. सांस्कृतिक चेतना का अर्थ और परिभाषा

1.5. संस्कृति के विविध आयाम

1.5.1. प्रकृति और संस्कृति

1.5.2. धर्म और संस्कृति

1.5.3. सभ्यता और संस्कृति

1.5.4. साहित्य और संस्कृति

1.5.5. समाज और संस्कृति

1.5.6. कला और संस्कृति

1.5.7. परिवार और संस्कृति

1.5.8 जीवन मूल्य और संस्कृति

निष्कर्ष

1.1. निबंध का अर्थ, परिभाषा एवं प्रकार

निबंध का अर्थ है, अच्छी तरह से बंधा हुआ। इसकी भाषा विषय के अनुकूल होती है। निबंध की शक्ति है, उसकी अच्छी भाषा। भाषा के अच्छे प्रयोग द्वारा ही भावों विचारों और अनुभवों को प्रभावशाली ढंग से व्यक्त किया जा सकता है। वामन शिवराम आप्टे कृत *संस्कृत हिन्दी कोश* में निबंध का अर्थ इस प्रकार दिया गया है:

> निबन्ध (नि+बाँध) (1) बाँधना, कसना, जकड़ना, (2) आसक्ति, संलग्नता, (3) रचना करना, लिखना, (4) साहित्यिक रचना या कृति, (5) संग्रह ग्रन्थ, (6) नियंत्रण, अवरोध, वेधन, (7) सूत्रावरोध, (8) बाँध, हथकड़ी, (9) सम्पत्ति का अनुदान, (10) बुनियाद, मूल, (11) हेतु, कारण। (527)

डॉ. द्वारका प्रसाद सक्सेना ने अपनी पुस्तक *हिन्दी के प्रतिनिधि निबंधकार* में कहा है “निबंध विचारों या भावों को पूर्णतया बाँधने वाला, एकत्र करने वाला, संगठित करने वाला, जोड़ने वाला या रोकने वाला होता है।” (1) निबंध गद्य लेखन की एक विधा है। लेकिन इस शब्द का प्रयोग किसी विषय की तार्किक और बौद्धिक विवेचना करने वाले लेखों के लिए भी किया जाता है। निबंध के पर्याय रूप में संदर्भ, रचना और प्रस्ताव का भी उल्लेख किया जाता है, लेकिन साहित्यिक आलोचना में सर्वाधिक प्रचलित शब्द निबंध ही है। *हिन्दी साहित्य का इतिहास* पुस्तक में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है “भाषा की पूर्ण शक्ति का विकास निबंधों में ही सबसे अधिक होता है।”(428)

अपने मानसिक भावों या विचारों को संक्षिप्त रूप से तथा नियंत्रित ढंग से लिखना ही निबंध कहलाता है। निबंध लिखना भी एक कला है। इसे विषय के अनुसार छोटा या बड़ा भी लिखा जा सकता है। निबंध को प्रबंध, लेख आदि नामों से भी

पुकारा जाता है। निबंध में निबंधकार अपने विचारों को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता है। निबंधों में लेखक का व्यक्तित्व पूरी तरह से हमारे समक्ष उभरकर आता है। वामन शिवराम आप्टे ने अपने *संस्कृत अंग्रेजी कोश* में अंग्रेजी में निबंध के लिए Essay शब्द का प्रयोग किया है। "Essay फ्रेंच के Essai से व्युत्पन्न है। जिसका अर्थ है प्रयत्न, प्रयोग या परीक्षण।" (12) 16वीं शताब्दी के फ्रांसीसी विद्वान माइकेल द मोन्तेन को पाश्चात्य साहित्य में आधुनिक निबंध का जन्मदाता माना जाता है। *हिन्दी निबंध का विकास* पुस्तक में डॉ. ओंकारनाथ शर्मा ने निबंध का विश्लेषण करते हुए तीन व्युत्पत्तियाँ दी हैं:

नि+बन्ध+ल्युट – निबंध्यते अस्मिन इति, अधिकरणे निबन्धम। जिसमें विचार बाँधा अथवा गूँथा जाता है, ऐसी रचना।

नि+बन्ध+धत्र निश्चिताथेन विषयम अधिकृत्य बंधनम अर्थात निश्चित रूप से किसी विषय पर विचारों की श्रंखला बांधना, रोकना, संग्रह करना आदि।

नि+बन्ध+अच-नीम का वृक्ष और उसके सेवन से कोष्ठ रोग रोध हैं। (17)

इस प्रकार निबंध का अर्थ हुआ प्रयत्न, प्रयोग, परीक्षण, किसी विषय पर लघु संयोजन किसी के व्यवहार विशेषताओं आदि को साबित करना। निबंध में लेखक किसी एक विषय पर कार्य करता है, या उस विषय के संदर्भ में पाठक के दृष्टिकोण को बदलने का प्रयास करता है।

निबंध की परिभाषा

निबंध को किसी एक परिभाषा में बाँधना काव्य को परिभाषित करने से भी कठिन कार्य है। निबंध शब्द इतना व्यापक है कि अभी तक इसकी ऐसी परिभाषा नहीं की गई है, जो सर्वमान्य हो। फिर भी भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने निबंध की

अनेक परिभाषाएँ दी हैं, जिनके आधार पर हम निबंध के विकसित स्वरूप एवं अर्थ वैशिष्ट्य को सहजता से समझ सकते हैं।

पाश्चात्य विद्वानों के द्वारा निबंध की परिभाषाएँ

निबंध के आदिजनक मोन्तेन ने निबंध को सम्पूर्ण रूप से परिभाषित तो नहीं किया किन्तु कुछ विशिष्ट संकेत अवश्य किये हैं। उन्होंने निबंध को विचारात्मक और भावात्मक दोनों रूपों में स्वीकार किया है। *हिन्दी निबंधकार* पुस्तक में डॉ. जयनाथ नलिन के अनुसार:

> निबंध विचारों, उद्धरणों तथा कथाओं का सम्मिश्रण है। उन्होंने अपने निबंधों के विषय के बारे में कहा है कि अपने निबंधों का विषय 'मैं' ही हूँ। यह निबंध अपनी आत्मा को दूसरों तक पहुँचाने का प्रयत्न मात्र है। इसमें मेरे ही निजी विचार और कल्पनाएँ हैं, कोई नवीन खोज नहीं। (8)

बेकन के अनुसार

"निबंध कुछ इने-गिने पृष्ठों के लघु विस्तार को कहते है, जिसमें सारगर्भित ठोस विचारों का निर्देश हो, और यह विचार अधिक विस्तार से प्रकट न किये गये हों।" (36)

प्रीस्टले के अनुसार

एसे इस्ट पास्ट एंड प्रेजेंट पुस्तक में प्रीस्टले के मतानुसार "निबंध मौलिक व्यक्तित्व की निश्चछल अभिव्यक्ति तथा संक्षिप्त कलात्मक वार्ता है।" (54)

"श्रेष्ठ निबंध वही है जी साधारण बातचीत सा प्रकट हो। निबंधकार एक चतुर आत्मवृत कहनेवाला हो और जिसका प्रत्येक वाक्य अपने व्यक्तित्व का ढंग का दर्शक हो।" (54)

एडीसन के अनुसार

"निबंध में विचारधारा तरल और मिश्रित होती है। उसका प्रवाह कभी साधारण उपदेशात्मकता की ओर उन्मुख रहता है, कभी वैयक्तिक आत्माभिव्यंजना की ओर।" (18)

हडसन के अनुसार

विलियम हेनरी हडसन ने *इन इंट्रोडक्शन टू दि स्टडी आफ लिटरेचर* में कहा है: "यथार्थ में निबंध अनिवार्यत : वैयक्तिक ही हो सकता है, यह साहित्य की आत्माभिव्यक्ति से सम्बद्ध है। प्रबंध वस्तुनिष्ठ होते हैं, निबंध आत्मनिष्ठ होता है।" (442)

आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी के अनुसार

> निबंध, किसी विशिष्ट विषय के उपभाग पर विचार करने वाली, छोटे प्रकार की ऐसी रचना है, जिसमें प्रारम्भ में प्राय: कलात्मक पूर्णता का अभाव था, किन्तु जो अब विषय की सीमा में रहने पर भी व्यापक तथा प्रौढ़ शैली सम्पन्न हो गया है। (220)

भारतीय विद्वानों के द्वारा निबंध की परिभाषाएँ

हिन्दी के कतिपय आचार्यों ने निबंध की परिभाषाएँ प्रस्तुत की हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने निबंध को गंभीर सूत्रात्मक और विचारात्मक अभिव्यक्ति माना है।

चिन्तामणि पुस्तक में रामचन्द्र शुक्ल का एक सूत्रात्मक वाक्य दृष्टव्य है –"वैर क्रोध या अचार का मुरब्बा है।" (80)

हिन्दी साहित्य का इतिहास पुस्तक में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार- आधुनिक पाश्चात्य लक्षणों के अनुसार निबंध उसी को कहना चाहिए जिसमें व्यक्तिगत अर्थात व्यक्तित्व विशेषता हो। (482)

प्रबंध-प्रभाकर पुस्तक में बाबु गुलाबराय ने निबंध के समस्त तत्वों को समाहित करते हुए निबंध की परिभाषा इस प्रकार दी है - निबंध वह रचना है, जिसमें एक सीमित आकार के भीतर किसी विषय का वर्णन या प्रतिपादन एक विशेष निजीपन, स्वत: पूर्णता, स्वच्छंदता, सौष्ठव, सजीवता, आवश्यक संगति और सम्बद्धता के साथ किया गया हो। (139)

हिन्दी साहित्य का इतिहास पुस्तक में डॉ. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय के अनुसार- निबंध से तात्पर्य सच्चे साहित्यक निबंधो से है, जिसमें लेखक अपने आप को प्रकट करता है, विषय को नही, विषय तो केवल बहाना मात्र होता है। (285)

हिन्दी निबंधकार पुस्तक में डॉ. जयनाथ नलिन के मतानुसार- किसी विषय पर स्वाधीन चिंतन और निश्चछल अनुभूतियों का सरस, सजीव और मर्यादित प्रकाशन ही निबंध है। (10)

साहित्यिक निबंध पुस्तक में बद्रीनाथ तिवारी के अनुसार- रचनाकार के भाव और विचार-समन्वित सम्पूर्ण व्यक्तित्व के एक अखंड रचनात्मक ईकाई के रूप में आत्मप्रक्षेपण को निबंध कहते हैं। (14)

अनेक विद्वानों की परिभाषाओं को देखते हुए सार रूप में यह कहा जा सकता है कि निबंध वह छोटा सा गद्य-विधान है, जिसमें निबंधकार हमारे जीवन के बारे में या किसी वस्तु के बारे में अपने भावों या विचारों को व्यक्त करता है।

निबंध के प्रकार

हिन्दी निबंध के विषय, भाषा-शैली के आधार पर अनेक वर्गीकरण किये गये हैं। *काव्य का रूप* पुस्तक में बाबु गुलाबराय के अनुसार विषय की अनन्तता के कारण निबंधों के कई प्रकार हैं, जिसमें चार मुख्य भेद है- “1. विवेचनात्मक निबंध, 2. वर्णनात्मक निबंध, 3. विवरणात्मक निबंध, 4. भावात्मक निबंध।” (222)

हिन्दी सहित्य का इतिहास में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार निबंधों के पांच प्रकार बताए गए हैं, जो निम्न है- “1. विचारात्मक निबंध, 2. वर्णनात्मक निबंध, 3. विवरणात्मक निबंध, 4. भावात्मक निबंध, 5. आत्मपरक निबंध।” (शुक्ल 464) इस तरह अनेक विद्वानों के मत के अनुसार निबंधों को निम्न विभागों में विभाजित किया जा सकता है। 1. विचारात्मक निबंध, 2. वर्णनात्मक निबंध, 3. विवरणात्मक निबंध, 4. भावात्मक निबंध, 5. आत्मपरक निबंध, 6. कथात्मक निबंध, 7. हास्य एवं व्यंग्य प्रधान निबंध।

1. विचारात्मक निबंध

गंभीर विषयों पर चिन्तन मनन करके लिखे गये निबंध विचारात्मक निबंध होते हैं। इनमें बुद्धि की प्रधानता होती है और विचारसूत्रों की प्रमुखता रहती है। लेखक का हृदय पक्ष दबा रहता है, बुद्धि पक्ष की प्रबलता इन निबंधों में दिखाई पड़ती है। निबंधों में विचारों की एक श्रंखला रहती है और विचार पूर्वापर सम्बन्ध से एक सूत्र में जुड़े रहते हैं। भाषा विषय के अनुसार प्रौढ़, गम्भीर, संस्कृतनिष्ट रहती है। समाज, परम्परा, साहित्यिक आस्था, इस प्रकार के मौलिक विचार विचारात्मक निबंधों में लेखक प्रस्तुत करता है। हिन्दी में इस प्रकार के निबंध लेखक हैं- आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, बाबू श्यामसुंदर दास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ. नगेन्द्र आदि। पं. रामचन्द्र शुकल के *चिन्तामणि* भाग-1, 2

के निबंध इसके उदाहरण हैं। मनोविकारों एवं भावों का विषद विश्लेषण किया गया है। *हिन्दी साहित्य का इतिहास* पुस्तक में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है: "शुद्ध विचारात्मक निबंधों का चरम उत्कर्ष वहीं कहा जा सकता है, जहाँ एक-एक पैराग्राफ में विचार दबाकर कसे गये हों और एक एक वाक्य किसी सम्बद्ध विचार खण्ड को लिए हों।" (485)

2. वर्णनात्मक निबंध

वर्णनात्मक निबंधों में निबंधकार किसी घटना, तथ्य, दृश्य, वस्तु, स्थान आदि का क्रमबद्ध वर्णन इस प्रकार करता है कि पाठक के समक्ष वह दृश्य या घटना साकार हो जाती है। वर्णनात्मक निबंधों में बौद्धिकता एवं भावुकता का सामंजस्य रहता है। भाषा सरल एवं सुबोध रहती है तथा लेखक का ध्यान तथ्य निरूपण पर अधिक रहता है, कल्पना पर कम। हिन्दी में बालकृष्ण भट्ट, बाबू गुलाबराय, कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर एवं रामवृक्ष बेनीपुरी के निबंध इसी श्रेणी के हैं। इन निबंधों में विषय वस्तु का विस्तार से विवेचन किया जाता है। इस तरह के निबंधों की शैली व्यास प्रधान होती है। डॉ. विद्यानिवास मिश्र के निबंध 'रूपहला धुआँ' में ऐसा वर्णन मिलता है। विद्यानिवास मिश्र ने अपने निबंध *कदम की फूली डाल* में कहा है:

> शरद की शुभ्र ज्योत्सना में जब यामिनी पुलकित हो गई हो और जब इस प्रताप के यौवन का मद खुमार पर आ गया है और खुमारी में इसका सौन्दर्य सूर्तान्त में शिथिल पड़ी मुग्धा के बदन-मण्डल की भांति और अधिक मोहित शरदिंदु की रस प्रताप की शान्त, तरल स्फटिक धारा पर बिछलाते हुए देखा है। (31)

3. विवरणात्मक निबंध

विवरण का अर्थ है, वृतांत या बयान। जिन निबंधों में किसी प्रकार का विवरण प्रधान हो, या किसी कथा वृतांत या घटनाओं का वर्णन रहता है, उसे विवरणात्मक निबंध कहते हैं। विवरणात्मक निबंधों में ऐतिहासिक, सामाजिक, पौराणिक घटनाओं का विवरण दिया जाता है, तथा उनमें कल्पना का भी यथोचित समावेश होता है। इन निबंधों में साधारण किसी घटना का विवरण रहता है, जिस रचना में कथा की प्रधानता या घटनाओं का सम्बन्ध वर्णन और विवेचन हो उनको ही ऐसे निबंध कहा जाता है। इसमें घटनाओं के प्रति लेखक की आत्मीयता होती है। वर्णन का सम्बन्ध वर्तमान से होता है, जबकि विवरण का भूतकाल से। इनमें सम्भावना पर विशेष बल होता है। इस प्रकार के निबंधों में कल्पना तथा भावतत्व की प्रधानता होती है। हिन्दी के प्रारम्भिक निबंधकार- भारतेन्दु, बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र, शिव पूजन सहाय आदि ने विवरणात्मक निबंध लिखे हैं।

4. भावात्मक निबंध

भावात्मक निबंध उन्हें कहते हैं, जिनमें भावुकता, रागात्मकता, रस या चमत्कार की प्रधानता हो। भावात्मक निबंधों में भाव पक्ष अर्थात हृदय पक्ष की प्रधानता होती है। भावात्मक निबंध लेखक की संवेदनशीलता को व्यक्त करते हैं। इनमें विचार की अपेक्षा कल्पना एवं भावना की अद्भुत शक्ति निहित होती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के मनोविकार सम्बन्धी निबंधों में से कुछ इसी कोटि के हैं। रामचन्द्र शुक्ल के ग्रन्थ *हिन्दी साहित्य का इतिहास* में ऐसे निबंधों के लिए ही उनकी यह टिप्पणी उल्लेखनीय है- “यात्रा के लिए निकलती रही है बुद्धि, पर हृदय को भी साथ लेकर। बुद्धि पथ पर हृदय भी अपने लिए कुछ न कुछ पाता रहा है।” (462)

भावात्मक निबंधों में लेखक रोचकता तथा सरसता पैदा करता है, यही कारण है कि अचेतन पदार्थों में सजीवता पैदा हो जाती है। इस प्रकार के निबंधों में हृदय पक्ष

की प्रधानता के साथ-साथ हास्य-व्यंग्य एवं मनोरंजन का तत्व प्रमुख होता है। यह निबंध लेखक के संवेदनशील हृदय का परिचय देते हैं। समाज में व्याप्त राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक विद्रूपताओं को भी इस प्रकार के निबंधों में प्रस्तुत किया जाता है। हिन्दी निबंधकारों में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र, प्रताप नारायण मिश्र, अध्यापक पूर्णसिंह, ब्रजनन्दन सहाय, रायकृष्ण दास इसी प्रकार के निबंधकार हैं।

5. आत्मपरक निबंध

'आत्मपरक निबंध' में लेखक का व्यक्तित्व पूरी तरह से उभरकर सामने आता है। आत्मपरक निबंध को व्यक्ति-व्यंजक, वैयक्तिक और ललित निबंध भी कहा जाता है। वर्तमान समय में लिखे जाने वाले ललित निबंध भी आत्मपरक निबंध की कोटि में आते हैं। इस प्रकार के निबंधों में उन निबंधों को रखते हैं, जिनमें लेखक अपने व्यक्तित्व को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता है। आत्म-व्यंजक या आत्मपरक निबंधों में व्यक्तित्व की प्रधानता होती है, इनमें निबंधकार अपनी हँसी, ख़ुशी तथा विषाद पाठकों को वितरित करता चलता है।

6. कथात्मक निबंध

कथात्मक निबंधों में घटनाओं का वर्णन होता है। कथात्मक का अर्थ है, घटना-संग्रह या कथा संग्रह। इनमें कल्पना तथा विचारों का सुंदर समन्वय रहता है। यह निबंध प्रसाद गुण सम्पन्न होते हैं। इसमें निबंधकार निजी जीवन की घटनाओं को तथा संस्मरणों को रूपायित करता है। कथात्मक निबंध के लिए किसी साधारण कथानक की आवश्यकता रहती है।

7. हास्य एवं व्यंग्य प्रधान निबंध

हास्य एवं व्यंग्य प्रधान निबंधों में व्यंग्य तथा हास्य की प्रधानता रहती है। व्यंग्य प्रधान निबंध हृदय पर चोट करते हैं, किन्तु हास्य-प्रधान निबंधों में मनोरंजन की सृष्टि की जाती है। यह निबंध संग्रह भावात्मक तथा आत्मपरक वर्गों में रखे जा सकते हैं। व्यंग्य प्रधान निबंधों में साहित्य, समाज, कला, शिक्षा, नैतिक तथा धार्मिक विश्वास आदि पर शल्य के समान चुभने वाला व्यंग्य किया जाता है। डॉ. के. एम. मायावंशी अपनी पुस्तक *कुबेरनाथ राय के निबंधो का आलोचनात्मक अनुशीलन* में कहते हैं:

> हास्य प्रधान निबंधों में हास्य के कारण गंभीरता के स्थान पर उथलापन आ जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल अपने ‘चिन्तामणि’ में भी कहीं-कहीं हास्य तथा व्यंग्य की सृष्टि करते हैं। इसके पश्चात ‘मेरी असफलताएँ’ निबंध संग्रह में बाबू गुलाबराय भी हास्य का जगह-जगह पुट प्रस्तुत करते हैं। (35)

ललित निबंध

ललित शब्द का प्रयोग सामान्य रूप से सुंदर एवं मनोहर वस्तु के संदर्भ में होता है। कोमल, सुहावना, प्रिय, प्रांजल आदि ललित के लिए ही प्रयोग होने वाले शब्द है। हर प्रकार के निबंध में लेखक के व्यक्तित्व पर उसके समय का प्रभाव देखने को मिलता है, तथापि ‘ललित निबंध’ में लेखक का व्यक्तित्व पूरी तरह उभरकर हमारे समक्ष आता है। वर्तमान में लिखे जाने वाले अधिक निबंध इसी कोटि में आते हैं। ललित निबंधो में लालित्य का समावेश भाषा, विषयवस्तु, शैली-शिल्प में किया जाता है।

प्रमुख ललित निबंधकारों में **आचार्य हज़ारीप्रसाद दिवेदी, विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथ राय** के अतिरिक्त डॉ विवेकी राय, देवेन्द्र सत्यार्थी आते हैं। वर्तमान में डॉ परिचय दास, डॉ श्यामसुंदर दुबे, डॉ श्रीराम परिहार के अतिरिक्त और भी निबंधकारों ने इसे आगे बढ़ाया है।

1.2. संस्कृति का अर्थ और परिभाषा

गणेश शर्मा के *संस्कृत धातु कोश* के अनुसार "संस्कृति शब्द की निष्पति 'सम' उपसर्ग लगाकर 'कृ' धातु से स्त्रीलिंग के 'किव' लगाने से होती है। इसका शाब्दिक अर्थ है साफ़ करना या परिष्कृत करना।" (18-19) डॉ. श्यामसुन्दर दास के *हिन्दी शब्द सागर* में 'संस्कृति' शब्द रहन-सहन की रूढ़ि के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। (3415) उसी से संस्कार, संस्कृत आदि शब्दों का निर्माण होता है। जिस समाज में मनुष्य जन्म लेता है, वहाँ का रीति-रिवाज, रहन-सहन, खान-पान संस्कृति की ही देन है। अगर मनुष्य से उसकी संस्कृति उससे छीन ली जाये तो उसके पास रह भी क्या जायेगा, वह एक पशु मात्र ही रह जायेगा। संस्कृति समस्त सीखे हुए व्यवहार अथवा उस व्यवहार का नाम है, जो सामाजिक परम्परा से प्राप्त होता है। इस प्रकार संस्कृति का अर्थ हुआ शुद्ध किया हुआ, परिष्कृत एवं परिमार्जित करना। अंग्रेजी भाषा में संस्कृति के लिए Culture शब्द का प्रयोग किया जाता है। डॉ. एस.एल. नागोरी की पुस्तक *प्राचीन भारतीय संस्कृति* के अनुसार- "Culture शब्द लैटिन के 'क्ल्चुरा' तथा 'कोलियर' शब्दों से निकला है, जिनका अर्थ क्रमश : 'उत्पादन' एवं 'परिष्कार' है।" (1) इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि संस्कृति द्वारा किसी व्यक्ति समाज अथवा राष्ट्र के लक्षणों को परखा जा सकता है। इस प्रकार संस्कृति समस्त कालों के समाज एवं सभ्यता की ऐसी संचित निधि है, जो परिष्कार द्वारा निरंतर प्रगति करती हुई एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को उतराधिकार स्वरूप प्राप्त होती रहती है।

संस्कृति वह विकसित सम्पदा है, जिसके आश्रय में कोई भी राष्ट्र अपनी अस्मिता को बचाए रखता है, वही उसकी पहचान होती है। अपने जीवन की उन्नति एवं विकास के लिए हमें संस्कृति की शरण में जाना होता है। प्रत्येक राष्ट्र की अपनी संस्कृति होती है, जिसका निर्माण उसके अग्रगण्य नेताओं के द्वारा सम्पन्न होता है। भारतीय संस्कृति संसार की अन्य संस्कृतियों से अनेक बातों में उत्कृष्ट है। राम उपाध्याय की पुस्तक *भारतीय धर्म और संस्कृति* के अनुसार:

> कोई संस्कृति इतने रत्न भंडार से भरी हुई नहीं है, जितनी हमारी अपनी संस्कृति है। हमने उसे जाना नहीं है, हमें तो उसके अध्ययन को तुच्छ मानना और उसका मूल्य कम करना सिखाया गया है। हमने उसके अनुसार जीवन बताना छोड़ दिया है। (1)

संस्कृति की परिभाषा

मनुष्य के विकास में बुद्धि का साथ उसकी सौन्दर्य भावना ने दिया है। बुद्धि के द्वारा यह अपनी शारीरिक आवश्यकताओं को पूरा करके खुश रह सकता है, किन्तु वह इतने से ही संतुष्ट न रहकर, अपने हृदय के उल्लास अथवा आनन्द की प्राप्ति के लिए सौन्दर्य की खोज करता आ रहा है। इस प्रकार उसने दर्शन, काव्य, कला और शिल्प आदि की सृष्टि की है। मानव अपनी या प्रकृति की किसी रचना को पूर्ण मानकर सन्तोष नहीं कर लेता, बल्कि नित्य ही उसे अधिक पूर्ण या सुन्दर बनाने का प्रयत्न करता रहा है। मानव का यही विकास संस्कृति है। संस्कृति का अर्थ सुधारना, सुन्दर या पूर्ण बनाना है।

संस्कृति किसी एक समाज में पाई जाने वाली उच्चतम मूल्यों की वह चेतना है, जो सामाजिक प्रथाओं, व्यक्तिओं की चितवृतियों, भावनाओं, मनोवृतियों, आचरण के साथ-साथ उसके द्वारा भौतिक पदार्थों को विशिष्ट स्वरूप दिए जाने में अभिव्यक्त

होती है। संस्कृति जीवन जीने का एक विशिष्ट दृष्टिकोण है, अनुभव के मूल्याँकन और व्याख्या का एक विशिष्ट और मूलभूत प्रकार है। संस्कृति को किसी एक परिभाषा में बाँधना कठिन कार्य है, इस प्रकार हिन्दी के विद्वानों ने संस्कृति की अनेक परिभाषाएँ प्रस्तुत की हैं।

अशोक के फूल में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार- "संस्कृति मनुष्य की विविध साधनाओं की सर्वोतम परिणति है।" (70)

भारतीय संस्कृति पुस्तक में डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र के अनुसार- "मांजी-संवारी जीवन वृति तथा जीवन चर्चा का ही नाम संस्कृति है।" (5)

स्वतंत्रता और संस्कृति में डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन के अनुसार- "संस्कृति विवेक, बुद्धि का जीवन भली प्रकार मान लेने का नाम है।"(53)

> *संस्कृति के चार अध्याय'* पुस्तक में रामधारी सिंह दिनकर के अनुसार- जिंदगी का एक तरीका ही संस्कृति है। यह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है, जिसमें हम जन्म लेते हैं। संस्कृति वह चीज मानी जाती है, जो हमारे सारे जीवन में व्याप्त हुए तथा जिसकी रचना और विकास में अनेक सदियों के अनुभवों का हाथ है। यही नहीं बल्कि संस्कृति हमारा पीछा जन्म-जन्मान्तरों तक करती है। (123)

> *भारतीय संस्कृति* पुस्तक में डॉ. देवराज कहते हैं कि 'संस्कृति' शब्द का अर्थ बड़ा अनिश्चित है। नर विज्ञान में संस्कृति का अर्थ है, 'समस्त सीखा हुआ व्यवहार' अर्थात वह सब बातें जो हम समाज के सदस्य होने के नाते सीखते हैं, संस्कार वह है, जो मन, रुचि, आचार-विचार आदि को परिष्कृत तथा उनन्त करने का कार्य ही संस्कृति है। (20)

केन्द्र और परिधि पुस्तक में अज्ञेय के मत अनुसार - संस्कृति मूलत: एक मूल्य दृष्टि और उससे निर्दिष्ट होने वाले निर्माता प्रभावों का नाम है और सभी निर्माता प्रभावों को जो समाज को, व्यक्ति को, परिवार को, सबके आपसी सम्बन्धों को, श्रम और सम्पति के विभाजन और उपयोग को प्राणी मात्र से ही नहीं, वस्तु मात्र से हमारे सम्बन्धों को निरूपित और निर्धारित करते हैं। (290-91)

कला और संस्कृति पुस्तक में वासुदेवशरण अग्रवाल का कहना है- संस्कृति मनुष्य के भूत, वर्तमान और भावी जीवन का सर्वांगपूर्ण प्रकार है। हमारे जीवन का ढंग हमारी संस्कृति है। जीवन के नानाविध रूपों का समुदाय ही संस्कृति है। (1)

उपर्युक्त परिभाषाओं को देखने के बाद संस्कृति में निम्नलिखित बातें दृष्टिगोचर होती हैं-

- संस्कृति समुदाय विशेष पर प्रकाश डालती है।
- मनुष्य के जीवन का ढंग ही संस्कृति है।
- बुद्धि और कर्म के क्षेत्र में सृजन करना ही संस्कृति है।
- जीवन को सुधारना, सुन्दर बनाना ही संस्कृति है।
- जीवन को समझने का नाम ही संस्कृति है।
- जिससे आदर्श प्रतिस्थापित होते हैं, उसे संस्कृति कहते हैं।
- सामाजिक चेतना का निर्वाह करना ही संस्कृति है।
- आचरण का शुद्धिकरण ही संस्कृति है।
- मानव निर्मित परिवेश की संगति ही संस्कृति है।
- प्रथाओं, रीति-रिवाजों, पारस्परिक सौहार्द आदि का नाम ही संस्कृति है।

- संयम, शांति और सहिष्णुता आदि भी संस्कृति है।

1.3. चेतना का अर्थ और परिभाषा

चेतना मनुष्य की वह विशेषता है, जो उसे जीवित रखती है और जो उसे व्यक्तिगत विषय तथा अपने वातावरण के विषय में ज्ञान कराती है। इसी ज्ञान को विचारशक्ति (बुद्धि) कहा जाता है। यही विशेषता मानव में ऐसे काम कारती है, जिसके कारण वह जीवित प्राणी समझा जाता है। मानव अपनी शारीरिक क्रिया तब तक नहीं कर सकता, जब तक उसे यह ज्ञान पहले न हो कि वह इस क्रिया को कर सकता है। मनुष्य केवल चेतना से उत्पन्न होकर उसकी प्रेरणा से कोई कार्य कर सकता है। चेतना वह विशेष गुण है, जो मानव को जीवित बनाती है और चरित्र उसका वह सम्पूर्ण संगठन है, जिसके कारण उसके जीवित रहने की वास्तविकता व्यक्त होती है। जिसके द्वारा जीवन के विभिन्न कार्य चलते हैं।

डॉ. रामचन्द्र वर्मा ने अपने *मानक हिन्दी कोश* में चेतना शब्द की व्युत्पति 'चित' संज्ञा के अर्थ में मानकर चित + युच + अज् + टाप् के संयोग से माना है और चेतना शब्द का अर्थ निम्न दिया है:

> 1. मन की वह वृति या शक्ति जिससे जीवन या प्राणी को आन्तरिक अनुभूतियों, विचारों, भावों आदि और बाह्य घटनाओं, तत्वों या बातों का अनुभव या भाव होता है। 2. सोच-समझकर किसी बात की ओर ध्यान देना। 3. ऐसी स्थिति में होना कि बुरे परिणामों से बचकर अच्छी बातों की ओर प्रवृत हो सकें। (274)

चेतना के कारण ही मनुष्य किसी क्रिया विशेष तथा विचारों को व्यक्त करता है और उसी से मनुष्य की पहचान होती है। चेतना मनुष्य के मस्तिष्क में क्रियाशील और

गतिशील भवावेग बोध की प्रक्रिया है। इसी के माध्यम से व्यक्ति, निरीक्षण, चिंतन, शंका, तर्क-ज्ञान और इच्छा से संबंधित मानसिक स्वरूपों से परिचित होता है और निश्चित समय में अपने मानस में चलने वाले घात-प्रतिघातों को परख सकता है। मनुष्य की चेतना इस बात पर निर्भर करती है कि व्यक्ति के अन्दर सोच-शक्ति, विचार-शक्ति, संचित-शक्ति, चिंतन-शक्ति विद्यमान है और वह इनका प्रयोग कर सकता है। चेतना वह विशेष गुण है, जो मनुष्य को जीवन प्रदान करती है, जिसके द्वारा वास्तविकता व्यक्त होती है और जीवन के विभिन्न कार्य चलते रहते हैं। इन सभी बातों पर ध्यान रखते हुए यही कहा जा सकता है कि चेतना है- ज्ञानमूलक मनोवृति, बुद्धि, समझ, होश-हवास, स्मृति, याद, होश में आना, सावधान होना, सोच-समझकर ध्यान देना आदि यह सब ही चेतना के तत्व है, इसी को चेतना कहा जाता है।

चेतना की परिभाषा

मनोविज्ञान की दृष्टि से चेतना मानव में उपस्थित वह तत्व है, जिसके कारण उसे सभी प्रकार की अनुभूतियाँ होती हैं। चेतना के कारण ही हम देखते, सुनते, समझते हैं और अनेक विषय पर चिंतन करते हैं। इसी के कारण हमें सुख-दुःख की अनुभूति होती है और हम इसी कारण अनेक प्रकार के निश्चय करते तथा अनेक पदार्थों की प्राप्ति के लिए चेष्टा करते हैं। मानव चेतना अन्य प्राणियों से भिन्न और उत्कृष्ट है। पशु-जगत इन्द्रियजन्य चेतना तक सीमित होता है, किन्तु मानव चेतना संकल्प और सक्रियता से प्रेरित और प्रयत्नशील है। मानव सोच सकता है, याद रख सकता है, ज्ञान का प्रयोग कर सकता है। इसी कारण अन्य जीवों से मनुष्य की चेतना भिन्न है।

साहित्य का आधार दर्शन पुस्तक में डॉ. जयनाथ नलिन के अनुसार- बोध, भाव और कर्म की समन्वित राशि है चेतना। चिन्तन, अनुभूति और कर्म की

प्रक्रिया, इनका प्रसार और विकास ही चेतना है। इनकी प्रतिक्रिया और प्रणाम के रूप में निरंतर उगने वाली इनकी नई-नई शाखाएँ-प्रशाखाएँ सभी चेतना में समाविष्ट हैं। बौद्धिक सक्रियता (चिन्तन), भावात्मक सक्रियता (अनुभूति) और दैहिक सक्रियता (कर्म) को कसौटी मानकर ही प्राणी की चेतना का निर्धारण किया जाता है। (1)

मंजूर सैय्यद ने अपनी पुस्तक *प्रीकर माचवे के उपन्यासों में सामाजिक चेतना* में कहा है कि दर्शन में चेतना एक मानसिक, बौद्धिक उच्च शक्ति है। जिसके माध्यम से विशुद्ध मानव वृतियों, एवं गुणों का ज्ञान होता है। सामाजिक संबंधों, सामाजिक व्यवहारों के द्वारा यह ज्ञान प्राप्त करना सामाजिक चेतना का उद्घाटन है। मानव चेतना अपने इर्द-गिर्द के विभिन्न परिवेश से संबंधित घटनाओं को घटनाओं से संबंधित स्मृतियों को अनुभूत बुलबुले के समान कह सकते हैं जो कुछ क्षणमात्र के लिए निर्माण होता है एवं तुरंत ही लुप्त हो जाता है। उसी प्रकार मानव चेतना में विचारों का चक्र स्थिर नहीं होने से तुरंत परिवेश से संबंधित अनुभूतियाँ, स्मृतियाँ परिवर्तित अथवा लुप्त हो जाती हैं। चेतना की गति अनंत है, इस गति को विभक्त नहीं किया जा सकता, केवल उसे व्यक्ति के अंतर्मन की गतिविधियों द्वारा जाना जा सकता है। (25-26)

नयी कविता में राष्ट्रीय चेतना पुस्तक में डॉ. देवराज पथिक के अनुसार- चेतना निष्प्राण, मृतप्राय और शून्य में जिजीविषा की विद्युत तरंगों का संचार करके मानव जाति के लिए सुख और आह्लाद का कारण बनती है। सच्ची चेतना सत्-चित आनंद के कारण बनती है। चेतना अपने समग्र रूप में सत्यं, शिवमं, सुंदरम की विपुल कल्याणकारी मानसिकता की खोज में आतुर भाव से आकंठ निमग्र रहती है। मन और आत्मा की गुत्थियों और गांठो को सुलझाने और खोलने का

कार्य चेतना करती है। जीवन के प्रति आस्था उन्नति के लिए आकांक्षा, गंतव्य के निर्धारण की क्षमता संकल्प की सम्पूर्ति के लिए संघर्षशील दृष्टिकोण का निर्माण केवल चेतना शक्ति द्वारा संभव है। (50)

हिंदी विश्वकोश भाग-4 में डॉ. रामप्रसाद त्रिपाठी के अनुसार- मनुष्य की चेतना सोचने, चयन करने और चिन्तन करने की शक्ति के कारणों से उन्हें अन्य सभी घटनावलियों के प्रति सदैव पंचेंद्रियों को युक्त रखना ही 'प्रज्ञा' - चेतना कहलाती है। चेतना स्वयं को और अपने आस-पास के वातावरण को समझने तथा उसकी बातों का मूल्याँकन करने की शक्ति का नाम है। (82)

1.4. सांस्कृतिक चेतना का अर्थ और परिभाषा

सांस्कृतिक चेतना का अर्थ है 'संस्कृति सम्बन्धी' चेतना। अपनी संस्कृति के प्रति जागरूकता को सांस्कृतिक चेतना नाम से अभिहित करेंगे। अगर देखा जाये तो सांस्कृतिक चेतना शब्द 'संस्कृति' और 'चेतना' दो अलग-अलग शब्दों से बना है। सांस्कृतिक चेतना वह तत्व है, जो हमारे जीवन और व्यक्तित्व को सुंदर, समृद्ध और सार्थक बनाता है। संस्कृति वह है, जिसमें हमारा रहन-सहन, खान-पान, हमारे संस्कार और हमारे रीति-रिवाज आते हैं, वैसे ही चेतना है सचेत होना, सोच-समझकर चलना, होश में आना, सोच-विचार करना और सावधान होना। इसी तरह यह कहा जा सकता है कि सांस्कृतिक चेतना का अर्थ है, हमारी संस्कृति के बारे में ज्ञान होना या सचेत होना या उसको बनाये रखना। संस्कारशील व्यक्ति इसे अपने व्यवहार में लाने की सचेत कोशिश करता है।

जैसे संस्कृति के शब्दार्थ को लेकर विद्वानों में मतभेद है, उसी तरह सांस्कृतिक चेतना को लेकर भी सभी विद्वानों ने अपने-अपने विचार दिए हैं। सांस्कृतिक चेतना

को भी किसी एक परिभाषा में बाँध पाना कठिन कार्य है। सभी विद्वानों ने सांस्कृतिक चेतना की अलग-अलग परिभाषाएँ दी हैं।

बौद्ध संस्कृति पुस्तक में राहुल सांकृत्यायन के अनुसार- एक पीढ़ी आती है, वह अपने आचार-विचार, रुचि-अरुचि, कला-संगीत और भोजन-छाजन या किसी और दूसरी अध्यात्मिक धारणा के बारे में कुछ स्नेह की मात्रा अगली पीढ़ी के लिए छोड़ जाती है। एक पीढ़ी के बाद दूसरी, दूसरी के बाद तीसरी और आगे अनेक पीढ़ियाँ आती जाती रहती हैं और सभी अपना प्रभाव या संस्कार अगली पीढ़ी पर छोड़ जाती हैं, यही प्रभाव (संस्कार) संस्कृति है। (3)

कला और संस्कृति पुस्तक में डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार- संस्कृति मनुष्य के भूत, वर्तमान और भावी जीवन का सर्वांगपूर्ण प्रकार है। हमारे जीवन का ढंग हमारी संस्कृति है। जीवन के अनेक रूपों का समुदाय ही संस्कृति है। तथा संस्कृति मानवीय जीवन की प्रेरक शक्ति है। वह जीवन की प्राणवायु है, जो उसके चैतन्य भाव की साक्षी है। संस्कृति विश्व के प्रति अनंत मैत्री की भावना है। (3)

डॉ. नगेन्द्र अपनी पुस्तक *साकेत : एक अध्ययन* में कहते हैं - संस्कृति मानव जीवन की वह व्यवस्था है, जहाँ उसके प्रकृत राग-द्वेषों का परिमार्जन हो जाता है। (47)

1.5. संस्कृति के विविध आयाम

संस्कृति के इतिहास से मानव की प्रगति का परिचय मिलता है। मानव अपना विकास करने के लिए दूसरे जीवधारियों से अधिक प्रयत्न करता आ रहा है। अन्य प्राणियों को जैसा प्रकृति रखना चाहती है, वह वैसे ही रहते हैं, यही कारण है, उनका

जीवन आज से हजारों वर्ष पहले जैसा था, आज भी वैसा है। यह पशुओं का प्राकृतिक जीवन है। प्रकृति की दी हुई सुविधाओं से संतुष्ट न रहकर मानव ने अधिक से अधिक वस्तुओं को अपने लिए उपयोगी बनाने का प्रयत्न किया है। जीवन के सभी क्षेत्रों में वह सदा से ही अधिक से अधिक सुविधाओं और सुखों के लिए इच्छुक रहा है। यह ही मानव का सांस्कृतिक जीवन है। शुक्ल सच्चिदानंद *भारतीय संस्कृति के विविध आयाम* पुस्तक में कहते हैं- "मनुष्य के विकास के मूल में उसकी बुद्धि है, जो अन्य प्राणियों को बहुत कम मिली है। मानव को प्रकृति ने बुद्धि-मान बनाया है।"(55)

1.5.1. प्रकृति और संस्कृति

संस्कृति के विकास में प्राकृतिक दशा का सबसे बढ़कर महत्व होता है। प्राकृतिक दशा के अनुरूप मानव की आवश्यकताएँ होती हैं। प्रकृति से तात्पर्य उस दृश्य-अदृश्य जगत से है, जिसकी रचना स्वत: होती है। उसकी सृष्टि में मानव का कोई योग नहीं होता। प्रकृति के द्वारा ही समूचे ब्रह्माण्ड की रचना की गई है।

> रामजी उपाध्याय ने अपनी पुस्तक *भारतीय धर्म और संस्कृति* में कहा है- प्र का अर्थ है 'प्रकृष्ट' और 'कृति' से सृष्टि का बोध होता है। प्रकृति का मूल अर्थ यह ब्रह्माण्ड है। इस ब्रह्माण्ड के छोटे से एक टुकड़े के रूप में इस पृथ्वी का अस्तित्व है, जिस पृथ्वी पर मनुष्य का जन्म हुआ है।" (3)

इस पृथ्वी से अलग मानव जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती, इसलिए मनुष्य का पहला कर्तव्य होता है, इस धरती की रक्षा करना, जबकि मानव सबसे अधिक दोहन इसी पृथ्वी का करते हैं। मानव इस प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्राय: अपने आस-पास प्राप्त होने वाली प्रकृति-प्रदत वस्तुओं को उपयोग में लाता है। यदि प्रकृति की विषमताओं के कारण उसकी नित्य की आवश्यकताएँ अधिक हो जाती

हैं और उनकी पूर्ति के लिए उसे प्रकृति से संघर्ष करना पड़ता है, तो स्वभावत : वह प्रकृति के आदर को दृष्टि से नहीं देख पाता। ऐसी प्रकृति के संसर्ग में वह स्वयं कठोर बन जाता है। इसके विपरीत यदि प्रकृति उदार हो, थोड़े श्रम से भी अपनी शरण में आए हुए लोगों का भरण-पोषण करती हो तो लोगों के हृदय में उसके प्रति सदभावना उत्पन्न होती है। प्रकृति की उदारता, सहानुभूति, सहिष्णुता आदि का प्रथम पाठ मानव को पढ़ाती है। प्राय: प्राकृतिक संविधानों के अनुरूप ही भारत की सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक एकता का प्रादुर्भाव हुआ है। अत: यही कहा जा सकता है कि प्रकृति अपनी विशाल परिधि में बाह्य एवं आन्तरिक दोनों ही प्रकार के जगत को समाहित किये हुए हैं। इसी आधार पर इसे बाह्य प्रकृति एवं अन्त : प्रकृति की संज्ञा प्रदान की जाती है। *साहित्य का आधार-दर्शन* पुस्तक में डॉ. जयनाथ नलिन के अनुसार- “मानव कृति से भिन्न, जिन पदार्थों का बोध या ग्रहण हमारी इन्द्रियाँ करती हैं, वह सब प्रकृति के अन्तर्गत हैं।”(117)

सृष्टि के आदिकाल में मानव जीवन केवल पशु-सदृश्य ही था। उसके पास केवल प्राकृतिक उपादान ही विद्यमान थे, और उसे प्राकृतिक आपदाओं ने भयभीत भी किया था। जैसे जैसे मानव के मस्तिष्क का विकास होता गया उसकी अपनी आवश्यकताएँ दिन-प्रति-दिन बढ़ती गई और वह प्राकृतिक संसाधनों का संस्कार करने लगा और अपना मानव जीवन सुखद बनाने लगा। सामाजिकता के विकास ने मानव व्यवहार में परिवर्तन किया और साथ ही एक नई भावना उत्पन्न की। समय के साथ मानव की रुचि बढ़ती गई और वह अपने विकासशील अन्त: करण द्वार दर्शन, साहित्य, कला, धर्म एवं नैतिक मूल्यों का विकास किया और दूसरी ओर इनके माध्यम से वह अपने विचार एवं आचार को संस्कृत और परिष्कृत करता गया। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि संस्कृति का प्रकृति से घनिष्ठ सम्बन्ध है। हमारी जीवनधारा उससे अलग रहकर चल

ही नहीं सकती। अत: निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि प्रकृति सांस्कृतिक विकास की आधारभूमि है।

1.5.2. धर्म और संस्कृति

भारतीय संस्कृति में 'धर्म' शब्द की अभिव्यक्ति अतिशय व्यापक रही है। धर्म के अन्तर्गत प्राय: उन नियमों का समावेश किया गया है, जिनसे व्यक्ति के अभ्युदय के साथ ही समाज की आधिभौतिक और आध्यात्मिक प्रगति की सम्भावना हो। इस प्रकार जीवन के प्रथम श्वास से लेकर हमारे जीवन के अन्तिम श्वास तक के प्रत्येक क्षण में मानव किस प्रकार व्यवहार करे अथवा उसके साथ दूसरे कैसा व्यवहार करें, यह धर्म ही बतलाता है। ऐसी परिस्थिति में मानव धर्म के द्वारा पदे-पदे नियंत्रित है, पर धर्म का यह नियंत्रण मानव को दास बनाकर उसकी उन्नति में बाधक नहीं होता, अपितु धर्म सांस्कृतिक उत्तराधिकार के रूप में वह अमूल्य निधि है, जिसके सहारे अनायास ही कोई पुरुष पर्याप्त ऊँचाई तक अपने व्यक्तित्व का विकास कर लेता है। धर्म में प्राय उन सिद्धांतो का समावेश दिया गया है, जिसका ज्ञान समाज के महापुरुषों को सत्य का प्रयोग करते समय हुआ था। *भारतीय संस्कृति* पुस्तक में डॉ. बलदेव मिश्र के अनुसार – "किसी वस्तु का वस्तुत्व ही उसका धर्म कहा जाता है। धर्म बिना किसी वस्तु का अस्तित्व नहीं। मनुष्य के सम्बन्ध में भी यही बात है। धर्म के बिना उसका भी अस्तित्व नहीं रह सकता।"(6)

धर्म सांस्कृतिक प्रक्रिया में विशिष्ट योग प्रदान करता है, क्योंकि यह सर्वमान्य मानवीय सिद्धान्त केवल मानव-मन का ही परिष्कार नहीं करते, अपितु मनुष्य को आत्मिक उत्कर्ष भी प्रदान करते हैं। सत्य, अहिंसा, दया, परोपकार आदि का अनुसरण करने से मनुष्य के केवल विचार ही शुद्ध नहीं होते, अपितु आचार भी पवित्र हो जाता है। धर्म हमारे शरीर तथा बाह्य पर्यावरण को तो शुद्ध करता ही है, साथ ही महान

सांस्कृतिक वातावरण की भी रचना करता है। धर्म के अच्छे सांस्कृतिक पर्यावरण से ही मानव अपनी संस्कृति को पुष्पित और पल्लवित बनाने की प्रेरणा लेता है। धार्मिक अनुष्ठानों के कारण अधिकाधिक मनुष्य एक-दूसरे के सम्पर्क में आते हैं, जिससे स्वस्थ सांस्कृतिक परम्पराओं का विकास होता है। *धर्म और समाज* पुस्तक में राधाकृष्णन के अनुसार:

> धर्म वह अनुशासन है, जो अंतरात्मा को स्पर्श करता है और हमें बुराई से संघर्ष करने में सहायता देता है, काम, क्रोध और लोभ से हमारी रक्षा करता है, नैतिक बल को उन्मुक्त करता है, संसार को बचाने और महान कार्य के लिए साहस प्रदान करता है। (49)

वैदिक धर्म ग्रन्थों में बताया गया है कि मानव संस्कारों के द्वारा अपनी योग्यता किस प्रकार बढ़ाए, चार आश्रमों में अपने व्यक्तित्व का विकास किस प्रकार करे, चारों वर्णों के लोग सामाजिक सुव्यवस्था के लिए कैसा व्यवहार करें, कैसा भोजन और पान व्यक्तित्व के विकास के लिए उपयोगी होता है, शरीर की शुद्धि कैसे की जाए, कैसे घर, गाँव या प्रदेश में रहा जाए, कृषि, पशु पालन और व्यापार आदि को किस प्रकार करें, राजा न्यायालय और युद्ध-भूमि में कैसा आचरण करे, प्रजा-पालन की विधि क्या है, शिल्प और कलाओं के उच्च सिद्धान्त क्या है। इन विषयों के अतिरिक्त देवताओं से सम्बद्ध कर्मकाण्ड और आचार तथा स्वर्ग-नरक की चर्चा धर्म-ग्रन्थों में मिलती है। इसी तरह धर्म सांस्कृतिक प्रक्रिया में विशिष्ट योग प्रदान करता है, क्योंकि मानवीय सिद्धान्त केवल मानव मन को ही परिष्कार नहीं करते, अपितु मनुष्य को आत्मिक उत्कर्ष भी प्रदान करते हैं। देवेंद्र स्वरूप की पुस्तक *संस्कृति एक नाम-रूप अनेक* के अनुसार:

> जिस प्रकार किसी राक्षस के प्राण एक तोते में बसते थे, उसी प्रकार भारत के प्राण 'धर्म' में छिपे हैं। धर्म को भारत से छीन लें तो भारत मर जाएगा। यह धर्म

ही है, जिसका संदेश विश्व को देने के लिए सैकड़ों वर्ष तक अत्याचारों को सहने, लगभग हजार वर्ष तक विदेशी शासन में रहने और विदेशियों द्वारा पीड़ित होने पर भी यह देश आज तक जीवित रहा है। अभी भी उसके जिंदा रहने का कारण यही है कि वह सदैव की भान्ति आज भी ईश्वर का आश्रय लिए हुए है, धर्म और आध्यात्मिकता के अमूल्य भंडार की रक्षा करता आया है। (1)

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि संस्कृति और धर्म में गहरा सम्बन्ध है। संस्कृति के विकास के साथ-साथ धर्म का उन्नयन होता है और धर्म के उन्नयन के साथ संस्कृति समृद्ध होती है। भारत धर्म में जीता है, धर्म के लिए जीता है और धर्म ही भारत की आत्मा है।

1.5.3. सभ्यता और संस्कृति

सभ्यता और संस्कृति को समानार्थी समझ लिया जाता है, जबकि यह दोनों अवधारणाएँ अलग-अलग हैं। सभ्यता से किसी संस्कृति की बाहरी अवस्था का बोध होता है। संस्कृति विस्तार है, तो सभ्यता कठोर स्थिरता। सभ्यता में भौतिक पक्ष प्रधान होता है, जबकि संस्कृति में वैचारिक पक्ष प्रबल होता है। यदि सभ्यता शरीर है, तो संस्कृति उसकी आत्मा है। *विचार और वितर्क* निबंध संग्रह में हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं- “सभ्यता समाज की बाह्य व्यवस्थाओं का नाम है, संस्कृति व्यक्ति के अंदर के विकास का।”(123) बस यही दोनों का मौलिक भेद है। संस्कृति अपेक्षाकृत सूक्ष्म है और सभ्यता स्थूल। सभ्यता का आधार विचार है और संस्कृति का आधार आचार है। सभ्यता का सम्बन्ध जीवन-यापन या सुख-सुविधा की बाहरी वस्तुओं से है, जबकि संस्कृति का सम्बन्ध आन्तरिक वस्तुओं से है। सभ्यता साधन है, लेकिन संस्कृति साध्य है। साध्य का तात्पर्य अन्तिम लक्ष्य से है, जिसमें असीम संतुष्टि का अनुभव होता है और इस असीम संतुष्टि की प्राप्ति के लिए जो विधि अपनाई जाती है, उसे

साधन कहते हैं। आजकल जिस प्रकार संस्कृति के लिए अंग्रेजी में 'कल्चर' शब्द का प्रयोग हो रहा है, उसी प्रकार सभ्यता के लिए 'सिविलाइज़ेशन' शब्द का व्यवहार होता है। सभ्यता मनुष्य के सामाजिक गुणों तथा बाह्य वैभव की द्योतिका है।

संस्कृति और सभ्यता के अन्तर को साध्य तथा साधन के विवेचन द्वारा स्पष्टता से समझा जा सकता है। सभ्यता वह साधन है, जिसके द्वारा संस्कृति रूपी साध्य की प्राप्ति की जाती है। संस्कृति के क्षेत्र में आने वाले दर्शन, आदर्श, विश्वास और परम्पराओं आदि जीवन के लक्ष्य अथवा साध्य बन जाते हैं। सभ्यता मानव की बाह्य सुख-समृद्धि तथा वैभव का साधन मात्र है। सभ्यता यद्यपि संस्कृति का ही एक महत्वपूर्ण अंग है, तथापि उसका महत्व तभी तक है, जब तक वह संस्कृति से प्रेरित एवं अनुप्राणित है। शरीर का महत्व भी तभी तक है, जब तक उसमें प्राण रहते हैं। *अशोक के फूल* में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी सभ्यता और संस्कृति के भेदोपभेद को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं:

> मनुष्य स्थूल जगत को छोड़कर नहीं रह सकता, इसीलिए उसे स्थूल की भूख मिटाने एवं सूक्ष्म से सूक्ष्मतर तत्व की ओर बढ़ाने वाली उर्ध्वगामिनी वृति को संतुष्ट करने के दो कर्तव्य निभाने पड़ते हैं। आहार, निद्रा आदि के साधन भी जुटाने पड़ते हैं। इस प्रकार आर्थिक व्यवस्था, राजनीतिक संघटन, नैतिक परम्परा और सौन्दर्य बोध को तीव्रतर करने की योजना, ये सभ्यता के चार स्तम्भ है, इन सभी के सम्मिलित प्रभाव से ही संस्कृति बनती है। (80-81)

स्पष्टत: सभ्यता और संस्कृति दोनों एक ही सिक्के के दो पक्ष हैं। जो हम हैं, वही हमारी संस्कृति है, जिसका हम उपभोग करते हैं, वह हमारी सभ्यता है। संस्कृति आत्मा है, तो सभ्यता शरीर। जब तक आत्मा है, तभी तक शरीर का महत्व है।

1.5.4. साहित्य और संस्कृति

किसी जाति का साहित्य उसके वर्षों के चिंतन का फल होता है। साहित्य पर भिन्न-भिन्न कालों की संस्कृति का प्रभाव अनिवार्य पड़ता है। साहित्य में मानव के जीवन का प्रवाह प्रतिलक्षित होता है। साहित्य स्वयं इस प्रवाह और मनुष्य की क्रमश: विस्तारित होती हुई चेतना का परिणाम है। कई अर्थों में वह प्रवाह की गति और दिशा को भी प्रभावित करता है। *भारतीय संस्कृति* पुस्तक में डॉ. देवराज का कहना है:

> साहित्य में कवी या लेखक के व्यक्तित्व तथा सामाजिक अनुभवों, दार्शनिक-आध्यात्मिक विचारों, प्रेम-भावना और सौन्दर्यबोध आदि की अभिव्यक्ति होती है। इन सबसे संस्कृति का गहन सम्बन्ध है, क्योंकि सांस्कृतिक चेतना कला तथा चिन्तनपरक कृतियों में अधिक स्पष्ट रूप से प्रकाश पाती है। (25)

साहित्य और संस्कृति का सम्बन्ध भी बड़ा संश्लिष्ट होता है। किसी भी जाति के साहित्य के द्वारा उसकी संस्कृति का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। जिस देश की संस्कृति जितनी समुन्नत होगी, उस देश का साहित्य भी उतना ही उज्ज्वल होगा। *साहित्य की आकर्षण शक्ति* पुस्तक में डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त ने लिखा है- “मानव जाति के इतिहास में होने वाली सांस्कृतिक प्रगति मुख्यतया श्रेष्ठ साहित्यिक कृतियों के रूप में सुरक्षित रहती हैं।”(31) “साहित्य भाषा के माध्यम से रचित वह सौन्दर्य आकर्षणयुक्त रचना है, जिसके अर्थ-बोध से सामान्य व्यक्ति को आनन्द बोध की अनुभूति होती है।”(3) साहित्य में निहित स्थितियों की व्याख्या और मूल्याँकन केवल सौन्दर्य और रसानुभूति के क्षेत्र तक सीमित नहीं होते, उनका सामाजिक अर्थ और प्रभाव बड़ा व्यापक होता है। साहित्य मानव की स्वयंचेतना और जीवन चेतना में जन्म लेता है। साहित्य में मानवीय चेतना की प्रक्रिया और उसका धरातल दोनों

परिलक्षित होते हैं। प्रकृति, अन्य मनुष्य और उसके समुदाय, और अतींद्रिय जगत को मानव किस तरह देखता है, इसका स्पष्ट आभास उसके साहित्य में मिलता है। मानव की एक स्पष्ट परिकल्पना साहित्य में अंतर्निहित होती है। संस्कृति द्वारा परिभाषित मानव-जीवन के उद्देश्य तथा उपलब्धि के व्यक्तिगत और सामूहिक साधन भी साहित्य में अभिव्यक्ति पाते हैं। साहित्य मानव की सर्वोतम कृति है। मानव के व्यक्तित्व का निर्माण इसी संस्कृति द्वारा ही होता है। मानव जिस तरह के समाज में रहता है या पलता है, उसका प्रभाव उस के व्यक्तित्व पर देखने को मिलता है। इसी तरह साहित्यकार के व्यक्तित्व में संस्कृति की विशेषताएँ गुँथी रहती है। व्यक्तित्व की यह विशेषताएँ ही उसके साहित्य में प्रतिफलित होती हैं। अत: साहित्य और संस्कृति का अनिवार्य और अटूट सम्बन्ध है। साहित्य का एक बड़ा भाग संस्कृति और समयबद्ध होता है। उसमें चिरंतन को खोजने और पाने की तड़प होती है, देश और काल की सीमाओं को लाँघकर वह कतिपय शाश्वत सत्यों तक पहुँचने का प्रयत्न करता है। वह यह भी दावा करता है कि उसकी वाणी युग की वाणी न होकर युग-युग की वाणी है। किसी भी जाति के साहित्य के द्वारा उसकी संस्कृति को समझा जा सकता है। साहित्य और समाज के सम्बन्ध की तरह संस्कृति और साहित्य का सम्बन्ध भी बहुत अनिवार्य है।

1.5.5. समाज और संस्कृति

जिस प्रकार व्यक्ति परिवार की इकाई है, उसी तरह परिवार समाज की इकाई है। विभिन्न परिवारों का समूह मिलकर समाज कहलाता है। जैसे कोई व्यक्ति समाज के बिना नहीं रह सकता, उसी प्रकार वह समाज के सांस्कृतिक नियमों से परिपूर्ण हुए बिना संपूर्ण नहीं माना जायेगा। व्यक्ति का अधिकतर समय समाज में ही गुजरता है, वह समाज में रहकर ही समाज में घटित घटनाओं के माध्यम से नित नवीन व्यवहार

हर रोज सीखता रहता है। इस प्रक्रिया के दौरान भी वह समाज द्वारा बनाए गये सांस्कृतिक नियमों का पालन करता है। क्योंकि संस्कृति मानव की सामुदायिक सौन्दर्य उपलब्धि है। संस्कृति के तत्वों से शिक्षा का स्वरूप किसी समुदाय में बनता है जहाँ संस्कृति एक समुदाय की पीढ़ियों से परिष्कृत-विकसित जीवन शैली है, वहाँ संस्कृति उसे परिष्कृत-विकसित करने में सहायक नहीं, अपरिहार्य अंग है। इस प्रकार समाज और संस्कृति अन्य घटकों से अधिक महत्वपूर्ण भी है, इनके बिना भाषा और शिक्षा पर विचार करना भी कठिन होगा। समाज से अलग या समाज से बाहर तो संस्कृति की कल्पना करना भी असम्भव है, यह कहा जा सकता है संस्कृति का अध्ययन सामाजिक पीठिका के बिना सम्भव नहीं है। *भारतीय समाज और संस्कृति* पुस्तक में शम्भूरतन त्रिपाठी ने लिखा है:

> संगठन और सहयोग का नाम ही समाज है। यदि समाज न होता, तो मनुष्य ने प्राकृतिक अवरोधों के समक्ष घुटने टेक दिए होते, उसका स्वयं का लोप हो गया होता और फिर संस्कृति का जन्म न हुआ होता। (2)

भारतीय इतिहास में जिस प्रकार हजारों परिभाषाएँ हैं, उसी प्रकार कई संस्कृतियाँ और समाज भी हैं। यह संस्कृतियाँ धर्म और जाति में बंटी हुई हैं, यह धर्म, जातियाँ अपनी-अपनी संस्कृति को सबसे प्राचीन और श्रेष्ठ बनाने में लगी हुई है। लेकिन भारत का सामाजिक परिवेश अनुकूल होने के कारण शांति बनी हुई है। यह एक विकसित संस्कृति और समाज की विशेषता मान सकते हैं, यहाँ हजारों भाषाएँ, धर्म और समाज एक साथ रहते हैं। यह कार्य पहले भी शिक्षा के माध्यम से चलता आ रहा है और आज भी शिक्षा ही उसका माध्यम बनी हुई है। यह स्पष्ट है कि समाज ही अपनी आने वाली पीढ़ियों को संस्कृति की विरासत सौंपता है। संस्कृति का अस्तित्व समाज में होता है। समाज के बिना तो संस्कृति की कल्पना भी कभी नहीं की जा

सकती। डॉ. देवराज अपनी पुस्तक *भारतीय संस्कृति* में कहते हैं कि "सांस्कृतिक विशेषताएँ व्यक्तित्व में आश्रित होकर रहती हैं और सांस्कृतिक उत्कर्ष के प्रतिमान एक विशेष ढंग से जातीय चेतना में रहते हैं और उसकी सम्पति होते हैं।" (21)

1.5.6. कला और संस्कृति

भारत देश की असली पहचान उसकी विविध संस्कृति से है। भारत अपने गानों, नृत्य, संगीत, रंगमंच, लोक परम्पराओं, प्रदर्शन कला, संस्कार, अनुष्ठान, चित्रकला और लेखन के लिए पूरे विश्व में अमूर्त सांस्कृतिक विरासत के रूप में जाना जाता है; जो दुनिया के सबसे बड़े संग्रहों में से एक है। हम सब यह बात अच्छी तरह जानते हैं कि भारतीय कला और संस्कृति पूरी दुनिया में लोकप्रिय है। कला संस्कृति की वाहिका है। भारतीय संस्कृति के विविध आयामों में व्याप्त मानवीय और रसात्मक तत्व उसके कला रूपों में प्रकट हुए हैं। कला का प्राण है रसात्मकता। रस आनन्द अथवा आस्वाद हमें स्थूल से चेतन सत्ता तक एकरूप कर देता है। मानवीय संबंधों और स्थितियों की विविध भावलीलाओं और उसके माध्यम से चेतना को कला प्रस्तुत करती है। वही आस्वाद एवं आनन्द है, जिसे कला उद्घाटित करती है। भारतीय कला जहाँ एक ओर वैज्ञानिक और तकनीकी आधार रखती है, वहीं दूसरी ओर भाव एवं रस को सदैव प्राणतत्व बनाकर रखती है। *निबंध नवगीत* पुस्तक में द्वारिकाप्रसाद सक्सेना लिखते हैं:

> लोक व्यवहार में जब हम किसी के कौशल की बात करते हैं, तो कला शब्द अपने आप उसके साथ जुड़ जाता है- वह कौशल चाहे वाणी का हो या व्यवहार का और कर्म का हो या साहित्य निर्माण का। इस तरह 'कला' शब्द कौशल का प्रतीक बनकर विविध क्षेत्रों में व्यवहृत होता है। (42)

अत : कला का निर्माण, कला की प्रक्रिया, कला के रूप, कला के सौन्दर्य बोध और कला का आनन्द संस्कृति का ही अभिव्यक्त रूप है। रामजी उपाध्याय अपनी पुस्तक *भारतीय धर्म और संस्कृति* में कहते हैं कि- "कलाएँ संस्कृति बोध का एक प्रमुख साधन है। कलाएँ हमारे भावों और विचारों की द्योतिका होने के कारण संस्कृति की परिचायिका होती हैं।" (11) कला हमारे जीवन से सम्बद्ध है उसी तरह कलाकार एक सामाजिक प्राणी है। भारत में अगर बात की जाए तो रंगमंच, नृत्य, संगीत, लोक परम्पराएँ निरंतर चली आ रही है। यह परम्पराएँ पूरी तरह से कला और संस्कृति से जुडी हुई हैं। भारतवासियों में प्राचीन वस्तुओं के प्रति बड़ा अनुराग रहा है। यही कारण है कि कोई भी सांस्कृतिक धारा कभी भी सर्वथा न मिटी, भले वह रूप बदलकर अन्य सांस्कृतिक धाराओं में मिल गई हो।

1.5.7. परिवार और संस्कृति

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। अपनी दैनिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए वह समाज पर निर्भर रहता है। मानव और समाज का अटूट और घनिष्ठ सम्बन्ध है। परिवार सामाजिक संगठन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण इकाई है। परिवार से ही समाज का निर्माण होता है, तथा यही नागरिक जीवन की प्रथम पाठशाला है। कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं है, जो परिवार से सम्बद्ध न हो। हमारी आवश्यकतायें परिवार के माध्यम से ही पूरी होती हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि परिवार के अभाव में समाज का अस्तित्व ही संभव नहीं है। परिवार मनुष्य के जीवन की रक्षा करता है तथा जैविकीय आवश्कताओं को पूरा करता है। समाज की निरंतरता परिवार के माध्यम से ही बनी रहती है। वास्तव में संस्कृति एक साँचा है, सामाजिक जीवन के सभी पक्ष उस साँचे में ही ढले रहते हैं। व्यक्ति, परिवार एवं समाज आदि उस

सांस्कृतिक ढाँचे के ही अंग है। परिवार और समाज का गहरा सम्बन्ध होता है, इसी तरह परिवार से ही मनुष्य जीवन के आवश्यक सांस्कृतिक गुण सीखता है। परिवार में रहते हुए हमारा जीवन शुद्ध या पवित्र होता है। *भारतीय समाज और संस्कृति* पुस्तक में श्री शम्भूरत्न त्रिपाठी के अनुसार:

> भारतीय संस्कृति के सोलह संस्कार गर्भाधान, पुंसवन, सीमान्तोन्ययन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, चूड़ाकर्म, कर्ण-बेधन आदि। वस्तुत: परिवार के ही संस्कार हैं, जिनका उद्देश्य केवल औपचारिक दैहिक संस्कार ही न होकर संस्कार्य व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का परिष्कार, शुद्धि और पूर्णता भी है। (230)

परिवार में रहते हुए ही व्यक्ति एक-दूसरे के सुख-दुःख का भागीदार बनना सीखता है, क्योंकि परिवार के सभी सदस्य एक-दूसरे के सुख-दुःख में परस्पर सहभागी होते हैं। परिवार समाज की सबसे छोटी ईकाई होती है, माता-पिता और उनके बच्चों को मिलाकर एक परिवार बनता है। एक परिवार का जीवन में बहुत महत्व होता है। एक बच्चा अपने परिवार की छत्र-छाया में रहकर ही बड़ा होता है, वहीं वह प्यार के महत्व को समझकर रिश्तों में बंधता है। परिवार के रिश्ते बच्चे को ख़ुशी प्रदान करते हैं और जिम्मेदारी का भी एहसास दिलाते हैं। परिवार ही है जो बच्चे को सामाजिक बनाता है। परिवार हर किसी के जीवन में बहुत महत्वपूर्ण होता है। परिवार के बिना यह जीवन एक अधूरा सा लगता है। माता-पिता, भाई-बहन, पति-पत्नी, बच्चे सभी एक परिवार का हिस्सा होते हैं। हर किसी परिवार के सदस्य सुख-दुःख में एक दूसरे का साथ देते हैं। हर किसी मुश्किल को एक साथ मिलकर झेलते हैं और सुलझाते भी हैं। सभी समाजों में बच्चों का जन्म और पालन पोषण परिवार में होता है। बच्चों का संस्कार करने और समाज के आचार व्यवहार में उन्हें

दीक्षित करने का काम मुख्य रूप से परिवार का होता है। इसके द्वारा समाज की सांस्कृतिक विरासत एक से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होती है। व्यक्ति की सामाजिक मर्यादा बहुत कुछ परिवार से ही निर्धारित होती है। नर-नारी के यौन संबंध मुख्यत: परिवार के दायरे में निबद्ध होते हैं। औद्योगिक सभ्यता से उत्पन्न जनसंकुल समाजों और नगरों को यदि छोड़ दिया जाये तो व्यक्ति का परिचय मुख्यत: परिवार और कुल के आधार पर होता है। संसार के विभिन्न प्रदेशों और विभिन्न कालों में यदपि रचना, आकार, संबंध और कार्य की दृष्टि से परिवार के अनेक भेद हैं, किंतु उसके यह उपर्युक्त कार्य सार्वदेशिक और सार्वकालिक हैं।

एक ही देश की अथवा समाज की संस्कृति में पारिवारिक संस्कार प्राय: विभिन्नता उत्पन्न कर देते हैं। एक ही परिवार के दो भाई भी अलग-अलग हो सकते हैं। वर्तमान समय में तो यह आम देखने को मिल रहा है। एक भाई संस्कार सम्पन्न एवं शिष्ट होता है, तो दूसरा नितान्त असभ्य और कुसंस्कारी। वास्तव में, लोगों की आवश्यकताओं, उनके भौगोलिक परिवेश,, सामाजिक एवं प्राकृतिक परिवेश के कारण वहां के परिवारिक ढाँचे में अन्तर आ जाता है और यही अन्तर सांस्कृतिक ढाँचे को भी प्रभावित करता है। *संस्कृति का दार्शनिक विवेचन* पुस्तक में डॉ. देवराज लिखते हैं- "कुटुम्ब मुख्य रूप से व्यक्ति को शिष्टाचार और रहन-सहन का तरीका सिखलाता है। वे सभी चीज़ें संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग हैं।" (154) डॉ. गुलाबराय अपनी पुस्तक *भारतीय संस्कृति* में लिखते हैं- "व्यक्ति परिवार से ही ये गुण लेकर समूची मानवता के परिष्कार में संलग्न हो जाता है। परिवार व्यक्तिपरकता और समाजपरकता के बीच की स्थिति है। इसमें आत्मा के विस्तार की भी झलक है।" (20)

1.5.8. जीवन मूल्य और संस्कृति

आज सभी ओर समाज में कलुषित प्रवृतियों के कारण मानव में ईर्ष्या, द्वेष, मोह, मद की प्रवृतियाँ विकराल रूप धारण करती जा रही हैं। दूसरी ओर विज्ञान के बढ़ते प्रभाव के कारण, मानव आज उन्मनिया विकास के शिखर पर विराजमान होता जा रहा है। आज के उपभोक्तावाद या यांत्रिकीकरण के प्रभाव से मानव इतनी बुरी तरह जकड़ा जा रहा है कि वह संवेदनशून्य होता जा रहा है। परिणामत: हमारे समाज में अनेक भयानक और विकराल परिस्थितियां जन्म लेने लगी। जैसे कन्या भ्रूणहत्या, आतंकवाद, दंगे-फसाद, किसानों की आत्महत्या, छात्रों की आत्महत्या, नारी अत्याचार, बलात्कार, पारिवारिक संबंधों में बदलाव, दहेज, हमारी खण्डित होती एकता और दलीयप्रतिबद्धता आदि बहुत सी समस्याएँ विकराल रूप धारण करती जा रही हैं। इस तरह आज भारतीय समाज की नींव खोखली होती हुई नजर आती है। ऐसे भयानक परिवेश में व्यक्ति को संवेदनशील बनाने के लिए तथ्य स्वस्थ और सुंदर समाज का निर्माण करने के लिए भारतीय जीवनमूल्य या मानवमूल्यों की नितांत आवश्यकता है। आज के आधुनिक युग में वैज्ञानिक प्रगति ने अनेक क्षेत्रों में प्रगति की है। संगणक उसी की ही उपज है, संगणक की सुविधा के कारण कठिन से कठिन काम कुछ घंटों में ही होते जा रहे हैं, जिसके कारण उन्नति के अनेक द्वार खुलते जा रहे हैं। रामखेलावन पाण्डेय की पुस्तक *भारतीय संस्कृति और सांस्कृतिक चेतना* के अनुसार-

> आज की युवापीढ़ी अधीन होती जा रही है, जिसके चलते युवापीढ़ी का शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य बिगड़ता जा रहा है, मानवमूल्यों का ह्रास हो रहा है। हमारी युवापीढ़ी को सुदृढ़ और संस्कारक्षम बनाने के लिए आज मानवीय मूल्यों की स्थापना की नितांत आवश्यकता है।(98)

तभी भारत को महासत्ता बनाने का सपना साकार हो सकता है। आज मानव को यांत्रिक नहीं, हाड़-मांस का संवेदनशील मानव बनाने के लिए, आज की नई पीढ़ी में भारतीय संस्कृति के प्रति आस्था निर्माण करने हेतु मानवतावादी दृष्टिकोण की बहुत ही आवश्यकता है। मानव की आन्तरिक कलुषित प्रवृतियों को समाप्त या नष्ट करके सदप्रवृतियों को जाग्रत करने के लिए और मानव को मानव के रूप में स्थापित रूप देखकर, बसुधैव की भावना निर्माण करने वाली दृष्टि मानवमूल्यों से ही विकसित होती है। वर्तमान के हिन्दी ललित निबंधों में यही दृष्टि परिलक्षित होती है।

हिन्दी ललित निबंधों में मानवीय मूल्यों की महता महनीय है। मानव अपने मानवीय मूल्यों के कारण ही विधाता की सर्वश्रेष्ठ सृष्टि है। ईश्वर ने मनुष्य को बुद्धि तत्व प्रदान किया है, जिसके कारण वह अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ है, लेकिन वर्तमान युग में व्यक्ति समष्टि- भाव को भूलकर व्यष्टि में सीमित हो गया है। इन समस्याओं के समाधान के लिए समाज में सामाजिक मूल्यों की जरूरत महसूस हो रही है, जिसमें दया, माया, प्रेम, सहानुभूति, मातृत्वभाव, परोपकार की वृति आदि मानवीय मूल्य मुख्य हैं। इन मूल्यों के पोषण से मनुष्य को संवेदनशील बनाया जा सकता है, जो स्वस्थ और सुंदर समाज के निर्माण में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। प्रत्येक मानव का लक्ष्य केवल आनंद की प्राप्ति रहा है। आवश्यकता यह है कि वह आनंद चिरस्थायी हो, जो व्यक्ति के साथ-साथ समाज में स्वस्थ वातावरण को निर्मित कर सके। प्रत्येक मानव में प्रेम, त्याग, समर्पण, एकनिष्ठता, भ्रातृत्व-भाव, सर्वधर्म समभाव, आदि बहुत से सामाजिक जीवन मूल्य जीवन में आवश्यक हैं।

भारतीय समाज की बुनावट और बनावट जीवनमूल्यों या मानवमूल्यों की नींव पर हुई है। समाज के विभिन्न वर्गों के लिए और जातियों के अंतर्संबंध जीवनमूल्यों से जुड़े हुए हैं। कृषक, मजदूर, कर्मकार व्यापारी, पुरोहित आदि समाज के सभी वर्गों के

लोग कर्म के धागे से जुड़े हुए हैं। इस संसार का प्रत्येक व्यक्ति कर्म और व्यवहार केवल अपने लिए ही नहीं करता, इस समाज के अन्य लोगों के लिए भी करता है। दान-प्रतिदान, सहयोग-सहकार की सारी क्रियाएँ संस्कृति और संस्कारों के साथ समाज के सभी वर्णों और जातियों में हजारों वर्षों से प्रचलित हैं, जो मानवमूल्यों के स्नेहिल धागे में बंधे चली आ रही है। मानवमूल्यों का यही रस समाज के विकास, शांति, स्थायित्व, प्रेम और समरसता का आधार है।

मौलिक उन्नति और उपलब्धि के इस युग में मनुष्य की भौतिक सुखों के प्रति चेतना प्रबल हुई है। अधिकाधिक सुख की इच्छा, धन व पद की लिप्सा, दूसरों से आगे जाने की स्पर्धा, दूसरों से अधिक धनवान बनने की प्रबल इच्छा, सम्पन्न दिखाने की प्रबल इच्छा ने धीरे-धीरे मनुष्य को मनुष्य से दूर कर दिया। एक समय था, जब मानव उत्सव प्रेमी था और अब उत्सवों में डूबकर भी वह आनंद नहीं ले पा रहा है। परिणामस्वरूप मानवमूल्यों का क्षरण हुआ है। आज चारों ओर कटुता, वैमनस्य, शत्रुता, हिंसा, बदले की भावना, दूसरों के प्रति बुरे विचार आने लगे हैं। जिसके चलते आज संपूर्णविश्व में मानव त्रस्त है। यह सब आधुनिक प्रगति के कारण हुआ है। मानव ने बाहर के सुख-साधनों को पाने के लिए अपनी अंतरात्मा में होने वाले मानवमूल्यों रूपी रत्नों को खो दिया है। यही महत्वपूर्ण कारण है कि आज साहित्य में खोए हुए मानवमूल्यों की पुनर्प्रतिष्ठा की बात की जा रही है।

निष्कर्ष

अनेक विद्वानों की परिभाषाओं को देखते हुए सार रूप में यह कहा जा सकता है कि निबंध वह छोटा सा गद्य-विधान है, जिसमें निबंधकार हमारे जीवन के बारे में या किसी वस्तु के बारे में अपने भावों या विचारों को व्यक्त करता है। वर्तमान समय के निबंधों में भी आज की समस्याओं को प्रस्तुत किया गया है, जिनका अध्ययन करने से

हमें वर्तमान समस्याओं का पता चलता है, जिसको आधार बनाकर शोध कार्य किया गया है। वर्तमान समस्याओं पर शोध कार्य सम्पन्न करके हमारे आने वाले समय में इन्हीं समस्याओं से छुटकारा पाया जा सकता है और एक अच्छे समाज का निर्माण किया जा सकता है, जो हमारे सामाजिक विकास में बहुत बड़ा योगदान होगा।

संस्कृति किसी एक समाज में पाई जाने वाली उच्चतम मूल्यों की वह चेतना है, जो सामाजिक प्रथाओं, व्यक्तियों की चितवृतियो, भावनाओं, मनोवृतियों, आचरण के साथ-साथ उसके द्वारा भौतिक पदार्थों को विशिष्ट स्वरूप दिए जाने में अभिव्यक्त होती है। संस्कृति जीवन जीने का एक विशिष्ट दृष्टिकोण है। अनुभव के मूल्याँकन और व्याख्या का एक विशिष्ट और मूलभूत प्रकार है। धर्म, नीति, भक्ति और दर्शन, समाज, राजनीति यह संस्कृति के प्रमुख तत्व हैं, जो हमारी संस्कृति को प्रभावित करते हैं। संस्कृति के इन्हीं आयामों को आधार बनाकर आगे के अध्यायों में शोध कार्य किया गया है। सही दिशा में शोध करते हुए, इस अध्याय में ऐतिहासिक शोध प्रविधि, आलोचनात्मक शोध प्रविधि, का प्रयोग किया गया है, जिनको आधार बनाकर नवीन निष्कर्षों को प्राप्त करने का प्रयास रहा है।

द्वितीय अध्याय

हिन्दी निबंध परम्परा और सांस्कृतिक चेतना

2.1. भारतेन्दु युग के प्रमुख निबंधों में सांस्कृतिक चेतना

2.1.1. धर्म और नीति पक्ष

2.1.2. सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक पक्ष

2.2. द्विवेदी युग के प्रमुख निबंधों में सांस्कृतिक चेतना

2.2.1. धर्म और नीति पक्ष

2.2.2. सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक पक्ष

2.3. शुक्ल युग के प्रमुख निबंधों में सांस्कृतिक चेतना

2.3.1. धर्म और नीति पक्ष

2.3.2. सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक पक्ष

2.4. शुक्लोतर युग के प्रमुख निबंधों में सांस्कृतिक चेतना

2.4.1. धर्म और नीति पक्ष

2.4.2. सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक पक्ष

निष्कर्ष

निबंध को गद्य की कसौटी माना जाता है, इसमें कलात्मकता और भावात्मकता दोनों ही अपेक्षित हैं। निबंध की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि एक ओर वह जहाँ यथार्थ भूत जीवन की व्याख्या करता है, वहाँ दूसरी ओर जीवन के निर्माण एवं उत्थान में भी सहायक होता है। साहित्य और भाषा की प्रौढ़ता पर ही निबंध कला का उद्भव और विकास संभव है। हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल गद्य और निबंध के विकास का काल है। हिन्दी निबंध साहित्य का विकास समाचार-पत्रों के साथ जुड़ा हुआ है। निबंधों से ही भाषा की शिथिलता और अयोग्यता दूर होती है, निबंधों में विषयों की अनेकरूपता तथा भाषा लाघव के कारण अर्थगत सूक्ष्मता के साथ-साथ शब्द भण्डार की वृद्धि होती है। जिस भाषा में निबंध साहित्य की जितनी विविधता और प्रचुरता होगी, उसकी क्षमता उतनी ही अधिक मानी जाएगी। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी निबंध का सूत्रपात भारतेन्दु युग से स्वीकार किया है। डॉ. रामचन्द्र तिवारी भी आचार्य शुक्ल की तरह निबंध का आरंभ भारतेन्दु युग से ही मानते हैं। डॉ. जगन्नाथ प्रसाद शर्मा भी भारतेन्दु बाबू को निबंध साहित्य का जनक मानते हैं। *हिन्दी निबंधकार* पुस्तक में डॉ. जयनाथ नलिन ने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को युग का श्रेष्ठ निबंधकार माना है। डॉ. नलिन का अभिमत है:

> भारतेन्दु के नाटककार को तो समीक्षकों और इतिहासकारों ने पहचाना, निबंधकार को वह भूले ही रहे हैं, पर निबंधकार को उनका नाटककार दबा नहीं सका। भारतेन्दु अपने युग के श्रेष्ठ निबंधकार हैं। नाटकों में कला की व्यापक चित्रशाला के पीछे भारतेन्दु छिप तक जाते हैं, निबंध में नहीं छिप सकते। निबंध में भी वह चमकीला और प्राणवान व्यक्तित्व लेकर आए। इसीलिए भारतेन्दु का निज जितना स्पष्ट और साकार निबंधों में मिलेगा, अन्य रचनाओं

में नहीं। निबंध ही भारतेन्दु के यथार्थ विचारों और विश्वासों का चित्र उपस्थित करते हैं। (77)

इन सभी मतों के परिशीलन के उपरान्त यही कहा जा सकता है, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को ही हिन्दी निबंध का प्रवर्तक, जनक या उद्भावक मानने के पक्ष में अधिकतर विचारकों ने अपनी राय व्यक्त की है। पं. बालकृष्ण भट्ट, पं. प्रताप नारायण मिश्र, पं. राधाचरण गोस्वामी, बद्री नारायण चौधरी 'प्रेमघन' इत्यादि निबंधकारों ने भारतेन्दु से ही निबंध रचना की प्रेरणा ली। अत: भारतेन्दु ही हिन्दी निबंध साहित्य के जनक हैं, उन्होंने आजीवन पूर्णनिष्ठा के साथ निबंध साहित्य की सेवा की है। आधुनिक हिन्दी निबंधों की सभी विशेषताएँ, भारतेन्दु के निबंधों में दृष्टिगोचर होती हैं। भारतेन्दु युग से प्रारम्भ हिन्दी निबंध परम्परा को निम्नलिखित सोपानों में विभक्त किया जाता है- 1. भारतेन्दु युग 2. द्विवेदी युग 3. शुक्ल युग 4. शुक्लोतर युग।

2.1. भारतेन्दु युग के प्रमुख निबंधों में सांस्कृतिक चेतना

भारतेन्दु युग को हिन्दी निबंध की विकास यात्रा का प्रारम्भिक चरण माना जाता है। भारतेन्दु के निबंध ही हिन्दी के प्राथमिक निबंध हैं, जिनमें निबंध कला की मूलभूत विशेषताएँ उपलब्ध होती हैं। भारतेन्दु ने हिन्दी गद्य की अनेक विधाओं का न केवल सूत्रपात किया, अपितु उन्हें पल्लवित करने का श्रेय भी उन्हें ही प्राप्त है। भारतेन्दु के निबंध विषय एवं शैली की दृष्टि से विविधतापूर्ण हैं। उन्होंने इतिहास, समाज, धर्म, राजनीति, यात्रा, प्रकृति वर्णन एवं व्यंग्य-विनोद जैसे विषयों पर निबंधों की रचना की। अपने सामाजिक निबंधों में उन्होंने सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार किए हैं, राजनीतिक निबंधों में अंग्रेजी राज्य पर तीखे व्यंग्य किए। भारतेन्दु के निबंधों में विषयानुकूल भाषा-शैली का प्रयोग हुआ है। उनके आलोचनात्मक निबंधों की भाषा प्रौढ़ होते हुए भी दुरूह एवं बोझिल नहीं हो पाई है। भारतेन्दु ने निबंध की

आत्मा को पहचान लिया था। वास्तविकता यह है कि भारतेन्दु के निबंध अधिकतर सामयिक समस्याओं पर आधारित थे, जिनमें व्यंग्य विनोद की प्रधानता रहती है। डॉ. अशोक तिवारी की पुस्तक *प्रतियोगिता साहित्य* के अनुसार- "जितनी सफलता भारतेन्दु युग के लेखकों को निबंध रचना में मिली उतनी सफलता उनको नाटक और कविता में नहीं मिली। भारतेन्दु युग की गद्य शैली के सबसे चमत्कारपूर्ण निदर्शन निबंधों में ही मिलते हैं।" (317) सच यही है कि भारतेन्दु के निबंधों द्वारा हिन्दी भाषा विकसित हुई तथा हिन्दी को प्रतिष्ठा भी प्राप्त हुई। उनके निबंध धर्म, समाज और राजनीति संबंधी है।

पं. बालकृष्ण भट्ट 'हिन्दी प्रदीप' के यशस्वी सम्पादक थे और वर्णनात्मक, भावात्मक, विचारोतेजक निबंधों के लेखक के रूप में जाने जाते हैं। हास्य को वह बहुत महत्व देते हैं। उनके निबंध भावात्मक भी हैं और विचारात्मक भी। गम्भीर बातों को वह सरल और सुबोध ढंग से प्रस्तुत कर पाने की कला में वह निष्णात थे। विषय की व्यापकता एवं मौलिकता के साथ-साथ शैली की रोचकता, उनके निबंधों की प्रमुख विशेषता मानी जा सकती है।

'ब्राह्मण' के सम्पादक पण्डित प्रतापनारायण मिश्र, इस युग के प्रतिनिधि निबंधकार हैं। वह मनोरंजक एवं हास्य प्रधान निबंधों को लिखने के अति कुशल थे। भौं, पेट, दांत, नाक आदि पर उन्होंने विनोदपूर्ण शैली में निबंध लिखे हैं। कैसा भी विषय क्यों न हो, उसमें वह विनोद की समग्री खोज ही लेते हैं। मिश्र की भाषा मुहावरेदार है, जिसमें कहीं-कहीं व्यर्थ की चंचलता भी देखी जा सकती है।

बद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन 'आनन्द कादम्बिनी' नामक मासिक पत्रिका के सम्पादक थे, उनके निबंधों की भाषा में आलंकारिकता, कृत्रिमता एवं चमत्कारप्रियता सर्वत्र दिखाई देती है। विचार प्रधान निबंधों का प्रारम्भ प्रेमघन से ही

माना जाता है। उन्होंने निबंध को परिपक्कव और भाषा को प्रौढ़ बनाने में पूर्ण सहयोग प्रदान किया। भारतेन्दु युग के निबंधकारों में विषय की व्यापकता एवं विविधता है। वह निबंध लेखक होने के साथ-साथ पत्रकार भी हैं, उनमें वैयक्तिकता के साथ-साथ सामाजिकता का भी समावेश है। इनकी शैली में हास्य-व्यंग्य एवं मनोरंजन की प्रधानता है।

2.1.1. धर्म और नीति पक्ष

भारतेन्दु युग के निबंध विषय एवं शैली की दृष्टि से विविधतापूर्ण हैं। इस युग में समाज, इतिहास, धर्म, राजनीति, यात्रा, कला, भक्ति और हास्य पर निबंध लिखे गये हैं। किसी निबंधकार ने सामाजिक निबंधों में सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार किया तो किसी ने राजनीतिक निबंधों पर व्यंग्य किया है। भारतेन्दु इस युग के प्रमुख निबंधकार हैं। भारतेन्दु ने हिन्दी प्रचार के साथ-साथ हिन्दी गद्य की विविध शैलियों से विभूषित कर, उसके विकास का मार्ग प्रशस्त कर दिया। धार्मिक, सामाजिक, भावात्मक, व्यंग्यात्मक आदि विषयों को व्यक्त करने के लिए, उन्होंने तदनुकूल भाषा-शैली को जन्म दिया। उस समय के निबंधकारों ने अपने समय की स्थिति को अपने निबंधों में व्यक्त किया है।

उस समय के निबंधों पर यदि दृष्टिपात करें तो भावात्मक या रागात्मक सक्रिय सन्दर्भ दिखाई पड़ेंगे। ऐसा प्रतीत होता है कि भारतियों के मन में भावात्मक एक्य के लिए सांस्कृतिक आधार मूलभूत तत्व के रूप में वर्तमान रहा है। ईश्वर, धर्म, दर्शन, धार्मिक केन्द्र, सांस्कृतिक विश्वास आदि अनेक मूलभूत तत्व भारतियों में रागात्मक एक्य के लिए निरन्तर वातावरण बनाते चलते हैं। इस समय धर्म को राजनीति से अलग करने की नीति चली हुई थी। धर्म को राजनीति से अलग करने का आशय है,

हमारे सामाजिक जीवन के सबसे महत्वपूर्ण अंग को धर्म से विहीन कर देना। यदि राजनीति से किसी चीज को निकालना है, तो वह चीज अधर्म है, न कि धर्म। धर्म तो व्यक्ति, राज्य और समाज के दैनिक कार्य-कलापों में दिशा निर्देश करने वाला है। अपने नैतिक हस्तक्षेप द्वारा धर्म समाज में भृष्टाचार, कदाचार और अपराध को रोकता है। भारतेन्दु युग के निबंधकारों ने अपने समय के भृष्टाचार को बताया है, तो कहीं जातिवाद को। जाति विभाजन हिन्दू समाज की अपनी विशेषता है, जबकि देश में सम्प्रदायों की सृष्टि अन्य धर्मावलम्बियों के कारण हुई। जाति और सम्प्रदाय गत विभिन्ताओं से किसी देश को क्षति नहीं पहुँचती। अनेकता में एकता भारत की विशेषता बताई जाती है। जब तक अपनी विभिन्न धार्मिक परम्पराओं और रीति-रिवाजों का पालन करते हुए अलग-अलग धर्मों और सम्प्रदायों के लोग राष्ट्रीय हित की बातों में एकमत रहते हैं और राष्ट्र के प्रति उनमें समर्पण की भावना रहती है, तब तक अनेक बातों में भिन्नता होते हुए भी उनके बीच परस्पर विरोध के अवसर नहीं आते। प्राचीन समय की संस्कृति और आज की संस्कृति में बदलाव आ चुका है। भारत में मेलों और त्यौहारों की प्राचीन परम्परा है। विदेशी पर्यटक इन्हें देखने को लालायित रहते हैं। अलग-अलग शहरों में अलग-अलग मेले और त्यौहार मनाये जाते हैं। सब अपने अपने धर्म को लेकर त्यौहार मनाते हैं। इन्हीं बातों को लेकर ही भारत को अपनी संस्कृति पर गर्व है। लेकिन हर समय में परिवर्तन आते रहते हैं, उन्हीं को लेखक अपनी लेखनी में व्यक्त करता है। इस समय भी राज करो की नीति और अपने-अपने धर्म को लेकर लोगों में दरार पड़ रही थी। सत्यप्रकाश मिश्र की पुस्तक *भारतेन्दु के श्रेष्ठ निबन्ध* में संकलित निबंध ‘भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है’ के अनुसार:

भाई हिन्दुओ ! तुम भी मतमतांतर का आग्रह छोड़ो। आपस में प्रेम बढ़ाओ, इस महामंत्र का जप करो, जो हिंदुस्तान में रहे, चाहे किसी रंग किसी जाति का क्यों न हो, वह हिन्दू! हिन्दू की सहायता करो। बंगाली, पंजाबी, मदरासी, वैदिक, जैन, मुसलमान सब एक का हाथ पकड़ो। (5)

भारतेन्दु युगीन निबंधकारों ने अपनी लेखनी कला धार्मिक निबंधों पर चलाई। उन्होंने अन्धविश्वास से दूर रहने का आदेश देकर धार्मिक निबंधों में मानव जीवन के मूल्यों द्वारा देश प्रेम को बनाये रखने का संकेत दिया है। भारतेन्दु के अतिरिक्त बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र और प्रेमघन ने ऐसे निबंधों की रचना कर मानव जीवन को प्रशस्त किया है। इस तरह धर्म और समाज को प्रदर्शित करने वाले अनेक निबंध, इस युग में लिखे गये, जिनका निबंध साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। भारतेन्दु युग के निबंधकार इस बात से परिचित थे कि धर्म प्राण देश में धर्म को आधार बनाकर ही मानवीय जीवन में जिजीविषा भरी जा सकती है।

2.1.2. सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक पक्ष

भारतेन्दु युग के निबंधकारों ने साहित्य सम्बन्धी दृष्टिकोण के विवेचन से पहले, हमें सामाजिक और राजनीतिक स्थितियों से परिचित करवाया है। किसी भी युग का साहित्य उस समय की परिस्थितियों से अनुप्राणित होता है और कोई भी साहित्यकार साहित्य के माध्यम से ही अपनी बात को प्रस्तुत करता है। भारतेन्दु ने जब साहित्य में पदार्पण किया, उस समय हमारे भारत के लोगों की स्थिति ज्यादा अच्छी नहीं थी। अंग्रेजों का राज चल रहा था, उन्होंने भारत पर कब्जा कर लिया था। भारतीय अपनी अस्मिता को भूल चुके थे, अंग्रेजों ने उनकी क्षमता को अक्षम बना डाला था। सैंकडों वर्षों तक भारतीय उनके अत्यचार सहन करते रहे, अब वह इन अत्यचार से बहुत तंग आ चुके थे। उसके बाद 1857 ई. की क्रांति की लहर में पूरे भारतवर्ष में दौड़ पड़ी। वह

पुन: उसी स्थिति में गये जिसमें पहले थे। अंग्रेजों ने भारतियों को पद, प्रतिष्ठा और नौकरी का लालच देकर अपनी तरफ आकृष्ट कर लिया था। उन्होंने भारतियों की मूल भावना को नष्ट करने का संकल्प किया हुआ था, इसलिए उन्होंने हमारी संस्कृति, हमारी परम्पराओं और हमारी भावना को विनष्ट करना चाहा।

भारतेन्दु ने भारत की यह दुर्दशा देखी और उनका हृदय हाहाकार कर उठा। अपने देश की ऐसी स्थिति देखकर भारतेन्दु ने प्रतिज्ञा की कि भारतियों को इन स्थितियों से बचाना होगा और उनके हृदय में राष्ट्र समान की भावना को जागृत करना होगा। अगर ऐसा नहीं हुआ, तो वह अंग्रेजों के गुलाम होकर रह जायेंगे और भारतियों को वह लालच देकर उनकी भावना को नष्ट कर देंगे। इन स्थितियों को देखकर ही भारतेन्दु ने अपनी रचनाओं में यह सब लिखा है। उनकी लेखनी का प्रमुख उद्देश्य यही था कि भारतीय जागरूक हों उनमें एक नई भावना उत्पन्न हो। उन्होंने अंग्रेजों की नीति की प्रवाह ना करते हुए अपनी भावनाओं को अभिव्यक्ति दी और भारतियों को जागरूक करके उनमें एक नई भावना उत्पन्न की कि हम अपनी संस्कृति को बनाये रखें, जो अंग्रेजों ने हमारी संस्कृति और हमारी अस्मिता को बहुत घात-परिघात किया। भारतेन्दु की रचनाओं में हमें सामाजिक कुरीतियों का प्रहार देखने को मिलता है। डॉ. अशोक तिवारी की पुस्तक *प्रतियोगिता साहित्य* में संकलित भारतेन्दु के निबंधों की एक उदाहरण है – "गाड़ी भी ऐसी टूटी फूटी जैसे हिन्दुओं की किस्मत और हिम्मत। अब तो तपस्या करके गोरी-गोरी कोख से जन्म लें तब ही संसार में सुख मिले।" (316)

भारतेन्दु ने 'कविवचन सुधा' एक पत्रिका निकाली थी, जिसमें वह धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक और क्रांतिकारी लेख निकाला करते थे। कुछ समय बाद यह पत्रिका बन्द हो गई। बाद में उन्होंने 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' नामक पत्रिका का सम्पादन

किया, जिसमें वह अपने निबंध और अपनी रचनाओं को अभिव्यक्ति देने लगे। भारतेन्दु के इस उद्देश्य में उनके अन्य सहजोगी भी पूरी लगन के साथ लगे रहे। बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र और चौधरी बदरी नारायण प्रेमघन ने भी राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रेत अनेक निबंध लिखे, जिससे एक नई भावना उत्पन्न हुई। विविध विषयों पर निबंध इन निबंधकारों ने लिखे हैं। विभिन्न उत्सवों और त्यौहारों पर इनके द्वारा निबंध लिखे जाने लगे। भारतेन्दु प्रतिभा के धनी हैं। उनके निबंध जीवन के प्रत्येक क्षेत्र जैसे धर्म और राजनीति पर आलोचनात्मक और व्यंग्यपूर्ण निबंध मिलते हैं। उनके ऐतिहासिक निबंधों में प्राचीन वंश-परम्पराओं और राजाओं का वर्णन किया गया है। इन निबंधों में कश्मीर कुसुम, बादशाह दर्पण, कालचक्र और उदयपुरोदय प्रमुख हैं। इस तरह के निबंधों में लेखक भारतियों में देश प्रेम और एकता की भावना उत्पन्न करना चाहता है। भारतेन्दु से प्रेरणा लेकर के प्रताप नारायण मिश्र और प्रेमघन ने भी देश प्रेम और राष्ट्र भावनाओं पर निबंध लिखे। समाज में विभिन्न प्रकार की विसंगतियों को देख कर बालकृष्ण भट्ट ने सामाजिक विसंगतियों पर तीखा प्रहार किया। इस उद्देश्य को लेकर ही उन्होंने 'हिन्दी प्रदीप' पत्रिका का सम्पादन किया, इस पत्रिका का प्रमुख लक्ष्य था, हिन्दी भाषियों में सांस्कृतिक चेतना को जागृत करना। उन्होंने सामयिक विषयों, सामाजिक विषयों, काल्पनिक विषयों, भावात्मक विषयों और गम्भीर विषयों पर निबंध लिखे हैं।

लेवी प्राणलेवी, एक अद्‌भुत अपूर्व स्वप्न, स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन, ज्ञातिविवेकनी सभा, पाँचवें पैगम्बर, अंग्रेज स्तोत्र और कंकड़ स्तोत्र आदि भारतेन्दु के व्यंग्यात्मक निबंध हैं। भारतेन्दु ने अपने निबंधों में भारत की दुर्दशा का चित्रण करते हुए, नारी की स्थिति का भी चित्रण किया है। अपने समय की स्थितियों को लेकर इस

युग के निबंधकारों ने अपनी लेखनी में अपने समय की दशा को व्यक्त किया है। नारी की दुरावस्था को लेकर भारतेन्दु ने *भारतेन्दु ग्रंथावली भाग-3* में कहा है:

> इस पूजा में अश्रु जल ही पाद्य है, दीर्घश्वास ही अधर्य है, आश्वासन ही आचमन है, मधुर भाषण ही मधुपर्क है, सुवणालंकार ही पुष्प है, धैर्य ही धूप है, दीनता ही दीपक है, चुप रहना ही चन्दन है और बनारसी साड़ी ही बिल्व पत्र है। (845-46)

भारतेन्दु युगीन निबंधों में भारतीय संस्कृति के टूटते मूल्यों की चिंता है और बुराइयों की चिंता है। इनके अतिरिक्त धर्म, समाज और राजनीतिक आलोचना पर भी व्यंग्य किया गया है। भारतेन्दु के बाद बालकृष्ण भट्ट का नाम आता है। बालकृष्ण भट्ट ने अपने निबंधों में व्यंग्य, पाखण्ड और रूढ़िवादिता पर भी करारी चोट की है। बालकृष्ण भट्ट के हास-परिहास और व्यंग्य विनोद शैली के निबंधों में ईश्वर क्या ठठोल है, हाकिम, मकुआ कौन-कौन है और रोटी तो किसी भाँती कम खाय मुछंदर निबंध इसी कोटि में आते हैं। इनके बाद प्रताप नारायण मिश्र के निबंध आते हैं, उन्होंने भी देश प्रेम और एकता के लिए अपने निबंध लिखे हैं। प्रताप नारायण मिश्र ने 'ब्राह्मण' पत्र का सम्पादन करके अपने निबंधों को इस पत्र के द्वारा लोगों तक पहुँचाया है। प्रताप नारायण मिश्र ने आँख, नाक, पेट, भौं और धोखा उक्तियों पर निबंध लिखे हैं। इन सब पर निबंध लिखने का उनका उद्देश्य मनोरंजन करना नहीं था बल्कि लोगों की आँखों को खोलना, उन्हें जगाना है।

भारतेन्दु युग के निबंधकारों ने राजनीति, धर्म, समाज, रूढियों, रीति-रिवाज़ आदि सभी समस्याओं पर अपने निबंधों द्वारा मानव जीवन के विभिन्न पक्षों को उद्घाटित किया है। भारतेन्दु युग के निबंधकारों के समक्ष अनेक सामाजिक और सांस्कृतिक समस्याएँ खड़ी थी। उन्होंने देखा कि आदमी को विदेशी दासता से मुक्त

कराना चाहिए, उनमें एक नई सोच डालकर नई चेतना डालनी चाहिए, तभी वह अंग्रेजों की दासता से मुक्त हो सकते हैं। *निबंध सिद्धान्त और प्रयोग* पुस्तक में डॉ. हरिहरनाथ द्विवेदी इस विषय में कहते हैं:

> आकुलता का यह चरम बिंदु भी साहित्य की सृष्टि न कर पाता, यदि स्वभाव में निर्भीक और उमंगी आत्माओं का आदान-प्रदान संभव न होता। भारतेन्दु अपने युग की इस चर्मोत्कंठा के प्रवर्तक, पोषक और प्रतीक पुरुष थे। (75)

भारतेन्दु युग के निबंधकारों ने अपने समय की स्थितियों को देखा और उन्हें लगा कि भारतीय संस्कृति खतरे में पड़ी हुई है, इसीलिए उन्होंने अपनी लेखनी से भारतियों में एक नई चेतना डाल दी तांकि वह लोग भी जागृत हो सकें। प्रताप नारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट और प्रेमघन ने भी भारतेन्दु की तरह ही भारतीय समाज, संस्कृति और धर्म को बचाने के लिए उन्ही से प्रेरणा लेकर अपनी लेखनी से हमारी संस्कृति को बचाने के लिए निबंध लिखे। इस युग के निबंधकारों ने इतिहास, समाज, धर्म, राजनीति, नारी-उत्थान, कला, देश-प्रेम, भाषा और साहित्य आदि विभिन्न पक्षों पर लिखते हुए, हमारे भारतीय समाज में जागृति फैलाने का सफ़ल कार्य किया।

इस युग के निबंधकारों ने हास्य और व्यंग्य पर भी अपने निबंध लिखे हैं। उन्होंने अपने निबंधों में बोलचाल की सरल भाषा का प्रयोग किया है। हास्य और व्यंग्य पर सबसे पहले भारतेन्दु का नाम ही लिया जाता है। डॉ. विभुराम मिश्र अपनी पुस्तक *प्रतिनिधि हिन्दी निबंधकार* में कहते है कि “भाषा में हास्य और व्यंग्य देने का कार्य सर्वप्रथम भारतेन्दु ने ही किया।”(37) तत्कालीन परिस्थितियां पर सीधा प्रहार करने की उपेक्षा उन्होंने व्यंग्य को आधार बनाया। भारतेन्दु ने सभी प्रकार के निबंध लिखे

हैं। स्वर्ग में विचार सभा, सबै जाति गोपाल की, कंकड़ स्तोत्र, ईश्वर बड़ा विलक्षण है, आदि निबंध उनके व्यक्तिव्यंजक निबंधों में आते हैं।

भारतेन्दु युग में भारतेन्दु के बाद बालकृष्ण भट्ट प्रतिभाशाली निबंधकार माने जाते हैं। बालकृष्ण भट्ट ने साहित्य, राजनीति, समाज, दर्शन, कला और राष्ट्रीय भावना आदि विषयों पर निबंध लिखे हैं। हिन्दी साहित्य में सबसे अधिक निबंध बालकृष्ण भट्ट ने ही लिखे हैं, उन्होंने लगभग एक हज़ार निबंध लिखे हैं। बालकृष्ण भट्ट के हिन्दी निबंध *साहित्य-सुमन, भट्ट-निबंधमाला और भट्ट-निबंधावली* आदि निबन्ध-संग्रहों में प्रकाशित हो चुके हैं। भारत का भावी परिन्नाम क्या होगा, मेला-ठेला, खटका, बातचीत, जात-पाँत, जबान, कौम और ईश्वर भी क्या ठिठोल है आदि निबंध बालकृष्ण भट्ट के उल्लेखनीय निबंध हैं, उनके निबंधों में उनके व्यक्तित्व की छाप देखने को मिलती है। बालकृष्ण के निबंध भावात्मक, विवरणात्मक, वर्णनात्मक और व्यक्ति प्रधान है, लेकिन उनके निबंधों में अधिकतर विचारात्मकता की प्रधानता देखने को मिलती है। हास्य-व्यंग्य की प्रवृति तो बालकृष्ण भट्ट के व्यक्तित्व का ही अंग है। तीखे मार्मिक व्यंग्य उनके निबंधो में देखने को मिलते हैं, राजनीति और समाज पर भी उन्होंने तीखे व्यंग्य किये हैं। डॉ. भागीरथ मिश्र अपनी पुस्तक *निबंधकार बालकृष्ण भट्ट* में उनके निबंधों के बारे में कहते हैं कि "उनके निबंध उनके आन्तरिक भावों के सच्चे प्रतिरूप हैं। उनमें उनका जीवन झलकता है।"(66) 'चंद्रोदय' उनका भावात्मक निबंध शैली में लिखा गया है। आत्मनिर्भरता, इंग्लिश पढ़े सो बाबू होय, बातचीत और हमारे मन की मधुप वृति, उनके उत्कृष्ट व्यंग्य निबंध शैली में आते हैं। उन्होंने लगभग एक हज़ार निबंध लिखे हैं, निबंध चाहे किसी भी विषय पर हो लेकिन उनके अधिकतर निबंधों में व्यक्तित्व प्रधान है।

भारतेन्दु युग में बालकृष्ण के बाद प्रताप नारायण मिश्र का नाम आता है, वह भी हिन्दी के प्रतिनिधि निबंधकार हैं। भारतेन्दु से प्रेरणा लेकर उन्होंने आत्मव्यंजक निबंधों की रचना की। प्रताप नारायण मिश्र ने भी अपने समय की स्थितियों को आधार बनाकर निबंधों की रचना की है।

प्रताप नारायण मिश्र के महत्वपूर्ण निबंधों में पढ़े-लिखों के लक्षण, समझदार की मौत, नास्तिक, जवानी की सैर, बात, वृद्ध, आप, मुच्छ, भौं, दांत, पेट, नाक, चिंता, अपभ्रंश, द, ट आदि हैं। मिश्र के निबंधों की भाषा सरल है और लोकोक्तियों-मुहावरों से युक्त है। शैलियों के प्रयोग में उनका व्यक्तित्व उनके निबंधों में देखने को मिलता है।

प्रताप नारायण मिश्र ने विभिन्न विषयों पर अपने निबंध लिखे हैं, लेकिन उनके अधिकतर निबंधों में आत्मव्यंजकता का तत्व प्रधान है, इसीलिए उनके निबंध आत्मपरक निबंधों में आएँगे। *हिन्दी साहित्य में निबंध और निबंधकार* पुस्तक में डॉ. गंगा प्रसाद ने मिश्र के निबंधों के विषय में लिखा है- “हास-परिहास, व्यंग्य-विनोद, चंचलता, चुटीलापन, गुदगुदी भरी वक्रता, अल्हड़ता, आकर्षण मिश्र के निबंधों में चरम सीमा तक पहुँच गए हैं।”(143) प्रताप नारायण मिश्र भारतेन्दु युग के प्रतिनिधि और चोटी के निबंधकार हैं। उनके निबंधों में समाज सुधार और व्यंग्य के साथ-साथ हास्य भी देखने को मिलता है। धर्म, समाज और संस्कृति पर व्यंग्य के द्वारा उन्होंने अपने निबंधों में विचार व्यक्त किये हैं।

भारतेन्दु युग में बद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन का नाम सामाजिक निबंधकार के रूप में लिया जाता है। उनके निबंध भारतीय प्रजा की दुहाई और नैशनल काँग्रेस की दुर्दशा आदि पर है। उन्होंने धर्म, समाज और संस्कृति आदि पर लिखा है। जैसे कोई भी लेखक जो रचता है, वह अपने समय से प्रभावित होकर ही रचता है, वैसे ही प्रेमघन ने भी अपने समय की स्थितियों को आधार बनाया और अपनी लेखनी में अपने समय

की परिस्थितियों को व्यक्त किया। इनके अतिरिक्त लाला श्रीनिवास दास, अम्बिकादत व्यास, महादेव दुबे, गोविन्द प्रभाकर, हरिश्चन्द्र उपाध्याय, सदानंद मिश्र और दुर्गाप्रसाद मिश्र भारतेन्दु युग के निबंधकार हैं।

निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि भारतेन्दु युग के निबंधकारों को निबंध लेखन में सफलता प्राप्त हुई है। उन्होंने शिक्षा, धर्म, राजनीति, समाज, संस्कृति, नैतिकता, भाषा, त्यौहार, खेती, इतिहास और वर्तमान देश की दुर्दशा आदि विभिन्न विषयों पर निबंध रचनाएँ रची हैं। इन निबंधकारों की भाषा में सरलता, स्वाभाविकता आत्मीयता आदि देखने को मिलती है। ग्रामीण भाषा का सरल और सहज प्रयोग प्रताप नारायण मिश्र के निबंधों में मिलता है। बालकृष्ण भट्ट की भाषा तीखी और चुटकीली और व्यंग्य उनके निबंधों में अधिकतर हैं। भारतेन्दु युग के निबंधकारों को अपने निबंधो में पूरी सफलता प्राप्त हुई है।

2.2. द्विवेदी युग के प्रमुख निबंधों में सांस्कृतिक चेतना

हिन्दी निबंध के विकास के द्वितीय चरण को आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम पर द्विवेदी युग कहा गया है। द्विवेदी ने ‘सरस्वती’ पत्रिका का सम्पादकत्व 1903 ई. में संभाला था, अत: द्विवेदी युग का प्रारम्भ, इसी समय से मान सकते हैं। द्विवेदी ने सरस्वती के माध्यम से भाषा संस्कार एवं व्याकरण-शुद्धि के जो प्रयास प्रारम्भ किए, उनका प्रभाव तत्कालीन सभी निबंधकारों पर किसी न किसी रूप में अवश्य पड़ा।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने ‘बेकन’ के निबंधों को आदर्श मानते हुए, उनके निबंधों का हिन्दी अनुवाद *बेकन-विचार रत्नावली* के नाम से किया। इसके अतिरिक्त उनके अपने निबंधों का संग्रह *रसज्ञ रंजन* नाम से प्रकाशित हुआ। द्विवेदी के कुछ

प्रसिद्ध निबंधों के नाम हैं- कवि और कविता, कवि कर्तव्य, प्रतिभा, साहित्य की महता, लोभ, मेघदूत, आदि उनके लिखे महत्वपूर्ण हिन्दी निबंध हैं। उनके निबंधों में वैचारिकता एवं गम्भीरता है, तथा भारतेन्दु युग की हास्य-व्यंग्य शैली का यहाँ अभाव है। इन निबंधों की भाषा शुद्ध, सार्थक और परिमार्जित है। ये निबंध प्राय: व्यास शैली में लिखे गये हैं, जिससे वह बोधगम्यता के गुण से युक्त हो गए हैं। उनमें कहीं भी दुरूहता अथवा क्लिष्टता नहीं है। विषय के अनुरूप वे अपनी शैली में परिवर्तन करते दिखाई पड़ते हैं। डॉ. अशोक तिवारी की पुस्तक *प्रतियोगिता साहित्य* में उदाहरण के लिए 'मेघदूत' निबंध जिनमें शैली की गम्भीरता स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है- "कविता कामिनी के कमनीय नगर में कालिदास का 'मेघदूत' एक ऐसे भव्य भजीवन के सदृश है, जिसमें पद रूपी अनमोल रत्न जड़े हुए हैं।"(317)

भारतेन्दु युग की निबंध परम्परा से एक स्पष्ट अलगाव द्विवेदीयुगीन निबंधों में परिलक्षित होता है। भारतेन्दु युग के निबंधों में वैयक्तिकता की प्रधानता थी, वहीं द्विवेदी युग के निबंधों में व्यक्तित्व-व्यंजक परम्परा का हास दिखाई पड़ता है। द्विवेदी युग के निबंधकारों में पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी के अतिरिक्त, अन्य प्रमुख निबंधकार थे, माधवप्रसाद मिश्र, गोविन्द नारायण मिश्र, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, मिश्र बन्धु, जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी आदि हैं। इन निबंधकारों ने द्विवेदी की परम्परा का अनुसरण करते हुए विचार प्रधान निबंध लिखे। माधव प्रसाद मिश्र के निबंधों का संग्रह *माधव मिश्र निबंधमाला* नाम से प्रकाशित हुआ है। इन्होंने धृति और सत्य जैसे निबंधों की रचना विचार प्रधान निबंधों की शैली में की है। गोविन्द नारायण मिश्र की भाषा संस्कृतनिष्ठ एवं अलंकारों के बोझ से दबी हुई है। वाक्य लम्बे-लम्बे है और तत्सम एवं सामासिक पदावली की अधिकता है।

बाबू श्यामसुन्दरदास द्विवेदी युग के श्रेष्ठ निबंधकार हैं। वह एक उच्चकोटि के आलोचक थे। उनके निबंधों का अधिकतर विषय आलोचना से सम्बन्धित रहा। सहित्य की विशेषताएँ, कर्तव्य और सभ्यता, समाज और साहित्य आदि इनके प्रमुख निबंध हैं। बाबू के निबंधों में आत्माभिव्यंजन एवं वैयक्तिकता के तत्वों की उपेक्षा करते हुए केवल विचारों की अभिव्यक्ति पर ही ध्यान केन्द्रित किया गया है। उनकी शैली में प्रौढ़ता है, किन्तु कहीं भी अस्पष्टता नहीं दिखाई देती। तुलनात्मक समालोचना के लिए प्रख्यात पं. पदम सिंह शर्मा के दो निबंध संग्रह *पद्मपराग एवं प्रबंध-मंजरी* नाम से प्रकाशित हुए हैं। इनके निबंधों में वैयक्तिकता एवं भावुकता की प्रधानता है। इनकी शैली प्रशंसात्मक एवं प्रभावपूर्ण है, तथा उसमें खण्डन-मण्डन की प्रवृति दिखाई पढ़ती है। वाक्य रचना से उन्होंने कथ्य को विशेष प्रभावशाली बना दिया।

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के निबंधों में प्रखर पाण्डित्य की झलक हमें देखने को मिलती है, वह भी द्विवेदी युग के प्रतिनिधि निबंधकार माने जाते हैं। उनमें गम्भीर चिन्तन सूक्ष्म विश्लेषण और व्यंग्य का पुट है। गुलेरी की भाषा प्रौढ़ एवं विषयानुकूल है। इनके प्रमुख निबंध संग्रहों के नाम हैं- गोबर गणेश संहिता, कछुआ धर्म और मारेसि मोहि कुठांव आदि। इनके बाद द्विवेदी युग के सशक्त निबंधकार हैं- सरदार पूर्णसिंह जो हिन्दी में भावात्मक निबंधों की रचना के लिए तथा शैली की विशिष्टता एवं भाषा की लाक्षणिकता के लिए सुविख्यात रहे हैं। उनके निबंध हिन्दी की अमूल्य निधि है। इनके निबंधों के नाम- *आचरण की सभ्यता, मजदूरी और प्रेम, सच्ची वीरता, पवित्रता, कन्यादान, अमेरिका का मस्त कवि वाल्ट ह्विटमैन* है। इनके निबंधों में स्वाधीन चिन्तन के साथ-साथ लाक्षणिक एवं व्यंग्य प्रधान शैली की छाप देखने को मिलती है। पूर्णसिंह भी द्विवेदी युग में अपने समय के प्रतिनिधि निबंधकार माने जाते हैं।

इन सभी बातों पर दृष्टि डालते हुए कहा जा सकता है, द्विवेदी युग में विचार प्रधान निबंधों की रचना अधिक हुई है। भारतेन्दु युग की अपेक्षा, इस युग के निबंधकारों की भाषा शैली में प्रौढ़ता दिखाई देती है। इन निबंधकारों ने युगीन समस्याओं की अपेक्षा, साहित्यिक एवं वैचारिक समस्याओं पर अपना ध्यान केन्द्रित करते हुए, निबंधों के विषयों की खोज की है। हास्य-व्यंग्य के स्थान पर इनमें गम्भीरता अधिक है। अध्यापक पूर्णसिंह और गुलेरी के निबंधों को छोड़कर, शेष निबंधों में वैयक्तिकता का प्रस्फुटन नहीं हुआ। इस युग के निबंधकारों में भावात्मक, विचारात्मक और शोधपरक सभी शैलियों का प्रयोग किया है। भाषा की दृष्टि से यह निबंध भारतेन्दु युग के निबंधों से अधिक प्रौढ़ है।

2.2.1. धर्म और नीति पक्ष

द्विवेदी युग के निबंधकारों नें भी अपने निबंधों में विभिन्न विषयों पर अपने निबंध लिखे हैं। उन्होंने धर्म, साहित्य, समाज, राजनीति और हास्य-व्यंग्य पर अपने निबंध लिखे हैं। इस युग के श्रेष्ठ निबंधकार बालमुकुन्द गुप्त हैं, उनका निबंध *शिवशंभु के चिटठे* भारत मित्र में प्रकाशित हुआ है। इसमें उन्होंने अपने ही अनुभव और विचार प्रकट किये हैं। उनके निबंधों में व्यंग्यात्मक शैली में बाहरी रूप हास परिहास और हँसी मजाक देखने को लगता है, किन्तु अन्दर गहरी पीड़ा एवं वेदना झकझोर रही है। धर्म के नाम पर हो रहे भृष्टाचार को उन्होंने अपनी लेखनी में व्यक्त किया है। आत्माराम निबंध में उन्होंने महावीरप्रसाद द्विवेदी के साथ बहस की है। इनकी यही बातों को देखकर डॉ. जयनाथ नलिन ने अपनी पुस्तक *हिन्दी निबंध* के अलोक शिखर' में कहा है:

गुप्त के निबंधों में इनकी आत्मा का बेताब तीखापन व्यंग्य का चोला पहन कर बोलता है। राजनीतिक और सामाजिक समस्याओं पर उन्होंने बहुत ही सफल, चुभीले, गुदगुदी भरे, चुटीले और सफल व्यंग्यात्मक निबंध लिखे हैं। गुप्त के निबंध व्यंग्य सरस, मधुर और सुबोध हैं। साधारण पाठक भी उनमें आनन्द लेता है। (92)

इनके बाद हमारी दृष्टि महावीर प्रसाद द्विवेदी पर जाती है, इन्होंने अधिकतर निबंध विचारात्मक किस्म के ही लिखे हैं। द्विवेदी ने साहित्य, समाज, दर्शन, धर्म और भारतीय संस्कृति पर अपनी लेखनी द्वारा धर्म के नाम पर हो रहे बुरे व्यवहार को भी नकारा है। किस तरह लोग धर्म के नाम पर अपना कार्य कर रहे हैं और धर्म के नाम पर पैसा बटोर रहे हैं। द्विवेदी युग के सभी निबंधकारों ने अपने समय को लेकर हो रहे सांस्कृतिक व्यवहार को अपनी लेखनी में व्यक्त किया है, उस समय की संस्कृति कैसी थी और लोग क्या भावनाएँ लेकर चल रहे थे, जिसे हम इस युग में आसानी से देख सकते हैं। यह निबंधकार भारतीयता के प्रति गहरी श्रद्धा लेकर चलते हैं, इनके निबंधों के विषय ऐतिहासिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक हैं। इन निबंधकारों के निबंधों से हमें, उस समय की स्थितियों का ज्ञान हो जाता है, तब भारतीय किस तरह की सांस्कृतिक दशाओं में अपना जीवन बतीत कर रहे थे।

गोविन्द नारायण मिश्र इस युग के अगले हिन्दी निबंधकार हैं। *गोबिन्द नारायण ग्रंथावली* में संकलित गोविन्द नारायण मिश्र के निबंधों में शैली शब्दाडम्बर- प्रधान है। इनके निबंधों में व्यर्थ के अनुप्रास और लम्बे-लम्बे वाक्य एवं शब्दों के विलक्षण प्रयोग के कारण, इनके निबंध न घर के रहे और न घाट के, ना ही निबंध रहे और ना ही गद्य काव्य बन सके। पं. पदम सिंह शर्मा अधिकतर आलोचना करते थे और साथ-साथ उन्होंने निबंध की भी रचना की है। इनके निबंध 'पदम पराग' और 'प्रबंध-

मंजरी' में संग्रहीत हुए हैं। पदम सिंह शर्मा के निबंधों में भी उनके समय की स्थितियों को देखा और समझा जा सकता है, उनके निबंधों में अधिकतर जीवन परिचय की निकटता देखने को मिलती है। उनके द्वारा लिखे गये कुछ निबंध व्यंग्य की कोटि में भी आते हैं, जिनमें उन्होंने संस्कृति और धर्म को लेकर तीखे व्यंग्य किये हैं। हास्य का पुट भी उनमें कहीं-कहीं देखने को मिलता है, लेकिन व्यंग्य का अधिकतर, जिसमें समाज और समय पर व्यंग्य करते हुए, उन्होंने हमें उस समय की परिस्थितियों से ज्ञात करवा दिया है। अगर उनकी भाषा शैली की बात की जाये तो उनकी शैली उनके लेखक का परिचय दे देती है, हमारा सिरजनहारा कौन है।

इस युग में अध्यापक पूर्णसिंह एक प्रतिनिधि और चमत्कारपूर्ण निबंधकार सिद्ध हुए हैं। इनके निबंधों में हृदय की रागात्मकता अधिकतर देखने को मिलती है, जो द्विवेदी युग के किसी अन्य निबंधकार में देखने को नहीं मिलती। इन्होंने केवल मात्र छह निबंध लिखकर ही निबंध साहित्य में अमरता प्राप्त की है। वह अंग्रेजी भाषा में अधिक लिखते थे, और इन्होनें पंजाबी भाषा में भी बहुत पुस्तकों की रचना की है। अध्यापक पूर्णसिंह का प्रथम निबंध *सच्ची वीरता* सरस्वती में प्रकाशित हुआ और उनका निबंध *पवित्रता* भारतोदय में प्रकाशित हुआ। उनके शेष चार निबंध सरस्वती में प्रकाशित हुए हैं। इस तरह उन्होंने जनवरी-फरवरी 1909 ई. से लेकर 1913 ई. तक ललित निबंधों की रचना की है। उनके निबंधों के नाम हैं- *सच्ची वीरता, कन्यदान, पवित्रता, आचरण की सभ्यता, मजदूरी और प्रेम, अमेरिका का कवि वाल्ट ह्विटमैन* आदि।

अध्यापक पूर्णसिंह ने अपने निबंध *सच्ची वीरता* में केवल मात्र भारत के ही नहीं, विश्व भर के युग-पुरुषों के उदाहरण देकर एक सच्चे वीर की उदारता धैर्य, निर्भीकता, कर्तव्य, कर्मठता, शालीनता, प्रेम, बलिदान, ईमानदारी, धर्म और संस्कृति आदि

शाश्वत मूल्यों को निरूपित किया है। आपके निबंध *कन्यादान* को आपने पाँच उपशीर्षकों में विभक्त किया गया है- नयनों की गंगा, यूरोप में ग्रहस्थों की बेचैनी, सच्ची स्वतंत्रता, आर्य आदर्श के भग्नावशिष्ट अंश, भारत में कन्यादान की रीति आदि। अध्यापक पूर्णसिंह अपने निबंधों में भारतीय संस्कृति, लोक जीवन, प्रकृति-चित्रण, इतिहास, अतीत, पुराण एवं मानव मूल्यों को चित्रत करते हैं। उस समय की स्थिति और भारतीयता की पहचान इनके निबंधों में देखी जा सकती है। *हिन्दी साहित्य का इतिहास* पुस्तक में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कहते हैं- “उनके निबंधों में विचारों और भावों को एक अनूठे ढंग से मिश्रित करने वाली एक नई शैली मिलती है।”(523)

डॉ. ओंकारनाथ शर्मा ने अपनी पुस्तक *हिन्दी निबंध का विकास* में कहा है- “हिन्दी निबंध साहित्य में भावात्मक निबंध का प्रकर्ष अध्यापक पूर्णसिंह के निबंधों में मिलता है।”(160-61) भावात्मक निबंधों में इन्होंने अधिकतर निबंधों की रचना की है, भावात्मक निबंधों में इनकी समतुल्य पाना दुर्लभ है। इनके जैसा भावात्मक निबंध लेखन हिन्दी में शायद ही हो। *सरदार पूर्णसिंह अध्यापक के निबंध* पुस्तक में डॉ. हरवंश लाल शर्मा कहते हैं- “जिस प्रकार विचारात्मक निबंधों का चरमोत्कर्ष आचार्य शुक्ल के निबंधों में मिलता है, उसी प्रकार भावात्मक निबंधों का चरमोत्कर्ष अध्यापक पूर्णसिंह के निबंधों में परिलक्षित होता है।”(38)

2.2.2. सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक पक्ष

द्विवेदी युग के निबंधकारों ने समाज और राजनीति पर भी अपनी लेखनी चलाकर, हिन्दी निबंध लिखे हैं। इस युग के निबंधकारों ने समाज, साहित्य, संस्कृति, राजनीति, दर्शन, भक्ति, इतिहास और कला पर अपने निबंधों में उस समय की परिस्थितियों को हमारे समक्ष प्रस्तुत कर दिया है। इस युग में आचार्य द्विवेदी ने अपनी लेखनी चलाकर सभी को प्रोत्साहित किया, अपने से आगे के निबंधकारों को

भी लिखने के लिए प्रोत्साहित किया। आचार्य द्विवेदी का लक्ष्य हिन्दी साहित्य को संस्कारित और परिमार्जित करना था। उन्होंने अपने युग में हिन्दी के बहुत श्रेष्ठ निबंधकारों का निर्माण किया। *हिन्दी निबंधकार* पुस्तक में डॉ. जयनाथ नलिन का कथन है-

> द्विवेदी को युग निर्माण की जितनी चिन्ता रही, कला साधना की नहीं। वह युग निर्माण तो कर गये, साहित्य निर्माण नहीं। द्विवेदी यथार्थ में आचार्य थे। आचार्य पथ प्रदर्शित करता है, अन्यों को निर्माण कार्य में लगाता है, स्वयं चाहे अधिक निर्माण न कर सके। (106)

द्विवेदी ने अपने हिन्दी निबंधों के द्वारा ज्ञान-विज्ञान और संस्कृति, समाज, साहित्य विविध विषयों को अपने निबंधों का विषय बनाकर पाठकों को अपने समय की परिस्थितियों से परिचित करवाया। द्विवेदी ने बेकन के निबंधों का *बेकन-रत्नावली* शीर्षक नाम से हिन्दी में अनुवाद किया और हिन्दी के अन्य लेखकों से भी निबंधों का अनुवाद करवाया। आचार्य द्विवेदी ने 'कवि और कविता', 'भोज व्याकरण', 'कालिदास की जन्मभूमि', 'सरकारी कृषि क्षेत्र', 'ईश्वर', 'ज्ञान', 'देहात में बीमारी' और 'मात्रभाषा के द्वारा शिक्षा प्राप्ति' आदि विविध विषयों पर, उन्होंने उल्लेखनीय निबंध लिखे। आचार्य द्विवेदी के हिन्दी निबंधों में हमें विभिन्न विषयों के साथ-साथ भाषा के भी विभिन्न पक्ष देखने को मिलते हैं। उनके निबंधों की भाषा की अगर बात की जाये तो साहित्यिक खड़ी बोली, संस्कृतमयी और बोलचाल की भाषा प्रयुक्त दिखाई पड़ती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की पुस्तक *हिन्दी साहित्य का इतिहास* में शुक्ल का कथन है- "कठिन से कठिन विषय को सरल से सरल भाषा रूप में प्रस्तुत करना ही उनकी विशेषता थी।"(466)

बालमुकुन्द गुप्त भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग को एक साथ जोड़नेवाले निबंधकार हैं। उनके निबंधों में भारतेन्दु युगीन मस्ती है और द्विवेदी युग में साफ़ और स्वच्छ भाषा शैली भी है। हिन्दी साहित्य में बालमुकुन्द गुप्त *शिवशम्भू का चिटठा* को लेकर प्रसिद्ध हैं। उन्होंने अपने निबंधों में तत्कालीन स्थितियों को देखते हुए समाज, राजनीति, संस्कृति और साहित्य पर निबंध लिखे। हिन्दी के पाठकों को उन्होंने अपनी कलम के द्वारा अपने समय की राजनीतिक दशा से परिचित करवाया। 'मेले का ऊंट', 'हिन्दी में बिंदी', 'एसोसियेशन', 'पं. प्रतापनारायण मिश्र' आदि उनके उल्लेखनीय निबंध हैं। उनके निबंधों की भाषा व्यंजनात्मक होते हुए भी सरल है। उनके निबंधों में विचारात्मकता भी देखने को मिलती है और अपने समय की राजनीतिक और सामाजिक स्थिति भी देखने को मिलती है। अत: यह कहा जा सकता है कि बालमुकुन्द गुप्त के विचारात्मक, भावात्मक, विवरणात्मक और वर्णनात्मक निबंधों में उनका विनोदप्रिय व्यक्तित्व ही दिखाई देता है। इनके निबंधों में विवेचना और व्यंग्य शैली का मिश्रित रूप देखने को मिलता है। *हिन्दी निबंधकार* पुस्तक में डॉ. जयनाथ नलिन ने लिखा है:

> हृदय और मस्तिष्क का जैसा सामंजस्य इनके व्यंग्य निबंधों में मिलता है, वह आगे कम ही देखने को आएगा। इनके व्यंग्य का बाह्य स्वरूप हँसता-हँसता दीखता है, पर उसके अंतर में एक बेचैनी बजती है। (90-91)

इनके उपरान्त अध्यापक पूर्णसिंह इस युग के प्रतिनिधि निबंधकार हैं। पूर्णसिंह केवल मात्र छ: निबंध लिखकर ही हिन्दी साहित्य के इतिहास में अमर हो गए। *सच्ची वीरता, कन्यादान, पवित्रता, आचरण की सभ्यता, मजदूरी और प्रेम, अमेरिका का कवि वाल्ट ह्विटमैन* आदि अध्यापक पूर्णसिंह के छ: प्रमुख निबंध हैं। उन्होंने भी अपने निबंधों में अपने समय की स्थितियों को अपनी लेखनी के द्वारा हिन्दी पाठकों

के समक्ष प्रस्तुत किया है। अपने समय में अध्यापक पूर्णसिंह हिन्दी के महत्वपूर्ण निबंधकार थे, और उन्होंने अधिकतर भावात्मक निबंध ही लिखे हैं।

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी द्विवेदी युग की महत्वपूर्ण देन है। यह द्विवेदी युग के एकमात्र ऐसे प्रतिनिधि निबंधकार हैं, जिन्होंने अधिकतर आत्मव्यंजक कोटि के निबंध लिखे हैं। इनके महत्वपूर्ण निबंध *कछुवा-धर्म* तथा *मारेसि मोहिं कुठाँव* आदि हैं। उन्होंने अपने निबंधों में प्राचीन समस्याओं को आधुनिक प्रश्नों एवं समस्याओं के साथ जोड़कर, उन्हें एक नया अर्थ प्रदान किया। गुलेरी की भाषा में प्रवाह, स्फूर्ति, व्यंग्य-विनोद एवं मुहावरों का अधिक प्रयोग है, जिसके कारण उनके निबंधों में अर्थ वक्रता प्रधान है। इनके निबंधों में रोचकता, व्यंग्य, मनोविनोद, पाण्डित्य, गंभीरता, नवीनता और सरलता आदि सभी के दर्शन होते हैं। *हिन्दी साहित्य का इतिहास* पुस्तक में इनकी शैली के विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है- “शैली की जो विशिष्टता और अर्थ-गर्भित वक्रता गुलेरी में मिलती है, वह और किसी लेखक में नहीं।”(354)

इनके अतिरिक्त द्विवेदी युग में पं. माधवप्रसाद मिश्र के निबंध भी हैं, जो भावात्मक किस्म के हैं, इनके ‘रामलीला’, ‘सब मिट्टी हो गया’, ‘धृति’, ‘क्षमा’ आदि इनके भावात्मक महत्वपूर्ण निबंध हैं। इनमें से ‘सब मिट्टी हो गया’ निबंध आत्मपरक कोटि में आता है। इनकी भाषा की अगर हम बात करें तो संस्कृतनिष्ठ शुद्ध हिन्दी का प्रयोग इनके निबंधों में देखने को मिलता है। इनके अतिरिक्त डॉ. श्यामसुंदर दास समीक्षक के रूप में प्रख्यात हैं, हिन्दी भाषा और साहित्य संबंधी उनके निबंध देखने को मिलते हैं और हिन्दी भाषा और साहित्य में उनका योगदान काफी उल्लेखनीय है। पदमसिंह शर्मा हिन्दी में आलोचना के लिए प्रसिद्ध माने जाते हैं। उनका ‘पं. गणपति शर्मा’ श्रेष्ठ भावात्मक किस्म का हिन्दी निबंध है। द्विवेदी युग में हास्य-व्यंग्य शैली के

निबंध भी देखने को मिलते हैं, जिनके लिए इस युग में पं. जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी प्रसिद्ध माने जाते हैं। इनके 'ब की बहार' और 'पिक्चर' आदि निबंध उल्लेखनीय हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के श्रेष्ठ मनोवैज्ञानिक निबंध 'भय और क्रोध', 'ईर्ष्या', 'घृणा', 'करुणा', 'श्रद्धा-भक्ति', 'उत्साह', 'लोभ और प्रीत' और 'लज्जा और ग्लानि' इसी युग में 1912 से 1919 ई. के मध्य नागरी प्रचारिणी पत्रिका में प्रकाशित हुए है। आगे चलकर रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी निबंधों को एक नई चेतना प्रदान की। जिसके कारण सभी इतिहासकार उनके नाम से ही एक युग की स्थापना करते है, शुक्ल का समुचित मूल्याँकन आगे के युग में किया जायेगा।

इसी तरह हम निष्कर्ष रूप में यह कह सकते हैं, इस युग में भी साहित्य, भाषा, व्याकरण, विज्ञान, इतिहास, अध्यात्म, भूगोल, देशप्रेम, समाज और संस्कृति भारत के प्राचीन गौरव और विविध विषयों पर हिन्दी निबंध लिखे गये हैं। इस युग में अंग्रेजी और अन्य भाषाओं से भी निबंधों का हिन्दी में अनुवाद किया गया और इस युग के निबंधकारों ने दूसरे निबंधकारों को भी, निबंधों का हिन्दी में अनुवाद करने के लिए प्रोत्साहित किया। इस युग के सभी निबंधकारों की सरल शब्दावली और भाषा प्रमुख विशेषता थी, जो सरल वाक्यों का प्रयोग उन्होंने किया, तांकि आम पाठकों को भी अपने समय की स्थितियों का ज्ञान प्राप्त हो सके। चन्द्रधर शर्मा गुलेरी और अध्यापक पूर्णसिंह, इस युग के महत्वपूर्ण निबंधकार और श्रेष्ठ शैलीकार महत्वपूर्ण उपलब्धि हैं। इस युग में आलोचनात्मक और विचारात्मक निबंधों की प्रधानता रही है।

द्विवेदी युग के निबंधकारों ने भी भारतेन्दु युग के निबंधकारों की तरह, अपने समय की समस्याओं को अपने निबंधों द्वारा पाठकों तक पहुँचाया है। उन्होंने प्राचीन

समस्याओं को साथ लेकर आधुनिक समय के साथ जोड़कर, अपने निबंधों के द्वारा हिन्दी के पाठकों को प्रचलित समस्याओं से परिचित करवाया है।

2.3. शुक्ल युग के प्रमुख निबंधों में सांस्कृतिक चेतना

हिन्दी निबंध के तृतीय चरण को शुक्ल युग की संज्ञा प्रदान की गई है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबंध क्षेत्र में पदार्पण करने से इसे नए आयाम एवं नई दिशाएं प्राप्त हुई। उन्होंने चिन्तामणि में जो निबंध संकलित किये हैं, उनमें हिन्दी निबंध अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचा दिखाई पड़ता है। वस्तुत: निबंध कला के सभी गुण, इनके निबंधों में उपलब्ध होते हैं। शुक्ल के निबंधों में भाव एवं विचार का अर्थात हृदय एवं बुद्धि का सन्तुलित समन्वय है। उनके निबंध दो प्रकार के हैं- साहित्यिक समीक्षा सम्बन्धी निबंध और मनोविकार सम्बन्धी निबंध। तुलसी का भक्तिमार्ग, कविता क्या है, साधारणीकरण और व्यक्ति वैचित्र्यवाद, उनके प्रथम कोटि के हिन्दी निबंध हैं। उत्साह, लज्जा और ग्लानि, क्रोध, श्रद्धा-भक्ति, उनके द्वितीय प्रकार के निबंध हैं। शुक्ल के निबंधों में चिन्तन की मौलिकता, विश्लेषण की सूक्ष्मता एवं शैली की प्रौढ़ता के एक साथ दर्शन होते हैं। उनके निबंधों के सम्बन्ध में यह निर्णय करना दुष्कर है, वह विषय प्रधान हैं, या व्यक्ति प्रधान। इनके निबंधों में वैयक्तिकता का तत्व भी है और गम्भीर विवेचन तथा सूक्ष्म विश्लेषण भी है।

भाषा की दृष्टि से उनके निबंधों को 'हिन्दी निबंध का आदर्श' कहा जा सकता है। उनका वाक्य विन्यास सुसंगठित एवं सटीक है। पत्येक शब्द स्फटिक मणि की भांति अपने उचित स्थान पर जड़ा हुआ है, जिसका कोई विकल्प नहीं है। यदि कहा जाए कि 'शैली ही व्यक्तित्व है' तो यह कथन शुक्ल के निबंधों पर पूर्णत: चरितार्थ होता है। शुक्ल ने विषयानुरूप सभी शैलियों का प्रयोग किया है। कहीं वह सूत्र शैली का प्रयोग करते हैं, तो कहीं शोधपरक शैली का प्रयोग करते हैं। शुक्ल अपने विचारों को ऐसी

कुशलता से व्यक्त करते हैं, पाठकों को उनसे सहमत होने के अतिरिक्त और कोई रास्ता नही रहता। डॉ. अशोक तिवारी की पुस्तक *प्रतियोगिता साहित्य* में शुक्ल के निबंधों का एक उदहारण इस प्रकार है-

> वस्तुत: शुक्ल के निबंधों में वह सभी गुण मिलते हैं, जो गंभीर विषयों के निबंधों के लिए अपेक्षित हैं। शुक्ल की शैली में भी नि विशिष्टता मिलती है। भारतेन्दु युग की सी मौलिकता उसमें है, किन्तु वे उनके छिछलेपन से दूर हैं, द्विवेदी युग की सी विचारात्मकता उसमें है, किन्तु वैसी शुष्कता का उनमें अभाव है। (318)

शुक्ल के निबंधों में परिष्कृत, प्रांजल, साहित्यिक भाषा का प्रयोग हुआ है। शब्द चयन, वाक्य रचना और सादृश्य विधान सबमें उनकी काव्यात्मक रुचि का परिचय मिलता है। शुक्ल युग में आचार्य शुक्ल के अतिरिक्त चर्चित निबंधकार हैं- बाबू गुलाबराय, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, वियोगी हरि, रायकृष्ण दास, वासुदेव शरण अग्रवाल, शान्तिप्रिय द्विवेदी और माखनलाल चतुर्वेदी। इनमें से बाबू गुलाबराय को हिन्दी निबंध साहित्य की एक उपलब्धि कहा जा सकता है। उनके निबंध संग्रहों के नाम हैं- *मेरे निबंध, मेरी असफलताएँ* और *फिर निराशा क्यों*। गुलाबराय एक उच्चकोटि के आलोचक भी थे, अत: उनके कुछ निबंधों में साहित्यिक समस्याओं पर विचार किया गया है। कुछ निबंध नितान्त वैयक्तिक हैं, जिन्हें रोचक ढंग से लिखा गया है, तथा इनमें उनके व्यक्तित्व के विभिन्न पहलू उभरकर सामने आते हैं।

पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी के निबंध *कुछ* और *पंचपात्र* में संकलित हैं, जिनमें मौलिक विचार एवं नूतन शैली के दर्शन होते हैं। अतीत स्मृति, उत्सव, रामलाल पण्डित, श्रद्धांजली के दो फूल जैसे निबंधों में लेखक की भावुकता, आत्मीयता और व्यंग्य का समन्वय मिलता है। इनकी शैली बाबू श्यामसुन्दर के साथ मिलती-जुलती

है। शान्तिप्रिय द्विवेदी ने एक ओर तो आलोचनात्मक निबंध लिखे तो दूसरी ओर वैयक्तिक निबंधों की रचना की है। कवि और काव्य तथा साहित्यिकी में संकलित निबंधों में भावुकता एवं आत्मीयता की प्रधानता है। डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने प्राय: सांस्कृतिक विषयों पर निबंध लिखे हैं, जिनमें उच्चकोटि की विद्वता झलकती है। माखनलाल चतुर्वेदी ने भाव प्रधान निबंधों की रचना की है, किन्तु उनमें गंभीर चिन्तन भी विद्यमान है। उनके निबंधों में प्रयुक्त भाषा-शैली भी लाक्षणिक एवं प्रतीकात्मक है।

इन सभी विवेचन के आधार पर, हम यह कह सकते हैं, शुक्ल युग हिन्दी निबंध के विकास का स्वर्ण युग है। इस युग में निबंधों का विषय क्षेत्र अधिक व्यापक हुआ है, साथ ही उसमें गम्भीरता एवं सूक्ष्मता भी देखने को मिलती है। निबंध मनोविज्ञान, साहित्य, संस्कृति, इतिहास सभी विषयों को समाविष्ट किए हुए हैं। इन विषयों की मौलिक समस्याओं को बड़ी सूक्ष्म पकड़ के साथ प्रस्तुत किया गया, किन्तु निबंधों में भावुकता एवं आत्मीयता का तत्व भी पर्याप्त मात्रा में बना रहा। निजी अनुभूतियों एवं वैयक्तिक भावनाओं का प्रकाशन भी शुक्ल युग के निबंधकारों ने खूब किया है। भाषा-शैली की दृष्टि से यह युग द्विवेदी युग की तुलना में अधिक विकसित एवं प्रौढ़ है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, इस युग की महानतम उपलब्धि हैं और हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ निबंधकार कहे जाते हैं। बहुमुखी प्रतिभा के धनी बाबू गुलाबराय एक सफ़ल अध्यापक, गंभीर चिंतक, मनीषी दार्शनिक, जागरूक सम्पादक, श्रेष्ठ समीक्षक एवं सफल निबंधकार थे। उनके निबंध हैं- मेरे निबंध, मेरी असफलताएँ और फिर निराशा क्यों। दर्शन के प्रकाण्ड पण्डित और साहित्य मर्मज्ञ सर्जना करने वाले निबंधकार थे। विचार और भाषा शैली की दृष्टि से वे शुक्ल परम्परा के निबंधकार हैं। उनकी भाषा में संस्कृत, अंग्रेजी, उर्दू के प्रचलित शब्दों का समावेश है। आलोचनात्मक निबंधों की

भाषा शुद्ध परिनिष्ठित हिन्दी है। आवश्यकतानुसार लोकोक्तियों, मुहावरों एवं उद्धरणों का प्रयोग भी वे अपनी भाषा में करते हैं। आत्मपरक निबंधों में उनकी विनोद वृति झलकती दिखाई पड़ती है। शैली की विविधता भी उनके निबंधों में दिखाई पड़ती है। भावात्मक, विवेचनात्मक, व्याख्यात्मक, हास्य व्यंग्य, आलंकारिक शैलियों के प्रयोग विषय के अनुरूप उनके निबंधों में हैं। बाबू इस युग के प्रतिनिधि निबंधकार कहे जा सकते हैं। उन्होंने अपने निबंधों के द्वारा पाठकों को हिन्दी साहित्य के लिए प्रोत्साहित किया।

2.3.1. धर्म और नीति पक्ष

हिन्दी निबंधों का तृतीय युग शुक्ल युग नाम से जाना जाता है, यह युग 1920 से 1940 ई. तक का है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, इस युग के महान साहित्यकार हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल से लेकर आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के साहित्य के आगमन के बीच, इस युग के निबंधों का उत्थान देखने को मिलता है। इस युग में रामचन्द्र शुक्ल और उनके परवर्ती निबंधकारों ने इस युग में अपने निबंधों में हिन्दी पाठकों को उनके समय की समस्याओं के साथ परिचित करवाया। कुछ निबंधकारों ने हास्य को लेकर और व्यंग्य से हमें उस समय की समस्याओं से परिचित करवाया। इस युग में भक्ति और दर्शन, समाज और राजनीति, धर्म और नीति और कला को लेकर, हिन्दी निबंधों की रचना की गई है। कुछ निबंधकार धर्म पर अपने विचार प्रकट करते हैं, तो कुछ समाज और राजनीति पर अपने विचारों को प्रकट करते प्रतीत होते हैं।

शुक्ल के निबंधों में हमें उनके भाव एवं विचार स्पष्ट रूप से देखने को मिलते हैं। इन्होंने अपने निबंध संग्रह 'चिन्तामणि' में स्वयं इस बात को स्वीकार किया है। इनके हिन्दी निबंध *चिन्तामणि भाग-1* और *चिन्तामणि भाग 2* में संकलित है। शुक्ल के

निबंध 'लोभ और प्रीति' में हृदय तत्व की प्रधानता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबंध संग्रह *चिन्तामणि भाग-1* में उनकी एक उदाहरण दृष्टव्य है:

> राम कुछ मुस्कराकर एक बार प्रेमभरी दृष्टि से सीता की ओर देखते हैं, फिर वीर दर्प से राक्षसों की ओर दृष्टि फेर अपना धनुष चढ़ाते हैं। उस वीर दर्प में कितनी उमंग, कितना उत्साह, कितना माधुर्य रहा होगा। (90)

इस युग में जयशंकर प्रसाद के रूप में एक ऐसी अनुभूति का जन्म हुआ, जिसने कविता, कहानी, उपन्यास, ही नहीं निबंध लेखन में भी एक प्रतिमा का प्रदर्शन किया। इसे देखकर ही कुछ विद्वानों ने इस युग को 'प्रसाद युग' की संज्ञा प्रदान की। प्रसाद के निबंध *काव्य और कला तथा अन्य निबंध* और *चित्रकला* में संकलित हैं। इनके हिन्दी निबंधों में इतिहास और संस्कृति का तथ्यात्मक और विचार-प्रधान चित्रण हमें देखने को मिलता है। इस प्रकार कहा जा सकता है, प्रसाद प्राचीन साहित्य, दर्शन, भारतीय संस्कृति, इतिहास एवं भारतीयता के सशक्त निबंधकार या साहित्यकार हैं। बाबू गुलाबराय इस युग के प्रतिनिधि निबंधकार हैं, उन्होंने भी अपने निबंधों में धर्म, भक्ति और दर्शन पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। बाबू ने समीक्षात्मक, सैद्धान्तिक, विचारात्मक, मनोवैज्ञानिक, भावात्मक, वैयक्तिक, रजनीतिक और सामाजिक एवं हास्य-व्यंग्यात्मक आदि, विभिन्न विषयों पर निबंधों की रचना करके अपने विचार व्यक्त किये हैं। इनके कुछ निबंध-संग्रहों- *फिर निराशा क्यों, कुछ उथले कुछ गहरे, मेरे निबंध, मेरी असफलताएँ* आदि में व्यक्तिव्यंजकता एवं भावात्मकता की प्रधानता देखने को मिलती है। इनके कुछ और निबंधों में लोक संस्कृति और लोक विश्वाश एवं परम्पराओं का स्वरूप में चित्रण देखने को मिलता है। 'प्रीतिभोज' और 'ब्रज संस्कृति की विशेषताएँ' निबंधों में सांस्कृतिक चेतना देखने को मिलती है।

इस युग में पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी के निबंधों में उनका व्यक्तित्व प्रमुख देखने को मिलता है। *कुछ और कुछ, यात्रा, मेरा देश, पंचपात्र, बिखरे पन्ने* और *तुम्हारे लिए* आदि निबंध-संग्रहों में उनका व्यक्तित्व ही प्रकट होता है। बख्शी ने जीवन, धर्म, समाज और सहित्य पर, रोचक ढंग से निबंध लिखे हैं। *हिन्दी निबंध का अलोक शिखर* पुस्तक में डॉ. जयनाथ नलिन का मत है कि “कथात्मकता का इनके निबंधों में प्रधान्य है, पर विवरणात्मक वे नहीं है, विचारात्मक या भावात्मक ही हैं।”(160) डॉ. शिवदान सिंह चौहान ने भी अपनी पुस्तक *हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष* में ऐसा ही विचार व्यक्त किया है “इन निबंधों में चरित्र-चित्रण की विधि अपनाकर नाटकीय और रोचक शैली में साहित्य, धर्म, जीवन और समाज के प्रश्नों पर बख्शी ने आत्मीय ढंग से विचार किया है।”(203)

वासुदेवशरण अग्रवाल ने भी हिन्दी निबंधों की रचना की, उन्होंने *कला और संस्कृति* और *पृथ्वी-पुत्र* नामक निबंध संग्रहों की रचना करके, इनके माध्यम से साहित्य, दर्शन, कला, पुरातत्व, संस्कृति, और भारतीय इतिहास को पेश किया। इन्होंने भारतीय संस्कृति का गहन चित्रण किया, फिर भी इनके निबंध विचारात्मक निबंध ही कहे जाएँगे। *हिन्दी निबंध के अलोक शिखर* पुस्तक में डॉ. जयनाथ नलिन ने कहा है कि “अतीत के मंथन से, नवीन रस निकाल उसे वर्तमान को पिलाने की संजग चेष्टा अग्रवाल के निबंधों में मिलती है।”(161) शान्तिप्रिय द्विवेदी भी इस युग के सशक्त निबंधकार हैं, उन्होंने आलोचना के साथ साथ विचारात्मक निबंधों की रचना की है। *संचारिणी, साकल्य, सामयिकी,* और *युग और साहित्य,* आदि निबंध संग्रहों में इनका समीक्षक और आलोचक रूप होने के कारण, इनके यह निबंध विचारात्मक है। वैयक्तिकता और आत्मीयता के कारण, इनके निबंधों में आकर्षण और सरसता है। इस तरह भक्ति और दर्शन, कला और संस्कृति को लेकर, इन निबंधकारों

ने अपने विचारों को पाठकों के समक्ष जीवंत कर दिया है, जिनको पड़ने से ही हर एक घटना का दृश्य हमारे सामने प्रस्तुत हो जाता है।

इस युग के निबंधकारों में 'एक भारतीय आत्मा' के नाम से जाने वाले निबंधकार माखनलाल चतुर्वेदी का नाम आता है, जिन्होंने इस युग से लिखना प्रारम्भ किया और आगे तक लिखते रहे। उनके निबंध संग्रह- *उय्ग और कला, साहित्य देवता, रंगों की बोली, अमीर इरादे : गरीब इरादे,* आदि में भावात्मकता देखने को मिलती है। उनकी भावुकता में विचार खोए हुए प्रतीत होते हैं, इसी कारण कई बार पाठक को साहित्यकार की मूल बात को समझ पाना कठिन होता है। 'रंगों की होली' निबंध संग्रह में जीवन नाटक, मानव महान, समर्पण, धीरे-धीरे और वंदन आदि, इसी किस्म के निबंध हैं, जिनको समझ पाना पाठक के लिए आसान बात नहीं है या कहें कि साहित्यकार की मूल बात को पकड़ पाना आसान बात नहीं है। माखनलाल चतुर्वेदी के निबंध संग्रह *रंगों की होली* में संकलित निबंध 'वंदन' में उनका एक उदाहरण देखिये "अन्धकार घना। खजूर का झाड़, जिसके काँटे पत्ते, जिसके पत्ते काँटे, आकाश में आक्रमण का अन्धकार देख, सारे परिन्दे घोंसलों में जा छुपे।"(79) इन्हीं बातो के आधार पर 'हिन्दी निबंध' पुस्तक में प्रभाकर माचवे ने कहा है "भावात्मक गद्य लिखने की एक विशेष पद्धति एक भारतीय आत्मा ने हिन्दी में रूढ़ दी, बाद में वह गद्य-काव्य कहलाई।"(56)

डॉ. रघुवीर सिंह का निबंध गद्य उपर्युक्त गद्य-काव्य लेखकों से कुछ हटकर है। उनके निबंध संग्रहों *शेष-स्मृतियाँ* और *बिखरे चित्र* को देखने से साफ़ पता चलता है कि प्रसाद शैली में लिखित, उनके निबंधों में अन्य गद्य लेखकों की तरह आकुल आवेग की भावना प्रयुक्त नहीं है। इनके निबंधों में हमें इनकी भावुकता और मनोहारी भाषा शैली के दर्शन प्राप्त होते हैं। प्राचीन इतिहास की घटनाओं इमारतों आदि का पूर्वक वर्णन मिलता है, किन्तु अतीत की घटनाओं इतिहास के भावात्मक क्षणों के अतिरिक्त,

इनके हिन्दी निबंधों में विभिन्न विषयों की भावना देखने को मिलती है। इनके उपरान्त शिवपूजन सहाय ने भी इसी युग में लिखना प्रारम्भ कर दिया था। इनके निबंध संग्रह 'कुछ' में संकलित निबंधों में हमें इनके व्यक्तित्व इनकी भक्ति-भावना और उनकी भावुकता का पता चलता है। शुक्ल युग से लिखना प्रारम्भ करके आगे तक लिखते रहने वाले निबंधकारों में छायावादी युग के लगभग सभी कवि आते हैं। सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ने 'सरस्वती' में निबंध लेखन शुरू करते हुए, समन्वय और मतवाला को सम्पादित करके इन पत्रों में निबंध लिखे। इनके निबंध संग्रहों में राजनीतिक, सामाजिक, दार्शनिक और साहित्यिक विषयों पर हमें इनके निबंध देखने को मिलते हैं। इनके उपरांत सुमित्रानंदन पंत का नाम आता है, इनके निबंध 'शिल्प और दर्शन' और 'गद्यपथ' नामक कृतियों में संकलित हैं। भारतीय संस्कृति से इनका बहुत मोह था इसी के कारण इन्होंने साहित्य, कला और संस्कृति की समस्याओं पर विचार करते हुए, पंत ने अपनी रचनाएँ स्थापित की। वैयक्तिक, राष्ट्रीय और विश्व कल्याण की भावना भी पंत में देखने को मिलती है। उनके कला और संस्कृति निबंध में साहित्य सम्बन्धी प्रधानता देखने को मिलती है, उनकी साहित्य सम्बन्धी मान्यताएँ देखने से यह लगता है, वह आत्म-कथा चित्रित करते प्रतीत होते हैं। इस प्रकार हम देखते है कि धर्म, समाज और साहित्य पर, इनके अधिकतर निबंध विचारोतेजक हैं।

सियारामशरण गुप्त भी इस युग के महान निबंधकार हैं। *झूठा-सच* में इनके सभी निबंध संकलित हैं। 'घोड़ाशाही' इनका प्रसिद्ध निबंध, जिसमें उन्होंने इतिहास एवं अतीत को भी अपने निबंधों में प्रस्तुत किया। इनके निबंधों में कहीं तो भावुकता भी देखने को मिलती तो कहीं व्यंग्य भी देखने को मिलता है। *धन्यवाद* इनका इसी कोटि का निबंध हैं। उन्होंने अपने हिन्दी निबंधों के द्वारा पाठकों को समस्याओं से परिचित करवाया। *सियारामशरण गुप्त* पुस्तक में डॉ. नगेन्द्र ने इनके निबंधों के बारे में कहा है

“इनके निबंधों में व्यंग्य-विनोद के साथ ही तर्क का भी स्थान है। शब्द-चयन विषयानुकूल है और गम्भीर विचारात्मक निबंधों में भी विनोदपूर्ण तार्किक शैली का आधार लिया गया है। जो पाठक को प्रिय है।”(63) इन्होंने साहित्य और समाज की अनेक समस्याओं पर विनोदपूर्ण, सरल और आत्मीय ढंग से अपने निबंध लिखे हैं।

इस युग के अन्य निबंधकारों में पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र का नाम आता है, उनके निबंध भावात्मक किस्म के हैं। उन्होंने भी अपने निबंधों के द्वारा अपने पाठकों को साहित्य और समाज से जुडी समस्याओं के साथ परिचित करवाया है। कोई भी साहित्यकार जो रचता है, वह अपने समय की स्थितियों से प्रभावित होकर ही रचता है। इसी तरह इस युग के निबंधकारों ने भी अपने समय की समस्याओं को प्रस्तुत कर पाठकों को उनसे परिचित करवाया। अत: हम यह कह सकते हैं कि ‘शुकल युग’ में सभी कोटि के निबंध लिखे गये हैं। भावात्मकता के साथ-साथ इस युग में विचारात्मकता की प्रधानता भी हमें देखने को मिलती है। भारतीय संस्कृति को लेकर गहन आस्था भी इस युग में देखने को मिलती है, जो आगे चलकर शुक्लोतर युग में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, विद्यानिवास मिश्र और कुबेरनाथ राय के निबंधों में सतत बढ़ती रही है। शुक्लोतर युग में इन निबंधकारों ने इस परम्परा को आगे बढ़ाया और संस्कृति को लेकर अपने निबंधों में अपने विचार प्रकट किये।

2.3.2. सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक पक्ष

द्विवेदी युग के उपरान्त आचार्य शुक्ल ने द्विवेदी के संस्कारों, आदर्शों और परिष्कारों को लेकर शुक्ल युग का निर्माण कर हिन्दी साहित्य में अपना योगदान दिया। इस युग में निबंधकारों ने अपने विचारात्मक और भावात्मक निबंधों की रचना करके धर्म और राजनीति, संस्कृति, इतिहास, समाज, दर्शन, भक्ति आदि को लेकर अपने विचार व्यक्त किये हैं। इस युग के सभी प्रतिनिधि निबंधकारों ने अपने निबंधों

के द्वारा हिन्दी पाठकों को धार्मिक और राजनीतिक समस्याओं से परिचित करवाया है। आचार्य शुक्ल के निबंध विचारात्मक होते हुए भी व्यक्तित्व प्रधान हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबंध बहुत महत्वपूर्ण कोटि के हैं, उनके निबंधों से हिन्दी निबंध साहित्य में एक नई धारा का प्रारम्भ हुआ है। इस विषय में *हिन्दी निबंधकार* पुस्तक में डॉ. जयनाथ नलिन का कथन है "शुक्ल का एक-एक निबंध हिन्दी गद्य-शैली के विकास की शानदार मंजिल है, एक-एक पहरा प्रगति और प्रौढ़ता के पथ पर बढ़ता हुआ पग, एक-एक पंक्ति गम्भीर चिंतन की साँस और एक-एक शब्द अभिव्यंजना की सार्थकता"(150)

शुक्ल के निबंध चिन्तामणि भाग एक और भाग दो में संकलित हैं। इनके निबंधों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है। भाव या मनोविकार सम्बन्धी निबंध, साहित्य या सिद्धान्त सम्बन्धी निबंध और साहित्यलोचन निबंध। भाव या मनोविकार सम्बन्धी निबंधों में प्रमुख हैं 'भाव या मनोविकार', 'लज्जा और ग्लानि', 'उत्साह', 'करूणा', 'श्रद्धा-भक्ति', 'लोभ और प्रीति' 'घृणा' और 'ईर्ष्या' आदि। चिन्तामणि में संकलित उनके निबंध अधिकतर आलोचनात्मक लेख हैं। उनके इन निबंधों में हमें धार्मिकता और राजनीति देखने को मिलती है। शुक्ल के निबंधों की भाषा प्रांजल, प्रौढ़ और सुंदर है, जिसको आम पाठक भी अच्छी तरह समझ सकता है। शुक्ल ने अपने निबंधों में कई प्रकार की शैलियों का प्रयोग किया है, जिनमें प्रमुख रूप में समास और विवेचन शैली देखने को मिलती है। उनके निबंधों में हमें कहीं-कहीं व्यंग्य की फुहार भी देखने को मिलती है। शुक्ल के हिन्दी साहित्य में उच्चकोटि के विचारात्मक निबंध माने जाते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी निबंध साहित्य के और शुक्ल युग के सबसे प्रतिनिधि श्रेष्ठ निबंधकार और समीक्षक माने जाते हैं।

बाबू गुलाबराय हिन्दी के श्रेष्ठ निबंधकार और हिन्दी के प्रथम कोटि के आलोचक भी हैं। उन्होंने विभिन्न विषयों पर अपनी लेखनी चलाकर निबंधों में अपने विचार व्यक्त किये हैं। उन्होंने धर्म और राजनीति पर भी अपने निबंध लिखकर, उस समय की परिस्थितियों से हिन्दी पाठकों को परिचित करवाया। उनके प्रमुख निबंध संग्रह निम्नलिखित हैं- *ठलुआ क्लब, फिर निराशा क्यों, मेरी असफलताएँ, मन की बातें, प्रबंध-प्रभाकर, सिद्धान्त और अध्ययन, काव्य के रूप, साहित्य समीक्षा, मेरे निबंध* और *अध्ययन और आस्वाद* आदि हैं। इन निबंधों में उन्होंने विभिन्न समस्याओं को लेकर अपने निबंध रचे हैं। बाबू की भाषा की अगर हम बात करें तो बाबू के निबंधों की भाषा सरल एकदम सुबोध है। उन्होंने गम्भीर समस्याओं को लेकर भी अपने निबंधों की रचना की है, जिसमें उनकी भाषा भी गंभीर दिखाई देती है। बाबू के निबंधो में हास्य-व्यंग्य भी देखने को मिलता है, उनका व्यक्तित्व एकदम घुला-मिला हुआ प्रतीत होता है। उनकी भाषा के बारे में 'हिन्दी निबंधकार' पुस्तक में डॉ. जयनाथ नलिन का मत है "भाषा की स्वच्छता, विचारों की स्पष्टता, वाक्य विधान की सरलता और अभिव्यंजना की सुबोधता इनकी शैली के गुण हैं।"(142)

पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी आलोचक और निबंधकार के रूप में प्रतिष्ठित हैं। बख्शी ने अपने निबंधों में विभिन्न समस्याओं को लेकर अपने विचार प्रकट किये हैं। उनके निबंधों से हमें, उस समय की स्थितियों का ज्ञान होता है, उस समय धर्म और राजनीति को लेकर जो एक बुलबुले की तरह प्रश्न उठ रहे थे, उनका पता चलता है। धर्म के नाम पर क्या चल रहा था, उसका भी ज्ञान हमें होता है। बख्शी के प्रमुख निबंध संग्रह हैं- *साहित्य शिक्षा, हिन्दी साहित्य विमर्श, साहित्य चर्चा,* आदि हैं। 'पंचपात्र' और 'कुछ' इनके प्रमुख व्यक्तिव्यंजक निबंध हैं। शेष निबंधों में उनके अधिकतर विचारात्मक और आलोचनात्मक निबंध हैं। उन्होंने जीवन, साहित्य,

समाज तथा धर्म आदि को संदर्भित करते हुए रोचक और महत्वपूर्ण निबंध लिखे हैं। उनके विचारात्मक निबंधों में अधिकतर उनका व्यक्तित्व ही देखने को मिलता है। बख्शी ने संस्कृतनिष्ठ हिन्दी का ही अधिक प्रयोग किया है, और उनकी भाषा शुद्ध अधिकतर देखने को मिलती है।

इनके बाद सियारामशरण गुप्त का नाम आता है, उनका वैयक्तिक निबंधों के लिए विशिष्ट स्थान है। इनके निबंध 'झूठा-सच' में प्रकाशित है। इन्होंने भी अपने समय की स्थितियों को प्रकट किया है। डॉ. रामचन्द्र तिवारी ने अपनी पुस्तक *हिन्दी गद्य साहित्य* में कहा है "सियारामशरण गुप्त के निबंधों में उनकी आत्मा की आर्द्रता पूर्णत: प्रतिफलित है।"(66) उनका निज अपने निबंधों में परिलक्षित होता है। 'छुट्टी', 'हाँ', 'नहीं', 'मुंशी', 'झूठा-सच' आदि उनके महत्वपूर्ण और उल्लेखनीय निबंध हैं। *हिन्दी निबंध का विकास* पुस्तक में डॉ. ओंकारनाथ शर्मा ने इनकी भाषा शैली के बारे में कहा है "भाषा शैली की दृष्टि से सियारामशरण आडम्बर रहत सीधे सरल स्वभाव के हैं, उसी प्रकार निबंधों में भी निराडम्बर सीधे सरल तथा छोटे-छोटे वाक्य हैं।"(207) उन्होंने हिन्दी निबंध विकास में अपना योगदान देकर अपने विचार व्यक्त किये हैं, जिसमें उन्होंने हिन्दी पाठकों को उस समय की परिस्थितियों से परिचित करवाया।

माखनलाल चतुर्वेदी डी. लिट्.उपाधि से विभूषित, एक श्रेष्ठ कवि और आलोचक होने के साथ साथ पत्रकार और निबंधकार के रूप में जाने जाते हैं। उनके व्यक्तिव्यंजक और भावात्मक निबंधों में *साहित्य देवता* और *अमीर इरादे : गरीब इरादे* प्रमुख हैं। संस्कृति पर निबंधों में उन्होंने अपने भाव चिंतन मनन करके निबंध लिखे हैं और उनके निबंधों में अध्ययन भी लक्षित होता है। उनकी भाषा की अगर हम बात करें तो मधुर हिन्दी और कवित्वपूर्ण है। उनके निबंधों में आत्मीयता और लाक्षणिकता प्रमुख रूप से हमें देखने को मिलती है। डॉ. गंगा प्रसाद गुप्त ने इनके बारे में अपनी पुस्तक

हिन्दी निबंध और निबंधकार में लिखा है "व्यंग्य आत्मीयता, व्यक्ति की प्रधानता, अनुभूतिपूर्ण विचारों एवं भावों की अतिशयता, बातचीत का सा आनन्द, सरसता और सरलता आदि आपके निबंधों की विशेषताएँ हैं।"(171)

शिवपूजन सहाय भी हिन्दी निबंधकारों में से महत्वपूर्ण निबंधकार माने जाते हैं, सहाय को भाषा का जादूगर भी कहा जाता है। उन्होंने अधिक संख्या में निबंधों की रचना नहीं की है, फिर भी उनके निबंधों में आत्माभिव्यंजना, व्यंग्य और हास्य शैली के कारण, उनके निबंधों को विशेष स्थान प्राप्त है। उन्होंने कहीं अपने निबंधों में हास्य और व्यंग्य को लेकर संस्कृति पर व्यंग्य किया है, कहीं हास्य और आत्मा को लेकर भी समाज और धर्म और राजनीति पर गहरी चोट की है। 'मैं अंधी हूँ', 'मैं धोबी हूँ', 'मेरी रामकहानी' और 'एक अद्‌भुत कवि' आदि उनके श्रेष्ठ हिन्दी निबंध हैं। इनके उपरान्त महादेवी वर्मा का नाम आता है, उन्होंने भी अपने निबंधों के द्वारा हिन्दी निबंध साहित्य को योगदान दिया और अपने विचार व्यक्त किये हैं, महादेवी कवयित्री के अतिरिक्त संस्मरणात्मक निबंधो की लेखिका के रूप में भी प्रसिद्ध है। उन्होंने प्रमुख रूप में विचारात्मक निबंधों की रचना ही की है। *हिन्दी का गद्य साहित्य* पुस्तक में डॉ. रामचन्द्र तिवारी ने लिखा है कि "महादेवी वर्मा अलंकृत, भावमय, विचारपूर्ण एवं प्रांजल गद्य-रचना में अद्वितीय हैं।"(69) 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएँ' और 'श्रंखला की कड़ियाँ' आदि निबंध संग्रहों में उनके संस्मरणात्मक निबंध संगृहीत हैं। इनमें एक सर्वत्र लेखका का व्यक्तित्व विद्यमान है। उनके निबंधों की भाषा सरल है, किसी घटना, व्यक्ति और स्थल आदि का सव चित्रण, उनके निबंधों में देखने को मिलता है। डॉ. द्वारिकाप्रसाद सक्सेना ने अपनी पुस्तक *हिन्दी के प्रतिनिधि निबंधकार* में लिखा है कि "इन निबंधों में महादेवी के जीवन-दर्शन की व्यापकता, संस्कृत निष्ठा, अध्यात्मिक चिंतन से परिपूर्ण सौन्दर्य की आराधना, मानवता के प्रति सहज सहानुभूति एवं प्रेम बंधुत्व के प्रति सहज सनेह आदि का वर्चस्व विद्यमान है।"(311)

इन सभी के अतिरिक्त और भी शुक्ल युग के बहुत निबंधकार या साहित्यकार हुए हैं, जिन्होंने अपने निबंधों के द्वारा हिन्दी निबंध साहित्य और संस्कृति को लेकर अपने विचार व्यक्त किये हैं। किसी ने आत्मपरक किस्म के निबंधों की रचना की तो किसी ने विचारात्मक निबंधों की रचना की है। सभी ने अपनी लेखनी चलाकर हिन्दी निबंध साहित्य को बहुत प्रभावित किया और अपना खूब योगदान दिया है। अत: हम यही कह सकते हैं, शुक्ल युग के निबंधकारों ने अपने विचार अपने निबंधों में व्यक्त किये और वह इस युग के सफ़ल निबंधकार हैं। इस युग को हिन्दी निबंधों का स्वर्णकाल कहा जाता है। संस्कृति और कला के उपासकों ने इस युग को अपनी सशक्त लेखनी से समृद्ध बनाया है। इस युग के निबंधकारों ने तत्कालीन समस्याओं भारतीय संस्कृति के प्राचीन गौरव, इतिहास, पुरातत्व, कला, साहित्य, समाज, धर्म, राजनीति, मनोविज्ञान, दर्शन और जीवन के विविध पक्षों को विषय बनाते हुए, महत्वपूर्ण निबंधों की रचना की है। यह युग विचारात्मक निबंधों का ही युग है। आचार्य शुक्ल ने इस युग को विचारात्मक चरमोत्कर्ष पर पहुँचाया। इस युग में संस्मरणात्मक और हास्य-व्यंग्य निबंधों का भी विकास हुआ है।

2.4. शुक्लोतर युग के प्रमुख निबंधों में सांस्कृतिक चेतना

2.4.1.धर्म और नीति पक्ष

शुक्ल ने हिन्दी निबंध को जो नए आयाम दिए, उससे हिन्दी निबंध के परवर्ती काल में विविधमुखी विकास हुआ। विषय क्षेत्र, वैचारिकता, भाषा शैली सभी दृष्टियों से हिन्दी निबंध ने नई दिशाएं खोजी। इस काल में न केवल समीक्षात्मक और वैचारिक निबंधों की ही रचना हुई अपितु ललित निबंधों की भी पर्याप्त रचना हुई। शुक्लोतर निबंधकारों में प्रमुख आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, नन्ददुलारे वाजपेयी, डॉ. नगेन्द्र, रामधारी सिंह दिनकर, जयशंकर प्रसाद, इलाचन्द्र जोशी, जैनेन्द्र,

प्रभाकर माचवे, डॉ. भागीरथ मिश्र, डॉ. रामविलास शर्मा, डॉ. विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथ राय, देवेन्द्र सत्यार्थी, कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर आदि उल्लेखनीय हैं। इन निबंधकारों ने अपने समय की स्थितियों को पेश किया और अपनी लेखनी चलाकर, हिन्दी निबंधो के द्वारा अपने विचार व्यक्त किये हैं। उन्होंने भी अपने समय से प्रभावित होकर ही अपनी रचनाओं में उस समय की स्थिति को हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेई शुक्ल की परम्परा को आगे बढ़ाने वाले प्रमुख निबंधकार हैं। उनके निबंध *आधुनिक साहित्य, नया साहित्य, नए प्रश्न,* में संकलित हैं। वैयक्तिकता एवं विनोद की झलक भी उनके निबंधों में पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी शुक्लोतर युग के सर्वश्रेष्ठ निबंधकार माने जाते हैं। इनके प्रकाशित निबंध संग्रहों में *कल्पलता, अशोक के फूल, कुटज, विचार-प्रवाह, विचार और वितर्क* उल्लेखनीय हैं। इनके निबधों में विषय और व्यक्ति का सन्तुलित समन्वय तो है, साथ ही उनकी विद्धता एवं विषय की गहरी पकड़ भी परिलक्षित होती है। द्विवेदी के निबंधों का विषय क्षेत्र व्यापक है। उनमें संस्कृति एवं परम्परागत ज्ञान-विज्ञान के साथ-साथ, युगीन प्रवृतियों एवं समस्याओं को भी सम्मिलित किया गया है। द्विवेदी की शैली विषय के अनुरूप परवर्तित होती रही है। आधुनिक युग की विकृतियों का चित्रण करते समय वे प्राय हास्य व्यंग्यमयी शैली का प्रयोग करते हैं। जबकि कालिदासयुगीन वातावरण का चित्रण करते समय, शब्दावली संस्कृत गर्भित हो गई है। उनके निबंधों में भाषा की लय संस्कृत तत्सम शब्दों से गुम्फित पदावली के साथ-साथ विषयांतर एवं विभिन्न संदर्भ जुड़े हुए हैं। उन्होंने शोधपरक, समीक्षात्मक निबंध भी लिखे हैं और ललित निबंधों की रचना भी की है।

शान्तिप्रिय द्विवेदी शुक्लोतर युग के प्रमुख समीक्षात्मक निबंध लेखन के रूप में जाने जाते हैं। *संचारिणी, युग और साहित्य, धरातल, साकल्य* और *वृन्त और विकास* उनके प्रमुख निबंध संग्रह हैं। इनके निबंध संग्रहों का हिन्दी साहित्य में विशिष्ट स्थान है। शैली की दृष्टि से भी यह निबंध सरस और प्रभावोत्पादक हैं। हिन्दी से सुप्रसिद्ध कवि रामधारी सिंह दिनकर ने भी निबंध रचना में योगदान दिया है। उन्होंने भी अपने निबंधों में धर्म और राजनीति पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। 'अर्धनारीश्वर', 'हमारी सांस्कृतिक एकता', 'प्रसाद', 'पंत और मैथिलीशरण गुप्त', 'राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय साहित्य' इनके प्रमुख निबंध संग्रहों के नाम हैं।

डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने भी निबंधों की रचना की है। इनके निबंध पुरातत्व और भारतीय संस्कृति से सम्बन्धित हैं। *पृथ्वी पुत्र, मात्रभूमि* और *कला और संस्कृति* आदि उनके प्रमुख निबंध संग्रह हैं। इन निबंधों में एक और तो गंभीर अध्ययन की झलक मिलती है, तो दूसरी और चिंतन की मौलिकता एवं शैली की विशिष्टता भी झलकती है। डॉ. नगेन्द्र शुक्लोतर युग के अन्य प्रमुख निबंधकार हैं। उनके प्रमुख निबंध संग्रहों के नाम- *विचार और विवेचन, विचार और अनुभूति* और *विचार और विश्लेषण* आदि हैं। इनके निबंधों में विषय की प्रधानता है, तथापि उनमें लेखक के व्यक्तित्व का समावेश भी हुआ। गूढ़-गंभीर विषयों को इस प्रकार प्रस्तुत करना, जिससे पाठक की समझ में बात पूरी तरह आ जाए, डॉ. नगेन्द्र की यह प्रमुख विशेषता रही है। साहित्य और कला जैसे विषयों पर भी उनके निबंध संग्रह प्रकाशित हुए हैं। कला, कल्पना और साहित्य तथा साहित्य की झांकी आदि में उन्होंने उत्कृष्ट निबंध प्रस्तुत किये हैं। आलोचनात्मक निबंधों के लेखन में भी डॉ. नगेन्द्र ने असाधारण योगदान किया है।

डॉ. रामविलास शर्मा प्रगतिशील निबंधकार माने जाते हैं, जिन्होंने व्यंग्यपूर्ण शैली में गंभीर विचारों को निबंध का रूप दिया है। *प्रगति और परम्परा* और *प्रगतिशील*

साहित्य की समस्याओं में उन्होंने विषय का प्रतिपादन प्रगतिवादी दृष्टिकोण से किया है। साहित्य, कला, संस्कृति और राजनीति पर भी उन्होंने अपने विचार निबंध रूप में व्यक्त किये हैं। इन विषयों पर संकलित निबंध 'संस्कृति और साहित्य' और 'स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य' में संग्रहीत किये हैं। इनके अतिरिक्त भी इस काल में इस युग के महत्वपूर्ण निबंधकारों ने अपने निबंधों में अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। संस्मरण, रेखाचित्र आदि निबंध से मिलती-जुलती विधाओं में भी बहुत कुछ समग्री निबंध जैसी प्राप्त होती है। वस्तुत: वर्तमान युग समीक्षा का युग है। प्राय: सभी निबंधकारों ने समीक्षक की भूमिका का निर्वाह करते हुए निबंध लिखे हैं।

2.4.2. सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक पक्ष

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी

इस युग के प्रमुख और महान निबंधकार, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी सांस्कृतिक एवं ललित निबंधकार के रूप में माने जाते हैं। वह हिन्दी के महान गद्य लेखकों में से एक हैं। उनका अध्ययन क्षेत्र बहुत व्यापक एवं विशद था। उन्होंने सांस्कृतिक निबंधों की रचना करके हिन्दी साहित्य को एक नया आयाम दिया और हिन्दी पाठकों को अपने समय की समस्याओं से परिचित करवाया है। *हिन्दी निबंध साहित्य और आचार्य द्विवेदी* पुस्तक में प्रो. रमेशचन्द्र शाह कहते हैं:

> वह अपने ललित वाक्यों में विचार का भजीवन और भावना का विचार करते प्रतीत होते हैं। हृदय और बुद्धि की दो धाराएँ निर्विरोध बड़े सहज भाव से हिल-मिल कर एक दूसरे की ओर संयुक्त रूप से लेखक की कल्पना को अग्रसर करती प्रतीत होती है। (110)

हिन्दी और संस्कृत के महान आचार्य द्विवेदी एक उपन्यासकार, निबंधकार, समीक्षक के रूप में उनकी ख्याति रही है। उनके लिखे निबंध संकलन इस प्रकार है- *अशोक के फूल, कल्पलता, विचार और वितर्क, विचार प्रवाह, कुटज* और *अलोक पर्व* आदि हैं। इन निबंधों के अतिरिक्त आपने हिन्दी साहित्य की भूमिका, हिन्दी साहित्य का आदिकाल और हिन्दी साहित्य नामक आदि इतिहास सम्बन्धी ग्रन्थ लिखे। आपके आलोचनात्मक ग्रंथों में सूरदास, कबीर, नाथ सम्प्रदाय, कालिदास की लालित्य योजना, मृत्युंजय रवीन्द्र और साहित्य का धर्म नामक कृतियों के नाम लिए जा सकते हैं। धर्म एवं संस्कृति पर भी आपने लिखा है। प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, मध्यकालीन धर्म साधना और सहज साधना आपकी प्रमुख कला एवं धर्म सम्बन्धी कृतियां हैं।

ललित निबंधकार के रूप में भी द्विवेदी का नाम आदर से लिया जा सकता है। कुटज, शिरीष के फूल और अशोक के फूल आपके ऐसे ही निबंध हैं। आपकी विद्वता, लोकजीवन के प्रति आस्था एवं भारत की सांस्कृतिक विरासत, इन निबंधों में साफ़ झलकती है। द्विवेदी के निबंधों में पाण्डित्य साफ़ झलकता है। इतिहास, पुराण, साहित्य से गंभीर तथ्य उठाकर उन्हें समसामयिकता से जोड़ देना उनके निबंधों की विशेषता है। द्विवेदी की भाषा संस्कृतनिष्ठ हिन्दी है, जो अपनी समास बहुला प्रवृति के कारण कहीं-कहीं क्लिष्ट हो गई है। ललित निबंधों में वह विचारात्मक, व्याख्यात्मक और शोधपरक शैली का प्रयोग करते हैं। द्विवेदी आधुनिक काल के सर्वश्रेष्ठ निबंधकार माने जाते हैं। इस युग के व्यक्तिव्यंजक निबंधकारों में आचार्य द्विवेदी का स्थान बहुत ऊँचा माना जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के बाद आचार्य द्विवेदी ने हिन्दी निबंध साहित्य को एक नवीन दिशा देकर ऐतिहासिक कार्य किया है। द्विवेदी ने धर्म, साहित्य, दर्शन, भाषा, कला ज्योतिष, संस्कृति, जनजीवन, प्रकृति-सौन्दर्य, आदि विषयों पर अनेक निबंध लिखे हैं। गंभीर पाण्डित्य के साथ-साथ

सरलता, बोधगम्यता, सरसता, सवता और मौलिकता उनके निबंधों के प्रमुख गुण रहे हैं। इस तरह इनके बारे में यह कहा जा सकता है, द्विवेदी इस युग के महान और प्रतिनिधि निबंधकार हैं, उन्होंने जिस तरह अपने विचारों को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करना चाहा है, वह उसी तरह उनको प्रस्तुत करते हैं। धर्म, संस्कृति, राजनीति और कला से संबंधित उनके निबंधों में सांस्कृतिक पक्ष देखने को मिलता है। हिन्दी के सांस्कृतिक निबंधकारों में उनका स्थान सबसे पहले आता है, उन्होंने अपने निबंधों के द्वारा हिन्दी पाठकों को प्रभावित किया है और निबंध साहित्य के साथ जोड़ा है।

कुबेरनाथ राय

ललित निबंधकार के रूप में कुबेरनाथ राय का हिन्दी निबंध साहित्य में प्रमुख योगदान रहा है, वह इस युग के बड़े साहित्यकार के रूप में प्रस्तुत हैं। इनके प्रमुख निबंध हैं- *रस आखेटक, प्रिया नीलकंठी, विषादयोग, पर्ण मुकुट, लौह मृदंग, गन्धमादन, महाकवि की तर्जनी, कामधेनु* और *त्रेता का वृहद साम* आदि हैं। इन्होंने वर्णनात्मक और विवरणात्मक निबंध भी लिखे हैं। कुबेरनाथ की भाषा संस्कृतनिष्ठ तत्सम प्रधान शब्दावली से युक्त परिनिष्ठित, प्रांजल हिन्दी है। शब्द चयन में वह पर्याप्त सजग हैं, तथा लोकजीवन के शब्दों का प्रयोग भी निबंधों में करते हैं। कुबेरनाथ राय ने ग्रामीण संस्कृति, इतिहास, पुराण, धर्म और दर्शन आदि को हृदय की रागात्मक में रंग कर अपने निबंधों में स्थान दिया है। 1968 ई. में इन्होंने अपने पहले निबंध संकलन 'प्रिया नीलकंठी' से अपने निबंध साहित्य की यात्रा प्रारम्भ की। *रस आखेटक, प्रिया नीलकंठी, विषादयोग, पर्ण मुकुट, लौह मृदंग, गन्धमादन, महाकवि की तर्जनी, कामधेनु* और *त्रेता का वृहद साम* आदि निबंध संग्रहों में पौराणिक साहित्य एवं जीवन दर्शन, लोक जीवन एवं संस्कृति, इतिहास और साहित्य, धर्म और दर्शन के प्रति लेखक की गहन आस्था और लगाव देखने को मिलता है।

कुबेरनाथ राय के निबंध संग्रह *विषाद योग* के अनुसार- “संस्कृति की आधार-भूमि है गाँव। उन्हीं से प्रारम्भ होकर के मूलाधार से ही भारतीय संस्कृति का सृजन और पुनर्जागरण करना होगा।”(26) राय के निबंधों में चिंतन का गाम्भीर्य, आत्म व्यंजकता बहुलता, लोकजीवन की अभिव्यक्ति, रागात्मकता, बौद्धिकता आदि का समन्वय दिखाई पड़ता है। इन निबंधों के विषय लोक जीवन एवं लोक संस्कृति से लिए गये हैं। सामयिक युग चेतना भी इन निबंधों में अनिवार्य रूप से समाहित रहती है। कल्पना के बल पर वह सामान्य विषयों को भी भारतीय संस्कृति से सम्बद्ध कर देने में कुशल हैं। इनके निबंधों में समाज राजनीति का समसामयिक स्वरूप भी दिखाई देता है। अपनी बात को पुष्ट करने के लिए संस्कृत के उद्धरण वे प्राय: देते रहते हैं। कुबेरनाथ राय के निबंधों में परम्परा और आधुनिकता का समन्वय है। समकालीन लोकजीवन एवं ग्रामीण संस्कृति इनके निबंधों में देखी जा सकती है। हृदय और बुद्धि का समन्वय भी इनके निबंधों में स्थान-स्थान पर देखने को मिलता है। तत्सम भाषा, सुगठित वाक्य विन्यास, सामासिक पदावली, इनके निबंधों की प्रमुख विशेषताएँ हैं। आवश्यकतानुरूप शैली का स्वरूप आपके निबंधों में बदलता रहता है। *हिन्दी के प्रतिनिधि निबंधकार* पुस्तक में डॉ. द्वारिकाप्रसाद सक्सेना इनके निबंधों के बारे में कहते हैं:

> जिस प्रकार आपके ‘प्रिया नीलकंठी’ नामक पहले संग्रह ने साहित्यकाश में एक नए क्षितिज की संभावनाओं की ओर संकेत किया था, उसी तरह ‘रस आखेटक’ नामक दूसरे निबंध संग्रह ने एक सहज रसमयता की ओर इंगित किया तथा तीसरे ‘गंधमादन’ संग्रह ने संपूर्ण साहित्य कानन को कुसुमित अर्थ-पुष्पों की विविध गंधों से सुरभित बना दिया। (396)

इस प्रकार कहा जा सकता है कि राय के निबंधों में संस्कृति की गहन आस्था है। लेकिन उनकी जो दृष्टि है, वह आधुनिकतावादी है। भारतीय संस्कृति और भारतीय जीवन दर्शन को प्रस्तुत करने के लिए संस्कृति के मूल ग्रन्थ रामायण और महाभारत का जैसा मंथन इन्होनें किया, वैसा किसी भी और हिन्दी के निबंधकार ने नहीं किया। राय ने अपने निबंधों में जिस नूतन पद्धति को अपनाया है, उस पर भले ही पाश्चात्य तकनीक का प्रभाव हो, किन्तु उसमें गरिमा है, सौष्ठव है और रस बोध भी है। इनके निबंध व्यक्तिगत प्रधान निबंधों की श्रेणी में आते हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने निबंध की जिस परम्परा का सूत्रपात किया, उसके एक महत्वपूर्ण लेखक कुबेरनाथ राय हैं। आचार्य द्विवेदी ने अपने निबंधों में संस्कृति के वैविध्य एवं वैशिष्टय को अंकित किया। कुबेरनाथ राय ने भी संस्कृति और असंस्कृति के समान्तर समाज, धर्म, साहित्य, नैतिकता, कला और सौन्दर्य आदि का अतीत के गलियारे से गुजरते हुए वर्तमान संदर्भ में किया। उनके व्यक्तित्व को उन्मुक्त रूप से विवरण करने का अवसर निबंध में ही मिला। निबंधों में राय की मौलिक उद्भावनाएँ, नूतन दृष्टि, कल्पना आदि शैली के दर्शन होते हैं। 'रस आखेटक' में राय ने रस को नए धरातल पर प्रभाषित करने का प्रयास किया। *विषाद योग* में नई दिशा की खोज है। राय की निबंध यात्रा का एक लम्बा और सुखद इतिहास दिखाई देता है।

कुबेरनाथ राय एक ऐसे ललित निबंधकार हैं, वह संस्कृति और सभ्यता की जड़ों से लिपटे हुए हैं, वहीं उनके विचारों में पूर्णत: आधुनिकता का बोध होता है। राय के कई निबंध ऐतिहासिक तथ्यों का ज्ञान कराते हैं। लेखक ने भारतीय सभ्यता के साथ ही रोमन सभ्यता का विवेचन किया है। 'प्रिया नीलकंठी' में संकलित एक निबंध 'डूबता देवयान' में यूरोप के इतिहास का अंकन किया गया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ललित निबंध में एतिहासिकता की जो नींव डाली थी उसको राय ने

निरसंदेह आगे बढ़ाया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी से कुबेरनाथ राय ने कुछ अलग जो राह चुनी है, वह है शिल्प विन्यास। द्विवेदी में यहाँ खुलापन और फक्कड़ता थी, वहाँ राय में रसज्ञता है। भाषा और तकनीक के जरिये उन्होंने अपनी विशेष पहचान बनाई है। इस प्रकार राय का निबंधों के प्रति नया दृष्टिकोण है, जो परम्परा से अलग हटकर अपनी स्वतंत्र अस्मिता बनाये हुए हैं। परम्परा का पुनर्व्याख्या करते हैं और इस प्रकार आधुनिक मूल्यबोध को महत्व देते हुए भी सर्वथा नवीनता को अस्वीकार करते हैं। 'कुबेर' नाम अपनी अकिंचन अवस्था के कारण उन्होंने भले ही सार्थक न माना हो, पर वह विचार धन के कुबेर और लालित्य के नाथ हैं, अत: साहित्य के साधारण जन न होकर राय या राजा हैं, उन्हें अवश्य ही ललित निबंध लेखन का सम्राट कहा जा सकता है।

विद्यानिवास मिश्र

व्यक्तिव्यंजक निबंधकारों में विद्यानिवास मिश्र का महत्वपूर्ण स्थान है। भारतीय संस्कृति के प्रति उनकी आस्था एवं अद्भुत पाण्डित्य के साथ-साथ, भावुकता उनके निबंधों में स्थान-स्थान पर चलती है। एक ललित निबंधकार के रूप में भी मिश्र ने हिन्दी पाठकों पर अपनी अमिट छाप छोड़ी है। *छितवन की छांह, तुम चन्दन हम पानी, आंगन का पंछी और बंजारा मन, मैंने सिल पहुँचाई, वसन्त आ गया पर कोई उत्कंठा नहीं, मेरे राम का मुकुट भीग रहा है, हल्दी-दूब, कंटीले तारों के आर-पार* और *कौन तू फुलवा बीनन हारी* आदि इनके प्रमुख निबंध संकलन हैं। इनके अतिरिक्त आपने अनेक समीक्षा ग्रन्थ भी लिखे हैं- हिन्दी शब्द संपदा, पाणिनीय व्याकरण की विश्लेषण पद्धति, रीति विज्ञान आदि। मिश्र के निबंधों में लोक जीवन एवं ग्रामीण समाज मुखरित हो उठा है। किसी भी प्रसंग को लेकर वह उसे ऐतिहासिक, पौराणिक और साहित्यिक सन्दर्भों से युक्त कर लोकजीवन से जोड़ देने की कला से पारंगत हैं।

इनके निबंधों में लोकतत्व का समावेश है। विशेष रूप से भोजपुरी लोकजीवन उनके निबंधों में समाया हुआ है। आपके ललित निबंधों में भावात्मकता के साथ-साथ लोक संस्कृति की छटा विद्यमान हैं। इनके निबंधों में प्रसादमयी भाषा-शैली, कथात्मक चित्रों की अधिकता और विवेचना की तथ्यपूर्ण गम्भीरता दिखाई देती है। डॉ. अशोक तिवारी की पुस्तक *प्रतियोगिता साहित्य* के अनुसार:

> विद्यानिवास ने संस्कृत साहित्य को मथकर उसका नवनीत चखा है और लोकवाणी की गौरव गन्ध से सदा स्फूर्ति भी पाते रहे हैं। ललित निबंध वह लिखते हैं तो लालित्य के किसी मोह से नहीं, इसलिए कि गहरी, तीखी, चुनौती भरी बात भी एक बेलाग और निर्दोष बल्कि कौतुकभरी सहजता से कह जाते हैं। (322)

मिश्र के निबंधों को भावात्मक, विचारात्मक, समीक्षात्मक, वर्णनात्मक इन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। उनकी भाषा संस्कृतनिष्ठ हिन्दी है, किन्तु उसमें उर्दू, अंग्रेजी एवं ग्रामीण जीवन के शब्द भी मिलते हैं। शैली की विविधता उनके निबंधों में प्रमुख विशेषता है। आलंकारिक शैली, तरंग शैली, व्यंग्यपूर्ण शैली, व्याख्यात्मक शैली और आलोचनात्मक शैली उनके निबंधों में है। मिश्र ललित निबंधकारों में विशिष्ट स्थान के अधिकारी हैं। साहित्य के साथ-साथ भाषा विज्ञान के भी आप पण्डित हैं। उन्होंने आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की परम्परा को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। वह प्राचीन संस्कृत, साहित्य को समसामयिक दृष्टि से देखते हैं और उसमें से मानवता के मोती निकाल लाते हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के निबंधों का प्रभाव इनमें देखने को मिलता है। मिश्र ने अभिव्यक्ति का एकमात्र माध्यम निबंध साहित्य को ही अपनाया है। मिश्र भारतीय संस्कृति के प्रति आस्था और ममता रखते हैं। उनके समस्त निबंध स्वानुभूत चिंतन का दर्पण हैं। उनके निबंधों की रुचि भारतीय

संस्कृति और लोक जीवन में है। इसलिए उनकी रचनाओं में इनका विशिष्ट व्यक्तित्व दृष्टिगत होता है। मिश्र ने अपने निबंधों में राजनीति पर व्यंग्य किया है, इस तरह के विषय पर निबंधकार ने अपने ढंग से विचार किया है। इस तरह की उदाहरण मिश्र के निबंध *वसंत आ गया पर कोई उत्कंठा नहीं* में देखने को मिलती है:

> राजनीतिक साझेदारी का नया नक्शा बहुत ही बड़ी चुनौती है, यह दतों और विचारधाराओं की ही नहीं, हिन्दुस्तान के आदमी में विश्वास रखने वाले हर व्यक्ति की साझेदारी होगी, तभी टिकाऊ होगी और तभी कारगर होगी। राजनीति स्वत: गन्दी नहीं होती, वह जब रुद्ध हो जाती है, तभी गन्दी होती है। (32)

मिश्र के निबंधों में गद्य-काव्य का आभास होता है तथा हिन्दी में अभी तक भी ऐसे निबंध नहीं लिखे गए हैं, जो गंभीर तो हैं, साथ में कविता से भी इतने सराबोर हों। इसलिए वह समकालीन निबंधकारों से भिन्न हो जाते हैं। भाषा लेखक के व्यक्तित्व की पहचान कराती है। उसके बुद्धि पर्यवेक्षण का अंदाज देती है। मिश्र की भाषा ही पाठक को ब्रह्मांड के एक छोर से दूसरी छोर तक पहुंचाती है। भाषा सम्प्रेषण का श्रेष्ठ माध्यम है। इसके साथ ही भाषा विज्ञान और साहित्य चिंतन नई-पुरानी पद्धतियों से परिचित होने के कारण ही उन्हें इन क्षेत्रों में बाध्य होकर सोचना पड़ता है। अत: मिश्र के निबंधों में एक ओर सांस्कृतिक परम्परा का वर्चस्व है, तो दूसरी ओर नवीन जीवन समस्याओं का, वे आधुनिक साहित्य की प्रवृतियों से भी अच्छी तरह से परिचित हैं। लोकजीवन की सहजता तथा अक्षम सरसता का भी उन्होंने अनुभव किया। वह अंग्रेजी और ग्रीक साहित्य की श्रेष्ठ कृतियों से भी भलि भाँति परिचित हैं। अपने इस समग्र अध्ययन और अनुभव के साथ उन्होंने निबंध साहित्य को समृद्ध किया है। परम्परागत भारतीय जीवन की पद्धति आज बहुत बदल चुकी है, यह बदलाव

साहित्य के स्तर पर साफ लक्षित हो रहा है। इस बदलाव की समग्र अनुभूति ही उनके निबंधों की रचनाभूमि है।

डॉ. विवेकी राय

डॉ. विवेकी राय ने भी सांस्कृतिक निबंध लिखकर अपने समय की स्थितियों से हिन्दी पाठकों को परिचित करवाया है। उपन्यास, कहानी और रिपोर्ताज के अतिरिक्त, निबंध क्षेत्र में भी आपका अच्छा योगदान रहा है। इनके प्रमुख निबंध संग्रह- *किसानो का देश, गाँवों की दुनिया, त्रिधारा, फिर बैतलवा डाल पर, जुलूस रुका है* और *गँवई गंध गुलाब* आदि हैं। इनके निबंधों में आधुनिक जीवन की समस्याओं, उनका ग्रामीण जीवन पर प्रभाव, परम्पराओं एवं सांस्कृतिक मूल्यों का ह्रास और धर्म, राजनीति, कला और दर्शन आदि विषयों पर निबंध लिखे हैं। कोई भी साहित्यकार अपने समय से प्रभावित होकर ही रचना करता है। उसी तरह विवेकी राय ने भी अपने समय की स्थितियों को अपनी लेखनी का आधार बनाकर, अपने निबंधों में अपने विचार व्यक्त किये हैं। वह इस युग के प्रतिनिधि निबंधकार माने जाते हैं।

हरिशंकर परसाई

हिन्दी के श्रेष्ठ व्यंग्य निबंधकार हरिशंकर परसाई ने समाज, राजनीति, धर्म आदि सभी क्षेत्रों में व्याप्त विसंगतियों को अपनी व्यंग्य रचनाओं में व्यक्त किया है। सामाजिक विषयों पर लिखी गई उनकी व्यंग्य रचनाओं ने पाठकों को बहुत सोचने विचारने पर मजबूर किया है। परसाई हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ व्यंग्य लेखक माने जाते हैं। उन्होंने जीवन के जिन क्षेत्रों में भी विसंगतियां देखी, उन पर करारा प्रहार किया। इस प्रकार आपकी रचनाएँ एक ओर तो पाठकों का मनोरंजन करती हैं और दूसरी ओर सुधार के लिए वातावरण तैयार कर साहित्य की उपयोगिता को बढ़ाती हैं। इनके

प्रमुख निबंध संग्रह- *विकलांग श्रद्धा का दौर, सदाचार का तबीज, बेईमानी की परत, तब की बात और थी, ठिठुरता हुआ गणतन्त्र, वैष्णव की फिसलन, निठल्ले की कहानी, सुनो भाई साधो* और *भूत के पाँव पीछे* आदि हैं।

इनके निबंधों में बोलचाल के शब्दों, तत्सम शब्दों तथा विदेशी भाषा के शब्दों का प्रयोग हुआ है। परसाई ने समाज, राजनीति, धर्म के क्षेत्र में व्याप्त पाखण्ड पर करारी चोट की है। उनकी व्यंग्य रचनाएँ हिन्दी जगत में आदर से पढ़ी जाती हैं। समाज में व्याप्त विसंगतियों पर उन्होंने करारा प्रहार कर चेतना को झकझोरने का स्तुत्य प्रयास किया है।

निष्कर्ष

इन सभी मतों के परिशीलन के उपरान्त यही कहा जा सकता है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को ही हिन्दी निबंध का प्रवर्तक, जनक या उद्भावक मानने के पक्ष में अधिकतर विचारकों ने अपनी राय व्यक्त की है। भारतेन्दु ही हिन्दी निबंध के जनक हैं। भारतेन्दु ने अपनी लेखनी निबंधों पर चलाकर अपने परवर्ती निबंधकारों को भी निबंध लिखने के लिए प्रोत्साहित किया। भारतेन्दु युग से लेकर, शुक्लोतर युग के सभी निबंधकारों ने उन्हीं से प्रेरणा लेकर अपने समय की स्थितियों को प्रस्तुत किया। हिन्दी निबंध परम्परा को बताते हुए, यहाँ पर हिन्दी के प्रमुख निबंधों का संस्कृतिक पक्ष से अध्ययन किया और उसको यहाँ प्रस्तुत किया। पूर्व सम्बद्ध साहित्यावलोकन करने से हमें इससे पहले ऐसा कोई भी कार्य नहीं मिला है, प्रस्तुत अध्याय में आलोचनात्मक शोध प्रविधि, तुलनात्मक शोध प्रविधि और ऐतिहासिक शोध प्रविधि का प्रयोग करते हुए नवीन निष्कर्षों को प्राप्त किया गया है। प्रस्तुत अध्याय में शोध का प्रथम उद्देश्य पूरा हो रहा है।

हिन्दी की विकास यात्रा को इस अध्याय में प्रस्तुत किया गया है, साथ ही हिंदी के प्रमुख सांस्कृतिक निबंधों का अध्ययन करते हुए, हिंदी के प्रमुख निबंधकारों की आलोचना की गई है, जिससे निबंधकार की मनोभूमि का अच्छे से बोध होता है। उस समय और वर्तमान समय की तुलना भी की गई है, जिससे हमें आज के समय की समस्याओं का पता चलता है। जिनका निराकरण करना ही हमारा प्रमुख उद्देश्य है। भारतेन्दु से लेकर उनके सभी परवर्ती निबंधकारों ने अपने समय की समस्याओं को अपने निबंधों का आधार बनाया और वह इन समस्याओं का निराकरण करने के लिए सफल भी हुए हैं।

तृतीय अध्याय

21वीं सदी के हिन्दी निबंधों में सांस्कृतिक चेतना : भक्ति और दर्शन पक्ष

3.1. भक्ति और दर्शन का स्वरूप

3.2. ब्रह्म और जगत

3.3. माया और जीव

3.4. मोक्ष

3.5. वर्तमान काल में भक्ति चिन्तन

निष्कर्ष

3.1. भक्ति और दर्शन का स्वरूप

रामचन्द वर्मा के *मानक हिन्दी कोश* के अनुसार “भक्ति शब्द की व्युत्पति ‘भज’ धातु से हुई है, जिसका अर्थ है ‘सेवा करना’ या ‘भजन करना’ है।”(15) भक्ति से तात्पर्य है, अपने आराध्य के प्रति निष्ठा तथा विश्वाश। भक्ति भजन है, किसका भजन, ब्रह्म का, महान का। मानव चिरकाल से ही ब्रह्म में विश्वाश करता आया है। भक्ति साधन तथा साध्य द्विविध है। साधक साधन में ही जब रस लेने लगता है, उसके फलों की ओर से उदासीन हो जाता है। ईश्वर के प्रति जो परम प्रेम है, उसे ही भक्ति कहा जाता है। भारतीय धार्मिक साहित्य में भक्ति का उदय वैदिक काल से ही दिखाई पड़ता है। ईश्वर के प्रति प्रेम सेवा करना या भजन करना ही भक्ति है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल अपनी पुस्तक *चिन्तामणि (पहला भाग)* में भक्ति के बारे में कहते हैं “भक्ति का स्थान मानव-हृदय है, वहाँ श्रद्धा और प्रेम के संयोग से उसका प्रादुर्भाव होता है।”(38) वस्तुत: भक्ति मानव हृदय की श्रद्धा एवं प्रेम से युक्त भाव-भूमि है, जिसके अंतर्गत वह अपने ईष्ट के स्वरूप से अपना पूर्ण तादात्म्य स्थापित करता है। उपासना शब्द भी भक्ति के अर्थ में प्रयुक्त होता है, जिसका अर्थ है – निकट बैठना अर्थात मानसिक रूप से अपने इष्ट का सान्निध्य प्राप्त करना। “भक्ति में किसी ऐसे सान्निध्य की प्रवृति होती है, जिसके द्वारा हमारे महत्व के अनुकूल गति का प्रकार और प्रतिकूल गति का संकोच होता है।”(33)

इस प्रकार से भक्ति मनुष्य के राग-द्वेषों का परिमार्जन करती हुई, उसे निरन्तर उदात्तता की ओर अग्रसर किए रखती है। मानव के विचारों का उदातीकरण जितना अधिक होता जाता है, उतना ही मानव अधिक सुसंस्कृत होता जाता है। संस्कृत व्यक्ति ही अपने राष्ट्र को सांस्कृतिक गरिमा प्रदान करने में विशेष योगदान प्रदान करते हैं।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है, भक्ति संस्कृति का एक बहुत महत्वपूर्ण अंग है, इसको संस्कृति से अलग नहीं मानना चाहिए। भक्ति से ही चिरकाल समय में मानव को सही रास्ता दिखाया जाता था और मानव बुरे रास्ते पर नहीं चलता था। मानव ईश्वर की सच्ची भक्ति में विश्वाश करता है, सेवा करना और भजन करना मानव ने भक्ति से ही प्राप्त किया है। अपने से बड़ों की सेवा, अपने गुरु की सेवा करना, भक्ति से ही मानव ने प्राप्त किया है और अपने जीवन में उसने अच्छे संस्कार पैदा किये हैं।

दर्शन और संस्कृति का भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। डॉ. बलदेव उपाध्याय की पुस्तक *भारतीय दर्शन* के अनुसार –"दर्शन शब्द की व्युत्पति लभ्य अर्थ है – दृश्यते अनेन इति दर्शनम – जिसके द्वारा देखा जाए।"(5) अत: दर्शन शब्द का अर्थ है, दृष्टि या देखना, जिसके द्वारा देखा जाए, या जिसमें देखा जाए। देखने का स्थल साधन नेत्र हैं। नेत्र से तात्पर्य है, दृष्टि अर्थात जीवन एवं जगत के दृश्य एवं अदृश्य रूपों को अपनी दृष्टि के आधार पर देखना ही दर्शन है। विभिन्न दार्शनिकों के मत सदैव समान नहीं होते हैं। प्रत्येक मानव दृश्य या अदृश्य जगत-विषयक कतिपय श्रद्धाओं, विचारों तथा कल्पनाओं का एक समूह मात्र हैं। इस प्रकार प्रत्येक मनुष्य का दर्शन होता है, चाहे वह उसे जाने या न जाने। इस प्रकार दर्शन जीवन से पूर्णतया संपृक्त है।

भारतीय दर्शन पुस्तक में वाचस्पति गैरोला के अनुसार- "जीवन का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करना ही दर्शन का ध्येय है। जीवन से संबंधित जितने भी अध्यात्मिक और आधिभौतिक पदार्थ हैं, उनका तात्विक विश्लेषण करना भी दर्शन का कार्य हो जाता है।"(14) इसी तरह संस्कृति के साथ दर्शन भी जुड़ा हुआ है, संस्कृति का उद्देश्य होता है, मानव को पशुता से मनुष्यता की और अग्रसर करना। मानव जितना अधिक

संस्कृत होगा, उसकी अन्तर्दृष्टि उतनी ही अधिक स्वस्थ, संतुलित एवं उदात होगी, जिससे उच्च कोटि के दर्शन की रचना हो सकेगी, जो हमारे मानव जीवन को उत्कृष्ट बनाने में सफल होगी। हम यह कह सकते हैं, दर्शन संस्कृति का महत्वपूर्ण तत्व है। संस्कृति और दर्शन एक दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं, संस्कृति को देखने की जो हमारी दृष्टि है, उसी को दर्शन कह सकते हैं। इस तरह दर्शन और संस्कृति दोनों एक दूसरे के साथ जुड़े हैं और दोनों ही इसके महत्वपूर्ण अंग भी हैं।

दर्शन वह ज्ञान है, जो परम सत्य एवं प्रकृति के सिद्धांतों और उनके कारणों की विवेचना करता है। दर्शन यथार्थ की परख के लिए एक दृष्टिकोण है। दार्शनिक चिन्तन मूलत: जीवन की अर्थवता की खोज का पर्याय है। यह प्रकृति तथा समाज और मानव चिन्तन तथा संज्ञान की प्रक्रिया के सामान्य नियमों का विज्ञान है, दर्शन सामाजिक चेतना के रूपों में से एक है। अत: हम यही कह सकते हैं कि दर्शन उस विद्या का नाम है, जो सत्य एवं ज्ञान की खोज करता है। व्यापक अर्थ में दर्शन, तर्कपूर्ण, विधिपूर्वक एवं क्रमबद्ध विचार की कला है। इसका जन्म अनुभव एवं परिस्थिति के अनुसार होता है। यही कारण है कि समाज और संसार के भिन्न-भिन्न व्यक्तियों ने, समय-समय पर अपने अनुभवों एवं परिस्थितियों के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार के जीवन दर्शन को अपनाया है।

दर्शन विभिन्न विषयों का विश्लेषण है। मानव जीवन का मुख्य लक्ष्य यही रहा है, दुखों से छुटकारा प्राप्त करके चिर आनंद की प्राप्ति है। भारतीय दर्शनों का भी एक लक्ष्य है, दुखों के मूल कारण अज्ञान से मानव को मुक्ति दिलाकर, उसे मोक्ष की प्राप्ति करवाना है। अज्ञान एक परम्परावादी और रूढ़िवादी विचारों को नष्ट करके, सत्य

ज्ञान को प्राप्त करना ही जीवन का मुख्य उद्देश्य है। सनातन काल से ही मानव में जिज्ञासा और अन्वेषण की प्रवृति रही है। इस तरह हर एक समय की स्थितियों में मानव ने अपने अनुभवों के साथ भिन्न प्रकार के जीवन दर्शन को अपनाया है। इसी सत्य ज्ञान का नाम ही दर्शन है। इस तरह हर एक समय और समाज में उस समय की परिस्थितियों को लेकर, अपना दृष्टिकोण अलग होता है। पहले समय और वर्तमान समय में बहुत अंतर आ चुका है। 21वीं सदी के हिंदी निबंधों में निबंधकारों ने अपने समय की स्थितियों को प्रस्तुत किया है। जिनका अध्ययन करने पर, वर्तमान समय की एक-एक समस्या हमारे समक्ष जीवंत हो जाती है। वर्तमान समय बदलाव का समय है, हर एक समय में परिवर्तन आना संभव है। इसी तरह से वर्तमान समय में भी बहुत परिवर्तन आ चुका है। समय के साथ मानव आधुनिक होता गया और बाज़ारवाद ने मानव को अपनी लपेट में ले लिया। समय के साथ बदलाव आना बुरी बात नहीं है, हम जैसे पहले थे, आज भी वैसे ही रहें, ऐसी बात नहीं है, लेकिन इतना भी आधुनिक नहीं होना चाहिए हम अपनी संस्कृति, समाज को भूल जाएँ। बाज़ार मानव के द्वारा चलाये जाने वाली वस्तु है, लेकिन वर्तमान समय में मनुष्य का सब कुछ बाज़ार तय करता है और मानव को बाज़ार चला रहा है। इस तरह साहित्य के बिना दूसरा कोई उपादान नहीं है, जो इन समस्याओं का निराकरण कर सके। 21वीं सदी के निबंधों के द्वारा, वर्तमान में प्रचलित समस्याओं पर चर्चा करते हुए, इनके निराकरण के लिए सफल कार्य करने का प्रयास रहा है, जिससे आने वाले समय में हम इन समस्याओं से छुटकारा पा सकते हैं।

वर्तमान समय की स्थितियों को 21वीं सदी के निबंधकारों ने हमारे समक्ष प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है, जिसका अध्ययन करके हम इन समस्याओं से परिचित हो जाते हैं। भक्ति और दर्शन पर अध्ययन विवेचन करते हुए, नवीन निष्कर्षों

को प्राप्त करना ही हमारा प्रमुख लक्ष्य है, जिसे आने वाले समय में हम अपने जीवन में अपना कर एक अच्छा मानव जीवन बतीत कर सकते हैं। सेवा में प्रेम का भाव निहित रहता है और प्रेम की पूर्णता सेवा भाव में ही है। भक्ति का अर्थ भी होता है- सेवा, आराधना, श्रद्धा, अनुराग आदि। भक्ति के बिना किसी भी मनोरथ की प्राप्ति नहीं हो सकती, भागवत प्राप्ति भी भक्ति के बिना संभव नहीं होती। डॉ. मुंशीराम शर्मा इस सम्बन्ध में अपनी पुस्तक *भक्ति का विकास* में कहते हैं– "वैदिक साहित्य वेदत्रयी के नाम से प्रख्यात है, जो ज्ञान, धर्म एवं उपासना तीन मार्गों का निर्देश करता है, भक्ति तीनों मार्गों की पावन त्रिवेणी का संगम है।"(111-112) भक्ति स्वत: ही पूर्ण है। वह कर्मज्ञान आदि किसी भी अन्य साधन की अपेक्षा नहीं रखती। कर्म का मुख्य उद्देश्य वैयक्तिक सुख है।

3.2. ब्रह्म और जगत

वामन शिवराम आप्टे ने अपने *संस्कृत हिन्दी कोश* में कहा है "ब्रह्म शब्द का अर्थ ब्रह्मा, परमात्मा, मोक्ष, एवं निर्वाण है।"(721-722) रामचन्द वर्मा के *मानक हिन्दी कोश* के अनुसार "ब्रह्म शब्द बृह धातु से बना है, जिसका अर्थ है बढ़ना, फैलना, व्यास या विस्तृत होना।"(179) ब्रह्म परम तत्व है। ब्रह्म जगत्कारण है, यह वह तत्व है, जिससे सारा विश्व उत्पन्न होता है। जिसमें वह अंत में लीन हो जाता है और जिसमें वह जीवित रहता है। हिन्दू दर्शन पुराण और वेदों में मतभेद ईश्वर के होने या ना होने से नहीं है। मतभेद उनसे साकार या निराकार, सगुण या निर्गुण, स्वरूप को लेकर है। फिर भी ईश्वर की सत्ता में सभी विश्वास करते हैं। डॉ. राधाकृष्णन सर्वपल्ली ने अपने ग्रन्थ *भारतीय दर्शन (भाग-1)* में भी यही कहा है- "भारतीय व्याख्याकार 'ब्रह्म' का अर्थ बृंहण करते हैं, जिसका अर्थ वह यथार्थ सत्ता है, जो बढ़ती है, उच्छ्वास लेती है, या उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होती है।"(150)

ब्रह्म हिन्दू दर्शन में इस पूरे विश्व का परम सत्य है और जगत का सार है। वो दुनिया की आत्मा है, विश्व का कारण है, जिससे विश्व की उत्पति होती है, जिसमें विश्व आधारित होता है और अंत में जिसमें विलीन हो जाता है। वह स्वयं ही परमज्ञान है और प्रकाश-स्त्रोत की तरह रोशन है। ब्रह्म निराकार, अनन्त, नित्य और शाश्वत है, सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापी है। मनुष्य का जन्म होता है, तो जन्म क्षण में ही उसके हृदय में चैतन्य मन से होते हुए, अवचेतन मन से होते हुए, मस्तिष्क में चेतना प्रवेश करती है। वही आत्मा है और यही आत्मा किसी मनुष्य की मृत्यु हुई, तो उसकी चेतना अर्थात आत्मा अपने मन से होते हुए, अंतर्मन से होते हुए, अवचेतन मन से होते हुए, चैतन्य मन से होते हुए, दूसरे शरीर में अवचेतन मन से होते हुए, अंतर्मन से होते हुए, मन से होते हुए मस्तिष्क में पहुँचती है। यही क्रम हर जन्म में होता है।

जब मानव जागता है, तो उसके हृदय से ऊर्जाओं का विखंडन होता जाता है, सबसे पहले हृदय में प्राण शक्ति उत्पन्न होती है, जिसे ब्रह्म कहते है। मानव के मस्तिष्क में चेतना उत्पन्न हो जाती है, फिर उस चेतना से पंचमहाभूत बनते हैं, जिसे ज्योति स्वरूप ब्रह्म कहते हैं। जिससे सम्पूर्ण शरीर के होने का एहसास होता है, जिससे मनुष्य कर्म क्रिया प्रतिक्रिया करता है, ब्रह्म को मन से जानने की कोशिश करने पर मनुष्य योग माया वश, उसे परम ब्रह्म की परिकल्पना करता है और उसे संसार में खोजता है। अपर ब्रह्म जो प्राचीन स्थल की मूर्ति है, उसे माया वश ब्रह्म समझ लेता है। अगर कहा जाए तो ब्रह्म को जानने की कोशिश करने पर मनुष्य माया वश, उसे परमात्मा समझ लेता है।

संस्कृत भाषा में परम सत्य को 'ब्रह्म' का नाम दिया गया है। ब्रह्म परम सत्य का साकार रूप है। इस परम संभावना को ग्रहण करने में अगर जरा सी चूक हो जाए, तो

फिर भ्रम की स्थिति बन जाती है। इसलिए यह कहा जाता है कि अज्ञानता और ज्ञान में बस जरा सा फर्क है।

इसलिए विचारों के भटकाव से बचने के लिए और अपनी राह पर बने रहने के लिए, किसी भी तरह के धोखे से बचने के लिए, मानव में एक ख़ास तरह की अनासक्ति और निष्ठा होनी चाहिए। इसके लिए हमारे अन्दर एक सही तरह का माहौल बनाने में संस्कृति बहुत मदद कर सकती है। संस्कृति का मतलब यही है, संपूर्ण सृष्टि के प्रति पूरा जुनून, आस-पास के सभी जीवों के प्रति असीम करुणा और खुद को लेकर पूरी तरह से अनासक्ति का भाव होना। परन्तु वर्तमान में इनका उल्टा हो रहा है। वर्तमान में सभी अपने स्वार्थ के लिए काम करते हैं। किसी को संस्कृति के प्रति लगाव नहीं है।

> डॉ. सुधेश ने अपने निबंध *चिन्तन-अनुचिन्तन* में कहा है- पहले जैसी वीरता, एकता, भक्ति अब नई पीढ़ी में नहीं है। अब लोगों में खुद के प्रति पूरा जुनून, दूसरों के लिए अनासक्ति और ऊपर वाले के करुणा की उम्मीद करते हैं। यही फर्क है ब्रह्म और भ्रम में। बस थोड़ी सी चूक हुई और समस्या खड़ी हो गई। (66)

अगर हम अपने आस-पास का माहौल सही तरीके से तैयार कर लेते हैं, तो हमें जो दीक्षा दी गई है, हमारे पास जो ज्ञान है, वह चाहे कितना भी मामूली क्यों ना हो, वह भी बेहतरीन तरीके से काम करेगा। अगर ऐसा नहीं होता, तो सही वस्तु भी बुरी होती रहेगी। हो सकता है हम जो कर रहे हैं, वह बहुत अच्छा है, लेकिन अगर माहौल अच्छा नहीं है, तो वह सभ भी व्यर्थ होता रहेगा। इसलिए हमारा कहने का तात्पर्य यही है, सबसे पहले हमें अपने आस-पास के वातावरण को अच्छा बनाना होगा।

> कैलाश वाजपेयी के निबंध *है कुछ, दीखे और* के अनुसार- ब्रह्म ही इस जगत की निर्मिति का मूल कारण है और वही इसका उपादान कारण भी। इसी की

प्रतिक्रिया के रूप में विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत, द्वैत एवं वल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैत आदि सिद्धांत सामने आये। (93)

बनारसी (ब्राह्मण) तप करता है और तीर्थ में मरने के लिए जाता है, परन्तु उससे क्या होता है, अवश्मेध यज्ञ किया, दान में सोना दिया, लेकिन रामजी की भक्ति तो डूबकर नहीं की। ओ पाखंडी इन सभ में क्या रखा है, कपट न कर निरन्तर हरि का नाम ले। यही नाम तुझे संसार सागर से पार लगाएगा। (100)

आज के सम्प्रदायग्रस्त युग में ऐसी कृति खोज पाना मुश्किल है, जो सम्प्रदायातीत हो पूर्णत या निरपेक्ष हो और सर्वकालिक गुत्थियों को अत्यधिक विविक्त ढंग से सुलझाकर पाठको को विभोर करने वाली हो। हम सब अपना जीवन या तो यादों में जीते हैं, या फिर वादों में। हम दिन और रात औरों पर टिप्पणी करने में लीन रहते हैं। हमें स्वयं अपना निरीक्षण करने का वक्त नहीं है। जबकि होना ऐसा चाहिए, हमें दूसरों पर टिप्पणी करने से पहले अपने आप पर भी चर्चा की जानी चाहिए, अपने पर भी ध्यान देना चाहिए। वर्तमान में मनुष्य बड़े-बड़े सिद्धांतों पर और बड़ी-बड़ी बातों पर, चर्चा अधिक करता है। छोटी-छोटी बुराइयों पर ध्यान कम देता है। दो लोग आपस में मिलते हैं, तो दूसरों की निन्दा शुरू हो जाती है। यही वर्तमान समय की सबसे बड़ी समस्या है। आज मानव को अपने जीवन की चिंता कम है, लेकिन दूसरे के जीवन की अधिक है, क्योंकि अपने सुख में वर्तमान मानव सुखी नहीं रहता, जितना दूसरों के सुख से दुखी रहता है। यह आज के मानव की हीन भावना है, जो उसे नीचा दिखाती है। सभी लोग अपने स्वार्थ में लगे हुए हैं। किसी को अपने देश या राष्ट्र से कुच्छ लेना देना नहीं है। जबकि पहले समय में वीर लोगों ने देश के लिए अपने प्राण निछावर कर दिए थे, उनके लिए देश ही सब कुछ है। वर्तमान पीढ़ी में यह भावना कम देखने को मिलती है। वर्तमान में यही सबसे बड़ा बदलाव आ चुका है। जिसको

आज समझने-समझाने की आवश्यकता है, तांकि आने वाली पीढ़ी, इन बातों से अवगत हो सके और देश प्रेम की भावना उनमें पैदा हो सके।

3.3. माया और जीव

वामन शिवराम आप्टे के *संस्कृत हिन्दी कोश* के अनुसार- "माया का काम है मोहित करना, माया का अर्थ केवल धन से नहीं होता, बल्कि जिस चीज में हमारा मन अटकता है, वही हमारे लिए माया है।"(99) जैसे किसी का मन धन में अटकता है, किसी का भोग में, किसी का रूप में, किसी का शब्द में, किसी का स्वाद में, किसी का दुष्ट कर्मों में, किसी का अपने में और किसी का अपने वालों में आदि-आदि, स्थानों या किसी एक स्थान पर भी यदि मन अटक जाता है, तो वही उसके लिए माया है। मन के माया में आते ही हमारी ऊर्जा बाहर की तरफ बहने लगती है। जिससे आत्मा का ज्ञान नष्ट हो जाता है और व्यक्ति संसार में बंधने वाले दुष्ट कर्म करने लगता है, जिससे मूढ़ता को प्राप्त हो जाता है।

गुण माया को प्रकृति माया भी कहते हैं। गुण माया यह भगवान की शक्ति है, यह भगवान की शक्ति पाकर अपना काम करती है। हम जीव (आत्मा) की शक्ति वाले हैं, हमारी शक्ति भगवान की शक्ति से कम है। इसीलिए माया को हम नहीं हटा सकते। इसीलिए हमें केवल भगवान की शरण में जाना होता है। यह माया का प्रभाव हमारे मन पर होता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, घृणा, ईर्ष्या, द्वेष एवं भह, यह योग माया के कारण हम पर हावी हैं। वैसे तो जीव माया भी भगवान की शक्ति है। लेकिन गुण माया जिसे योग माया कहते हैं, यह भगवान की अंतरंग शक्ति है। अगर हम बहुत संक्षेप में माया के बारे में कहें तो हर वह चीज जो हम सुनते हैं, स्पर्श करते हैं, सोचते हैं, देखते हैं, बोलते हैं, सब माया है।

माया शब्द का प्रयोग एक से अधिक अर्थों में होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि विचार में परिवर्तन के साथ शब्द का अर्थ बदलता गया। जब हम किसी चकित कर देने वाली घटना को देखते हैं, तो उसे ईश्वर की माया कह देते हैं। यहाँ माया का अर्थ शक्ति है। जादूगर अपनी चतुराई से पदार्थों को विपरीत रूप में दिखाता है, पदार्थों के अभाव में भी उन्हें दिखा देता है। यह उसकी माया है। यहाँ का अर्थ मिथ्या ज्ञान या ऐसे ज्ञान का विषय है। मिथ्या ज्ञान दो प्रकार का है- भ्रम और मतिभ्रम। भ्रम में ज्ञान का विषय विद्यमान है, परंतु वास्तविक रूप में दिखता नहीं, मतिभ्रम में बाहर कुछ होता ही नहीं, हम कल्पना को प्रत्यक्ष ज्ञान समझ लेते हैं।

भारतीय जीवन में दार्शनिक से लेकर सामान्य जन तक 'माया' शब्द का प्रयोग बड़े परिचित अंदाज में करता है। भारतीय जनमानस में माया के अनेक अर्थ प्रचलित हैं- अज्ञान, आभास, धोखा, जादूगरी, धूर्तता, जादू-टोना, इंद्रजाल इत्यादि। वास्तव में 'माया' संस्कृत भाषा का एक सारगर्भित शब्द है। पूरे विश्व में इस शब्द का पर्याय नहीं है। यह माया शब्द 'मा' धातु से बना है। जो नापा जाता है, वह माया है। इस प्रकार माया एक मानदण्ड है। इस तरह हम यह कह सकते हैं, माया का अर्थ है, जो मोह को प्राप्त करता है। यह केवल धन को प्राप्त करना माया नहीं है। किसी भी रूप में हो सकता है धन, भोग, बुरे कर्म, किसी स्वाद के लिए भी हो सकता है। माया मानव को अपनी तरफ आकर्षित करती है। जिसमें मानव जल्दी ही मोहित हो जाता है, यही तो माया है। वर्तमान में भी यह समस्या प्रचलित है। मानव जीवन आधुनिक होता जा रहा है। जिसके कारण मानव माया और मोह में अधिकतर फंसता जा रहा है। इसी तरह वर्तमान समय में इन बातों पर विचार-विमर्श करने और समझने-समझाने की जरुरत है, तांकि आने वाली पीढ़ी को इन समस्याओं से बचाया जा सके। वर्तमान के हिन्दी निबंधों में भी निबंधकारों ने अपने निबंधों में इन सब की ओर ईशारा किया है।

जिनका अध्ययन करने से हमें वर्तमान समस्याओं का परिचय मिलता है और एक नई चेतना भी पैदा होती है। साहित्य इन समस्याओं का निराकरण करने के लिए सबसे बड़ा साधन है। साहित्य में ही मानव का जन्म होता है।

माया को परतंत्र माना गया है, जबकि प्रकृति को स्वतंत्र। माया का आश्रय ब्रह्म या जीव होता है, परंतु प्रकृति को अपने अस्तित्व के लिए किसी दूसरी सत्ता की अपेक्षा नहीं करनी पड़ती। प्रकृति यथार्थ है, जबकि माया अयथार्थ है। वर्तमान में हर मानव इसी माया के मोह में ही घूम रहा है। माया ने जैसे उसे बंधी बना लिया है। मानव को आज माया तय करती है। क्या करना है, कहाँ जाना है, सभ माया के द्वारा नियत हो रहा है। इसी कारण मनुष्य अपनी अस्मिता खो बैठता है। वर्तमान जीवन विसंगतियों से भरा दिखाई देता है। समय के साथ आधुनिक होना बुरी बात नहीं है, लेकिन इतना भी आधुनिक नहीं होना चाहिए मानव अपनी अस्मिता को भूल जाए। हमें अच्छे जीवन के लिए आधुनिक भी होना पड़ता है। ऐसा नहीं है, हम सौ वर्ष पहले जैसे थे वैसे ही रहें, समय के साथ अच्छा जीवन हर मानव चाहता है। लेकिन सोच-समझकर ही आधुनिक होना चाहिए तांकि हमारी संस्कृति और संस्कार भी वैसे ही बने रहें।

> कैलाश वाजपेयी के निबंध संग्रह *है कुछ, दीखें और* में संकलित निबंध 'माया अजेय है' के अनुसार- यह गुणमयी देवी दुरत्यया माया मेरी है। यह माया क्योंकि गुणमयी है, इसलिए हर कोई उससे मोहित होता है। इसी माया की अचिंत्य शक्ति से लोग मुझे यानी मूल को भूल गये हैं और ब्याज को ही सब कुछ मान बैठे हैं।"(194)

कुछ समय के लिए ब्रह्म जैसे भारी भरकम शब्द को भूल जाएँ, और यह मानें अपने सौरमंडल के आगे दूर-दूर तक किसी नियम से बंधा एक अछूता सम्प्रत्यय है,

जिसे परमसत्ता कहा जा सकता है। उसी परमसत्ता के अधीन अपना सौरमंडल है, जिसका ध्रुव केन्द्र अपना सूर्य है। यह सूर्य अक्षय ऊर्जा के कारण पृथ्वी पर उगते और मुरझाते हैं। यहाँ यह बात का ज्ञान होना आवश्यक बात है, इसे अपर प्रकृति नाम से पुकारा जाता है, जबकि परा प्रकृति पूरे खगोल में व्याप्त परमसत्ता है। हम जिस अपरा सत्ता के अधीन हैं, उसमें तीन मौलिक गुण घुले-मिले हैं, इन गुणों को सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण कहते हैं। जब हम शांत एवं स्वस्थ अर्थात स्वयं में स्थित होते हैं, तब हमारे भीतर सतोगुण काम कर रहा होता है। जब हम किसी को प्रभावित करना अथवा किसी अन्य को आतंकित करना चाह रहे होते हैं, तो हमें रजोगुण आन्दोलित कर रहा होता है और जब कभी हम क्रोध में आकर हिंसक हो उठते हैं, तब हम तमोगुण की गिरफ्त में होते हैं।

कोई भी मानव कभी भी किसी एक स्थिति में नहीं होता और न ही रह सकता है, न ही हम सदैव शांत रह पाते हैं, और न ही हम हर समय क्रोध में होते हैं। इसलिए हमें यह मान लेने में कोई उलझन नहीं होनी चाहिए कि हम इन तीन गुणों का समुच्चय हैं और हम यदि चाहें भी तो इन तीन गुणों से पार नहीं जा सकते। क्योंकि जो अपरा प्रकृति बाहर काम कर रही है, वही हमारे भीतर भी यही काम करने में व्यस्त हैं। यदि परमसत्ता के अतिरिक्त कहीं कुछ नहीं तो यह तीन गुण आये कहाँ से और उनमें मोहित होने वाले जीव कहाँ से आये, इसके बारे में हम यही कह सकते हैं, परम सत्ता पहले स्वयं मोहित हुई और तब उसी ने हम सबको मोहित किया। इस सामूहिक सम्मोहन को नाम मिला 'माया'। पूरा दोष माया का भी नहीं है, मानव के भीतर लगातार उत्पात करने वाली उस कल्पना का भी दोष है, जो परम सत्ता की तस्वीर बनी, इस माया को असल मान बैठी है और समस्त भूमंडल को नाच नचा रही है। इस तरह हम यह कह सकते हैं कि माया के जाल में मानव वर्तमान में अधिक फंसता जा रहा है। माया के प्रति मोह वर्तमान समय में देखने को मिल रहा है। हर एक आदमी

माया के पीछे दौड़ रहा है। इसी कारण ही मानव का ध्यान दूसरी वस्तुओं जिनमें उसका स्वार्थ है, उसी तरफ केवल आकर्षित हो रहा है। यही कारण है कि आज हमारी पीढ़ी अपनी अस्मिता को भूल रही है और केवल अपने स्वार्थ के लिए काम कर रही है। श्रीराम परिहार अपने निबंध संग्रह *परम्परा का पुनराख्यान* में कहते हैं- "मोह, काम, क्रोध, स्वार्थ, बाज़ारवाद ने वर्तमान समय में सभी को अपनी तरफ आकर्षित किया है। यह सभी माया के ही अंग है। केवल माया ही नहीं स्वार्थ, मोह, भोग, दुष्ट कर्म यह भी माया ही है।"(36)

मानव जो है, वहीं नहीं रहना चाहता वह किसी न किसी खोज में लगा ही रहता है, प्रकृति के द्वारा दिए गये साधनों से संतुष्ट न रहकर, अपने जीवन को और सुखद बनाने के लिए नित्य नवींन प्रयास करता है। आदमी अपने अधूरेपन से अवगत है, इसीलिए पूर्णता चाहता है। उसे प्रारम्भ से ही अमरत्व की तलाश है। वह यह तो जानता है कि भूख से उसका कोई छुटकारा नहीं है, इसलिए वह काम करता है। मगर इस प्रक्रिया में उसके भीतर बार-बार यह प्रश्न घूमता है कि वह जीवन किसलिए धारण किये हैं। यही चेतना मानव को कुछ नया करने के लिए सुचेत करती है। लेकिन इस चपेट में मानव यह भी भूल जाता है कि उसकी संस्कृति और प्रकृति को कोई क्षति पहुँच रही है या नहीं। ऐसा नहीं है, हम सौ वर्ष पहले जैसे थे, आज भी वैसे ही रहें, बदलाव आना बुरी बात नहीं है, लेकिन ऐसा भी नहीं है कि हम अपने जीवन की अच्छी तलाश में यह भी भूल जाएँ, हम अपनी अस्मिता को खो रहे हैं। इस तरह मानव इस माया में फस जाता है। डॉ. सुधेश के निबंध *चिन्तन-अनुचिन्तन* के अनुसार- "केवल धन के लिए काम करने से ही माया का प्रयोग नहीं होगा, किसी भी स्वार्थ के लिए जब हम काम करते हैं, तो हम माया के जाल में फस जाते हैं।"(65)

केवल धन, स्वार्थ और मोह से हमें अमरता प्राप्त नहीं होती, यह सब तो केवल हम अपने लिए करते हैं, सच्चा देशभक्त वही है, जो सभी के लिए सोचता है, देश के लिए सोचता है, खुद जागृत होता है और अपने ज्ञान से सभी को जागृत करता है। कैलाश वाजपेयी के निबंध 'धन से अमरता नहीं मिलती' में संकलित एक उदाहरण में वृद्धावस्था में एक बार महर्षि ने अपनी दोनों पत्नियों से कहा:

> अब मैं संन्यास लूँगा तुम मीर सम्पति को आपस में बाँट लो तो मैत्रेयी ने कहा आप जो धन मुझे देंगे उससे क्या ईश्वर मिलेगा, क्या मुझे धन से अमरता मिलेगी, याज्ञवल्क्य का दो टूक उतर पूरी पूँजीवादी सभ्यता पर एक थप्पड़ की तरह आज तक प्रतिध्वनित हो रहा है। याज्ञवल्क्य का उतर था धन से अमरता मिलने की कोई आशा नहीं। (179)

माया का काम है, फंसाना चाहे वह किसी भी रूप में मानव को आकर्षित करती है। तब से ही हमारी ऊर्जा बाहरी वस्तुओं के प्रति बढ़ने लगती है और हमारा ज्ञान नष्ट होने लगता है। माया किसी भी रूप में हमें आकर्षित कर सकती है। अधिकतर लोग माया केवल धन को ही मान लेते हैं, लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है। किसी वस्तु, भोग, दुष्ट कर्म, किसी स्वाद के प्रति आकर्षित होना भी तो माया है। वर्तमान में यह समस्या बहुत अधिक प्रचलित है। इसी समस्या का हमारी भक्ति और दर्शन पर भी प्रभाव पड़ रहा है। जिसको हम हिन्दी निबंधों के द्वारा प्रस्तुत कर रहे हैं तांकि यह समस्याओं के बारे में आने वाले समय में हम सुचेत हो जाएँ और इन समस्याओं से छुटकारा पा सकें। जब तक हम इन बातों पर चर्चा करते हुए इनको नहीं समझ पाते तब तक इन समस्याओं से छुटकारा पाना असंभव है। इसलिए यहाँ माया को लेकर हमारा उद्देश्य यही है कि माया क्या है और इनसे कैसे बचा जा सकता है। 21वीं सदी के निबंधों में निबंधकारों ने माया के प्रति अपने विचार हमारे समक्ष प्रस्तुत किये,

जिनका अध्ययन करते हुए हम उनके भावों और विचारों को यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं, तांकि इन बातों का ज्ञान आने वाले समय में सभी को मिले। साहित्य से हम ज्ञान प्राप्त करते हैं, साहित्य बहुत बड़ा उपादान है, जो इन समस्याओं का निराकरण कर सकता है। यह भक्ति और दर्शन के प्रमुख तत्व है, माया और जीव। इन बातों से यदि मानव को छुटकारा मिलेगा तभी तो हमारी दृष्टि देश के प्रति और राष्ट के प्रति जागरुक होगी। ज्ञान वह है, जो सभी में बाँटा जाए तभी तो हम जागृत होंगे। इस तरह हमें माया के जाल से निकलना है, तभी हम अच्छा जीवन बतीत कर सकते हैं।

3.4. मोक्ष

रामचन्द्र वर्मा के *मानक हिन्दी कोश* के अनुसार – "मोक्ष का अर्थ होता है मुक्ति।"(99) लेकिन अधिकतर लोग यह समझते हैं कि मोक्ष का अर्थ जीवन-मरण के चक्र से मुक्ति है। कुछ लोगों का यह मानना है कि अच्छे कर्म करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। कुछ कहते हैं कि मोक्ष के बाद व्यक्ति शून्य हो जाता है, अंधकार में लीन हो जाता है, या संसार से अलग हो जाता है। मोक्ष एक ऐसी दशा है, जिसे मनोदशा नहीं कह सकते। इस दशा में न मृत्यु का भय होता है, न संसार की चिंता। सिर्फ परम आनंद, परम होश, परम शक्तिशाली होने का अनुभव। इसी में परम शक्तिशाली होने का बोध छुपा है, जहाँ न भूख है, न प्यास, न सुख, न दुःख, न अन्धकार, न प्रकाश, न जन्म है, न मरण और न किसी का प्रभाव। हर तरह के बंधन से मुक्ति ही मोक्ष है। केवल जन्म और मरण से मुक्ति ही मोक्ष नहीं है। ध्यान को छोडकर अभी तक कोई ऐसा मार्ग नहीं खोजा गया है, जिससे समाधि या मोक्ष पाया जा सके। लोग भक्ति की बात आवश्य करते हैं, लेकिन भक्ति भी ध्यान का एक प्रकार है।

डॉ. रमाशंकर त्रिपाठी की पुस्तक *भारतीय दर्शन का परिशलन* के अनुसार- "मोक्ष शब्द की व्युत्पति मुच धातु से त्यागना अर्थ में हुई है। इसी कारण ,मोक्ष का अर्थ मृत्यु से लिया जाता है। किन्तु दर्शन शास्त्र इससे नितांत पृथक परम शांति और आनंद की अवस्था को मोक्ष कहता है।"(03)

मोक्ष का अर्थ छुटकारा पाना होता है। अध्यासजन्य मिथ्याबंधन से छुटकारा पाने का नाम मुक्ति है। मोक्ष का अर्थ जन्म और मरण के चक्र से मुक्ति के अतिरिक्त सर्वशक्तिमान बन जाना है। प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी प्रकार की मुक्ति चाहता है, बंधनों से मुक्ति या दुखों से मुक्ति, जेल से मुक्ति या दवाखाने से मुक्ति, परेशानी से मुक्ति या दिमागी उलझनों से मुक्ति। मनुष्य होने का मतलब यह है कि हम लोग पशु या पक्षी की योनी से मुक्त हैं।

भक्ति : भक्ति भी मुक्ति का एक मार्ग है। भक्ति भी कई प्रकार की होती है। इसमें श्रवण, भजन-कीर्तन, नाम जप स्मरण, मंत्र जप, पाद सेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य, पूजा-आरती, प्रार्थना आदि शामिल है। इस तरह यह भी मानव मुक्ति के लिए ही करता है। भक्ति मुक्ति का एक मार्ग है।

योग : योग अर्थात मोक्ष के मार्ग की सीढ़ियाँ, पहली यम, दूसरी नियम, तीसरी आसन मुद्रा, चौथी प्राणयाम क्रिया, पांचवी प्रत्याहार, छठी धारणा, सातवीं ध्यान, आठवीं और अंतिम समाधि अर्थात मोक्ष।

ध्यान : ध्यान का अर्थ शरीर और मन तन्द्रा को छोडकर होश्पूर्ण हो जाना। ध्यान कई प्रकार से किया जाता है। इसका उद्देश्य साखीभाव में स्थित होकर मोक्ष को प्राप्त करना होता है। ध्यान जैसे-जैसे गहराता है, व्यक्ति वैसे ही साखीभाव में स्थित होने लगता है।

तंत्र : मोक्ष प्राप्ति का तांत्रिक मार्ग भी है। इसका अर्थ है कि किसी वस्तु को बलपूर्वक हासिल करना। तंत्र भोग से मोक्ष की ओर गमन है। इस मार्ग में कई तरह की साधनाओं का उल्लेख मिलता है। तंत्र मार्ग को वाममार्ग भी कहते हैं। इसको गलत अर्थों में नहीं लेना चाहिए।

ज्ञान : साक्षीभाव द्वारा विशुद्ध आत्मा का ज्ञान प्राप्त करना ही ज्ञान मार्ग है। ईश्वर, जीवन, ब्रह्मांड, आत्मा, जन्म और मरण आदि के प्रश्नों से उपजे मानसिक द्वन्द्व को एक तरफ रखकर निर्विचार को ही महत्व देंगे, तो साक्षीभाव उत्पन्न होगा। वेद, उपनिषद और गीता के श्लोकों का अर्थ समझे बिना यह संभव नहीं है।

कर्म और आचरण : कर्मों में कुशलता लाना सहज योग है। इनका पालन करके कोई भी मानव अपने जीवन में सुख और जीवन के बाद मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

सत्य, सच्चाई और मोक्ष

जीवन में सत्य का बहुत महत्व है। हम उन्हीं व्यक्तियों को पसंद करते हैं, जो सदैव सत्य बोलते हैं। झूठे और मक्कार लोगों को कोई पसंद नहीं करता। हमारे देश का कानून भी सत्य पर ही अपना फैसला देता है, जब किसी बात पर विवाद होता हो अदालत में जज भी यही पूछता है कि सत्य क्या है, इसलिए सत्य का हमारे जीवन में बहुत महत्व है। शास्त्रों में कहा गया है कि सत्य का मार्ग धर्म का मार्ग होता है। महाभारत के युद्ध में पांडवों की जीत इसलिए हुई थी क्योंकि वह सत्य का मार्ग अपना रहे थे। सत्य का मार्ग धर्म का मार्ग कहा जाता है, इसे अपना कर जीत प्राप्त की जा सकती है। सत्य सदैव कड़वा होता है, कुछ लोग तो सत्य देखना ही नहीं चाहते वह तो बस अँधेरे में जीना चाहते हैं। वर्तमान में ऐसा ही होता है, किसी को सत्य नहीं देखना है। एक पिता या भाई को अपनी बहन की शादी अच्छे घर में करनी होती है, जिसके लिए उसे

दहेज देना होता है, यह सत्य है, लड़के वाले खुशी-खुशी दहेज प्राप्त कर लेते हैं। लेकिन जब उनको अपने लड़की की शादी करनी होती है, तो वह दहेज़ की निंदा करते हैं, यह भी सच है। सभी को अपना स्वार्थ देखना है, किसी को सत्य से मतलब नहीं है। इसी कारण हम वर्तमान में बहुत सी समस्याओं में घिरे हुए हैं। इन समस्याओं से छुटकारा पाया जा सके तांकि आने वाले समय में हम इन समस्याओं से बच सके। हमें केवल स्वार्थ को लेकर नहीं चलना होगा सत्य और सच्चाई का मार्ग अपनाना होगा, इसी से मोक्ष की प्राप्ति भी होती है।

बहुत बार व्यक्ति इतना भ्रमित हो जाता है, वह सत्य की पहचान तक नहीं कर पाता। जब उसे असफलता और भटकाव महसूस होता है, तब वह सत्य की पहचान कर पाता है। जो लोग ईमानदार हैं, वह सदैव सत्य बोलते हैं। जो लोग झूठे, बेईमान और मक्कार होते हैं, हमें ऐसे मक्कार और झूठे लोगो से बचना है, जो अपने स्वार्थ के लिए असत्य बोलते हैं। सत्य का साथ देना बहुत कठिन है। व्यक्ति अनेक बन्धनों में बंधा होता है। वीर पुरुष लोग ही सत्य के मार्ग पर चल पाते हैं। यह मार्ग इतना कठिन है कि हर किसी के बस की बात नहीं है, इस मार्ग पर चल पाना। लेकिन हमें ज्यादा से ज्यादा कोशिश सत्य पर चलने की करनी चाहिए, तभी हम मोक्ष की प्राप्ति कर सकते हैं। सत्य के मार्ग पर चलकर व्यक्ति को आत्म संतुष्टि मिलती है और मोक्ष और यश प्राप्त होता है।

3.5. वर्तमान काल में भक्ति चिन्तन

वर्तमान में हमारी एकता, हमारी देश-भक्ति और हमारी संस्कृति, सभ्यता, संस्कारों को कुछ पहलुओं ने प्रभावित किया है। प्राचीन समय में हमें अपनी एकता पर गर्व होता था, यही बात हमें अन्य देशों से भिन्न करती है और लोग हमारी एकता

को देखने के लिए प्रसन्न हुआ करते थे। लेकिन आधुनिक समय में कुछ लोगों ने अपने स्वार्थ के लिए, हमारी एकता को नष्ट किया है।

अंग्रेजों ने भारत में एकछत्र राज्य करने के लिए, सबसे पहले यहाँ की एकता पर प्रहार किया, क्योंकि कोई भी शासक अपना प्रभुत्व जमाने के लिए जनता में एकता नहीं चाहता। इसलिए अंग्रेजों ने 'फूट डालो राज करो' की प्रबल नीति अपनाई, जिसके कारण वह सैंकड़ों वर्षों तक भारत में सशक्त शासक बने रहे। जिसका परिणाम यह हुआ कि भारत में धर्मों वह जातियों तथा वर्गों के आधार पर कलह दंगे भड़कते रहते हैं। वे कभी किसी एक धर्म के लोगों को संरक्षण देते और दूसरे को तंग करते तो कभी दूसरे धर्मों के लोगों को प्रोत्साहित करते, जिससे जनता परस्पर लड़ती रहे। भारत का विभाजन होना अंग्रेजों की नीति थी, इस तरह उन्होंने हमारी एकता और अखंडता को तोडा था। आज के समय में भारत में सम्प्रदायिक दंगे होते रहते हैं। एक धर्म के लोग दूसरे धर्म के लोगों से लड़ते रहते हैं। देश में कई जगह पर वर्ग संघर्ष छिड़ा रहता है।

वर्तमान समय में आरक्षण और अनारक्षण पर लड़ाई-झगड़ा चलता रहता है। वर्तमान में मानव अपने स्वार्थ को लेकर चलता है, इसी कारण से आज हमारी एकता, भक्ति, संस्कृति, समाज को क्षति पहुँच रही है। युवा पीढ़ी में पहले जैसी एकता और भक्ति आज नहीं मिल रही, आज व्यक्ति अपने आप में अस्त-व्यस्त होता जा रहा है। आज इन बातों पर विचार-विमर्श करने की जरुरत है और नई पीढ़ी को यह बातों को समझने-समझाने की आवश्यकता है। भाषा के आधार पर भी कई जगह झगड़ा होता रहता है। दक्षिण में हिन्दी के विरोध में सरकारी संपति को क्षति पहुँचाई जाती है। उतर भारत में अंग्रेजी का प्रबल विरोध है। कहीं पर उर्दू का विरोध हुआ, तो कहीं पर हिन्दी का, इस तरह राष्ट्रीय एकता खतरे में पड़ी है। राष्ट्रीय अखंडता भी

विगत दशकों से संकट में पड़ी है। कुछ आतंकवादी अलग जगह चाहते हैं। कश्मीर के आतंकवादी कश्मीर की मांग कर रहे हैं। कुछ समय से अब पूरे भारत में हिन्दू आतंकवाद ने भी अपने पूरे पैर फैलाकर हमारी सरकार को परेशान कर दिया है। इस तरह कतिपय स्वार्थी तत्व भारत को छिन्न-छिन्न कर देना चाहते हैं। इस संदर्भ में राम प्रसाद किचलू ने अपनी पुस्तक *आधुनिक निबंध* में कहा है:

> प्रश्न यह है कि आखिर जम्मू-कश्मीर की समस्या का वर्तमान स्थितियों में क्या समाधान हो सकता है। इस सम्बन्ध में एक दो बातें कही जा सकती है। हमारे देश में ऐसे स्वप्रदर्शियों की कमी नहीं है, जो भारत पाकिस्तान और बंगला देश को मिला कर एक महासंघ बनाने की बात करते हैं। और यह निरा स्वप्न भी नहीं है। कैबिनेट मिशन ने भी, जिसके प्रस्तावों के आधार पर भारत का विभाजन हुआ, कश्मीर को लेकर ऐसे महासंघ की बात उठाई थी। आगे के वर्षों में जब सुरक्षा परिषद में जाकर जम्मू-कश्मीर का मामला सुलझता गया तब पंडित नेहरू को भी लगने लगा था कि भारत, कश्मीर, पूर्वी और पश्चिमी पाकिस्तान को मिलाकर एक महासंघ बना लेना ही इस उप महाद्वीप के झगड़ों का आदर्श समाधान है। (335)

देश और राष्ट्र में अंतर होता है। देश का सम्बन्ध सीमाओं से होता है क्योंकि देश एक निश्चित सीमा से घिरा हुआ होता है। राष्ट्र का सम्बन्ध भावनाओं से होता है, क्योंकि एक राष्ट्र का निर्माण देश के लोगों की भावनाओं से होता है। जब तक किसी देश के वासियों की विचारधारा एक नहीं होती, तब तक वह राष्ट्र कहलाने का हकदार नहीं होता। हमारे यहाँ आज तक शासकों ने अपने स्वार्थों की वजह से इस देश को राष्ट्र नहीं बनने दिया है। आज राजनैतिक नेताओं ने अपनी दलगत राजनीति की वजह से देश को राष्ट्र बनाने में बाधा उत्पन्न की है। वोट प्राप्त करने के लिए सभी

धर्मों, जातियों और भाषाओं की संकीर्ण धाराओं में बाँट दिया है। अभी देश के नेताओं, अधिकारी व जनता में राष्ट्रीय भावना जाग्रत नहीं हुई है। वे पहले कोई ओर होते हैं, बाद में भारतीय होते हैं। जब कोई भी व्यक्ति सत्ता में आता है, तो वह अपने वहाँ के वर्ग का समर्थन करते हुए दिखाई देता है। वोटों की राजनीति सभी धर्मों को लड़ाने का काम करती है।

इसी कारण से नेताओं की तुष्टिकरण की नीति देश को राष्ट्र बनाने से रोक रही है। आज देश के लोग ही संविधान के प्रति जल रहे हैं। कहीं-कहीं पर राष्ट्र ध्वज को जलाने और उसे फाड़ने के समाचारों को भी सुना जाता है। जब राष्ट्रीय गीत गाया जाता है, उस समय खड़े ना रहना एक साधारण सी बात बन गई है। इन सभी गलतियों के लिए दंडों को निर्धारित किया गया है, लेकिन दंड दिया नहीं जाता है। यही है नेताओं की तुष्टिकरण की नीति। इसी वजह से देशद्रोहियों को अक्सर बढ़ावा मिलता है। आज के समय में देश में देश-द्रोहियों, राजनेताओं को बहुत अधिक प्रोत्साहन मिलता है। इसी वजह से सभी में राष्ट्रीय भावना का आभाव बढ़ता ही जा रहा है। जिसकी वजह से देश की एकता और अखंडता खतरे में पड़ रही है। देश में भृष्टाचार, बेईमानी, अनाचार, धोखाधड़ी उच्च स्तर पर छाए हुए हैं।

स्वतंत्रता प्राप्त होने के बाद ही देश में अनेक समस्याएँ उत्पन्न होती रही हैं। इन समस्याओं में से साम्प्रदायिक की समस्या सबसे प्रमुख समस्या है। हमारे देश का विभाजन भी इसी समस्या के आधार पर ही हुआ है। कुछ स्वार्थी लोगों ने हमारे देश में साम्प्रदायिकता की भावना को फैला दिया था, जिसकी वजह से हम आज तक हम उससे मुक्त नहीं हो पाए हैं। हमें अपनी स्वतंत्रता की रक्षा के लिए और प्रगति के लिए, राष्ट्रीय-एकता पर विशेष ध्यान देना चाहिए। हर वर्ग में एकता के बिना कोई भी देश

उन्नति नहीं कर सकता। वर्तमान समय में देश में अनुशासन और आपसी वातावरण की बहुत जरूरत है। हमें सभी को मिलजुल कर इस पर विचार करना चाहिए।

कुछ सालों से हमारे देश का वातावरण दूषित राजनीति की वजह से विषैला होता जा रहा है। धर्म में अंधे होने के कारण लोग आपस में झगड़ रहे हैं। अपने-अपने स्वार्थों की पूर्ती में लगे हुए लोग आपसी प्रेम को निरंतर भूलते जा रहे हैं। स्वार्थ की भावनाओं, प्रांतीयता एवं भाषावाद की वजह से राष्ट्रीय भावना बहुत प्रभावित हो रही है। हमारे देश के लोगों में संकीर्णता की भावना पनप रही है और व्यापक दृष्टिकोण लुप्त होता जा रहा है। इसी वजह से विश्व बंधुत्व की भावना अपने परिवार तक ही सीमत होकर रह गई है। अगर कोई कोशिश भी करता है, तो वह प्रदेश स्तर तक जाकर ही असफल हो जाता है। इसी के फलस्वरूप सम्प्रदायिक ताकतें मजबूत होती जा रही हैं।

कुछ प्रदेशों में नरसंहार के किस्से सुनने को मिलते हैं। इन सब के लिए स्वार्थ नेता जिम्मेदार हैं, जो अपना उल्लू सीधा करने के लिए देश को दाँव पर लगा रहे हैं। अनेक प्रकार की विषमताओं के होते हुए भी जब हम राष्ट्रीय एकता के बारे में सोचते हैं, तो हमें पता चलता है कि इस राष्ट्रीय एकता की वजह से धार्मिक भावना, आध्यात्मिकता, समन्वय की भावना, दार्शनिक दृष्टिकोण, साहित्य, संगीत और नृत्य आदि ऐसे अनेक तत्व है, जो देश को एकता के सूत्र में बांधे हुए हैं। सिर्फ जनता को एकजुट होकर कोशिश करने की जरूरत है। आज के समय में राष्ट्रीय एकता के लिए व्यक्तिगत और सार्वजनिक संपति की सुरक्षा का प्रबंध करना जरूरी है। शत्रुपक्ष पर कठोर दंडनीति लागू की जानी चाहिए। पुलिस की गतिविधियों पर भी नियंत्रण रखना चाहिए। आज के समय में सभी संगठनों को मिलजुल कर राष्ट्रीय एकता के लिए कोशिश करनी चाहिए। हमारी स्वतंत्रता राष्ट्रीय एकता पर निर्भर करती है।

इसी तरह सभी को एकजुट होकर राष्ट्रीय एकता के लिए काम करने की वर्तमान में आवश्यकता है। एकता होगी तो हमारी आने वाली पीढ़ी अपना जीवन अच्छे ढंग से बतीत कर सकती है।

भारतीय संस्कृति भावात्मक एकता का आधार है, लेकिन बहुत बार राजनीतिक स्वार्थ, अस्पर्श्यता, सम्प्रदायिक तनाव, भाषा भेद, क्षेत्रीय मोह तथा जातिवाद आदि की संकीर्णता की भावनाओं से प्रबल होने पर, हमारी भावात्मक एकता को खतरा पैदा हो जाता है। कुछ लोग वर्तमान में नेताओं से गुमराह होकर अपने छोटे-छोटे स्वार्थों के लिए अपने अलग-अलग रास्ते मांगने लगते हैं। राजनीतिक दलबंदी में आकर उनके यह स्वार्थ कई बार बहुत भयंकर रूप धारण कर लेते हैं। राष्ट्रीय एकता के लिए भावात्मक एकता का होना बहुत आवश्यक है। वर्तमान में हमें सभी लोगों को एकसाथ मिलजुल कर राष्ट्रीय एकता के लिए विचार-विमर्श करने की बहुत आवश्यकता है।

वर्तमान में भावात्मक एकता के लिए भारत सरकार को अच्छे कदम उठाने की जरूरत है, जिससे आने वाले समय में इन समस्याओं से बचा जा सके और हम एक अच्छे राष्ट्र पर वैसे ही गर्व महसूस करे जैसे प्राचीन काल में हमें अपनी राष्ट्रीय एकता पर गर्व था। वर्तमान में भारतीय सरकार को भावात्मक एकता के लिए राष्ट्रीय शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिए। चल-चित्र, दूरदर्शन, सोशल नेटवर्क आज के समय में राष्ट्रीय एकता के लिए महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर सकते हैं। सामूहिक खेल-कूद, सांस्कृतिक कार्यक्रम तथा धार्मिक और शैक्षिक यात्राएँ भी राष्ट्रीय-एकता के लिए सहायक हो सकती हैं। आधुनिक निबंधों में भी लेखकों ने एकता के लिए अपनी लेखनी में विचार व्यक्त किये हैं, जिससे हम इनका अध्ययन करके आने वाले समय में इन समस्याओं से बच सकते हैं।

हृदय परिवर्तन और सद्भावना वातावरण बनाने की बहुत जरूरत है। वास्तव में पूछा जाय तो सभी धर्म एक है, पूजा की विधियाँ भिन्न-भिन्न हैं। इसी भिन्नता की वजह से एक ही धर्म के भिन्न-भिन्न रूप होते हैं। हमारे देश में लोग धर्म के नाम पर कुछ लोग स्वार्थ की पूर्ति करने के लिए, अनेक लोगों की शक्ति का दुरपयोग करके राष्ट्रीय-भावना का हनन कर रहे हैं। इस तरह निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि किसी भी देश की रक्षा और प्रगति देश की एकता और अखंडता पर निर्भर करती है। हमारे देश में जब तक उच्च स्तर पर राष्ट्रीय भावना नहीं आती, तब तक राष्ट्रीय एकता भी नहीं आती। भारत देश को सबल बनाने के लिए साम्प्रदायिक सद्भाव बनाय रखने की जरूरत है। हमें यह बात अच्छे से पता है कि प्रेम से प्रेम और नफरत से नफरत उत्पन्न होती है। हमारा रास्ता प्रेम और अहिंसा का होना चाहिए। नफरत और हिंसा सब तरह की बुराइयों की जड़ होती है। सभी धर्मों में सत्य, प्रेम, समता, सदाचार और नैतिकता का पाठ विस्मरण होता है। प्रार्थना और आराधना की पद्धति अलग हो सकती है लेकिन उनके लक्ष्य एक ही होते हैं। मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे, और चर्चा सभी धार्मिक सथल एक ही संदेश देते हैं। इसी तरह हम सभी लोगों को चाहिए हम एकता के लिए साथ मिलजुल कर कार्य करे, तांकि हमारी भारतीय एकता वैसी ही बनी रहे, जैसे पुरातन समय में थी। हमें आज भी वैसे ही अपनी संस्कृति और सभ्यता पर गर्व होना चाहिए, जो बात हमें अन्य देशों से अलग करती है। इस तरह हमें वर्तमान निबंधों में भी अध्ययन करने पर यही शिक्षा मिलती है कि हमें राष्ट्रीय एकता बनाई रखनी चाहिए।

निष्कर्ष

वर्तमान में कुछ ऐसी स्थितियाँ पैदा हुई हैं, जिसके कारण आज भक्ति और दर्शन का स्वरूप बदल चुका है, इसमें बदलाव आ चुका है। इन स्थितियों को पैदा भी मानव

ने ही किया है। अपने स्वार्थ के लिए केवल काम करना, केवल मात्र धन और अपने जीवन के प्रति अधिक आधुनिक होना ही इसका प्रमुख कारण है। इस तरह वर्तमान में निबंधों का अध्ययन करके, इन समस्याओं पर विचार-विमर्श करके इनके निराकरण करने के लिए कार्य किया गया है। निबंधकारों ने अपने समय की स्थितियों को अपनी लेखनी में व्यक्त किया है और वर्तमान की समस्याओं से छुटकारा पाने के लिए यह बहुत बड़ा उपादान है। साहित्य से हमें बहुत ज्ञान प्राप्त होता है। जिससे हम अपने समाज में एक अच्छे जीवन का निर्माण करते हैं। और यह सफल भी होता है, क्योंकि हम ज्ञान साहित्य से प्राप्त करते हैं।

शोध के उद्देश्य को पूरा करते हुए, 21वीं सदी के हिन्दी निबंधकारों द्वारा किये गये प्रयासों को यहाँ स्पष्ट किया गया है और समय के साथ प्रत्यावर्तित स्वरूप को दर्शाया गया है, जिससे हमें वर्तमान में प्रचलित समस्याओं का ज्ञान भी मिलता है और उनको समझने की दृष्टि भी मिलती है। प्रस्तुत अध्याय में शोध का दूसरा, चौथा ओए पाँचवां उद्देश्य पूरा हो रहा है। इसी दृष्टिकोण से वर्तमान समस्याओं से छुटकारा पाना ही हमारे शोध का प्रमुख लक्ष्य है, जिसका प्रयोग साहित्य के द्वारा हमारे समाज के विकास के लिए किया जा सकता है।

चतुर्थ अध्याय

21वीं सदी के हिन्दी निबंधों में सांस्कृतिक चेतना : धर्म और नीति पक्ष

4.1. धर्म पक्ष

4.1.1. धर्म का अर्थ स्वरूप और परिभाषा

4.1.2. धर्म और धर्मनिरपेक्षता

4.1.3. विज्ञान और धर्म

4.1.4. धर्म और राजनीति

4.1.5. धर्म और संस्कृति

4.1.6 धर्म एकता का माध्यम

4.2. नीति पक्ष

4.2.1. नीति का अर्थ स्वरूप और परिभाषा

4.2.2. अंधविश्वास

4.2.3. दान

4.2.4. उत्सव-पर्व-त्योहार एवं मेले

4.2.5. दया-भावना

निष्कर्ष

4.1. धर्म पक्ष

धर्म का अर्थ होता है, धारण, अर्थात जिसे धारण किया जा सके, धर्म, कर्म प्रधान है। गुणों को जो प्रदर्शित करे वह धर्म है। धर्म को गुण भी कह सकते हैं। धर्म शब्द में गुण अर्थ केवल मानव से संबंधित नहीं है। पदार्थ के लिए भी धर्म शब्द प्रयुक्त होता है, यथा पानी का धर्म है बहना, अग्नि का धर्म है प्रकाश, ऊष्मा देना और संपर्क में आने वाली वस्तु को जलाना। प्रत्येक व्यक्ति के लिए धर्म का पालन करना आवश्यक माना गया है। इसी धर्म के बल पर ही मानव में आत्मविश्वाश एवं आत्मशुद्धि का भाव जागृत होता है। धर्म सार्वभौमिक होता है। पदार्थ हो जा मानव, पूरी पृथ्वी के किसी भी कोने में बैठे मानव या पदार्थ का धर्म एक ही होता है। धर्म सार्वकालिक होता है, यानी प्रत्येक काल के युग में धर्म का स्वरूप वही रहता है। धर्म कभी बदलता नहीं है।

उदाहरण के लिए अगर हम यहाँ बात करें तो पानी, अग्नि आदि पदार्थ का धर्म सृष्टि निर्माण से आज पर्यन्त समान है। धर्म और सम्प्रदाय में मूलभूत अंतर है। धर्म का अर्थ जब गुण और जीवन में धारण करने योग्य होता है, तो वह प्रत्येक मानव के लिए समान होना चाहिए। जब पदार्थ का धर्म सार्वभौमिक है, तो मानव जाति के लिए भी तो इसकी सार्वभौमिकता होनी चाहिए। अत: मानव के सन्दर्भ में धर्म की बात करें, तो वह केवल मानव धर्म है।

4.1.1. धर्म का अर्थ और स्वरूप

वामन शिवराम आप्टे ने अपने ग्रन्थ *संस्कृत हिन्दी कोश* में धर्म के अर्थ को इस प्रकार स्पष्ट किया है- ध्रियते लोकोनेन धरति लोक वा धृ + मन 1. कर्मशास्त्र विहित आचरण कर्म 2. कर्तव्य, जाति, सम्प्रदाय आदि के प्रचलित आधार का पालन 3. अधिकार, न्याय, औचित्य का न्याय साम्य निष्पक्षता 4. कानून प्रचलन प्रथा अध्यादेश अनुविधि 5. प्रकृति स्वभाव चरित्र 6. रीति प्रणाली,

भद्र पुरुषों की संगति 7. ज्येष्ठ, पाण्डव युधिष्ठिर 8. मृत्यु का देवता यमराज 9. उपनिषद 10. मूलगुण विशेषण, लाक्षणिक गुण 11. धार्मिक या नैतिक गुण, भलाई, नेकी और अच्छे काम 12. पवित्रता, औचित्य, शालीनता 13. यज्ञ 14. सत्संग 15. नैतिकता, नीतिशास्त्र 16. रीति, समरूपता, समानता 17. भक्ति, धार्मिक, भावमग्नता। (489)

संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ ग्रन्थ में रामस्वरूप चतुर्वेदी ने धर्म के अर्थ को इस प्रकार परिभाषित किया है- धर्म शब्द का अर्थ बड़ा व्यापक है। शब्द शास्त्र की पद्धति के अनुसार धारणार्थक 'धृ' धातु में 'मन' प्रत्यय के योग से धर्म शब्द बनता है, जिसका अर्थ है- जो दूसरों द्वारा धारण किया जाए, वही धर्म है। (549)

डॉ. श्यामसुंदर दास के ग्रन्थ *हिन्दी शब्द सागर* के अनुसार- किसी वस्तु या व्यक्ति की वह वृति जो इसमें सदा रहे, उससे कभी अलग न हो, स्वभाव, नित्य नियम, जैसे आँख का धर्म देखना आदि। वह वृति या आचरण जो लोक या समाज की स्थिति के लिए आवश्यक हो। वह आचार जिसमें समाज की रक्षा और सुख शांति की वृद्धि हो। किसी आचार्य या महात्मा द्वारा प्रवर्तित ईश्वर परलोक आदि के सम्बन्धी विशेष रूप का विश्वास और आराधना की विशेष प्रणाली, उपासना, भेद, मद, सम्प्रदाय, पंथ, मजहब; जैसे हिन्दू धर्म, ईसाई धर्म, इस्लाम धर्म आदि। (2436)

इस प्रकार देखा जाए तो धर्म एक ऐसा तत्व है, जो मानव या किसी अन्य वस्तु का आवश्यक लक्षण होता है, जो उसमें सदैव रहता ही है। आज के विज्ञान, इंटरनेट और प्रोद्योगिकी व तर्क प्रधान भौतिकवादी युग में धर्म की बात करना कालभ्रमित लग सकती हैं। इसमें पुनरुत्थानवादी, परम्परावादी या प्रतिक्रियावादी होने का खतरा

शामिल है। विश्व के अधिकांश देशों में धर्मनिरपेक्षता को अपनी राजनीतिक व्यवस्था में एक नीति के रूप में स्वीकार कर लिया गया है। प्रजातांत्रिक देशों में धर्म को व्यक्तिगत मामला माना जाता है, या उसे केवल सामाजिक व्यवस्था का एक रूप माना जाता है। अस्पष्ट रूप में धर्म का प्रयोग विधिक बाहरी अभिव्यक्तियों और आंतरिक आध्यात्मिक उत्कृष्ठता दोनों के लिए होता है। वास्तव में आध्यात्मिकता की शुरुआत वहाँ पर होती है, जहाँ धार्मिकता समाप्त होती है।

मोजेस, बुद्ध, महावीर स्वामी, मोहम्मद पैगम्बर, गुरु नानक, थियोसोफी और आध्यात्मवाद सभी ने मनुष्य में दिव्यता का संदेश दिया है। ऐतिहासिक रूप से विश्व के विभिन्न भागों में काल, स्थान वह संस्कृति के अनुरूप कई धर्मों का उद्भव और विकास हुआ। समय, स्थान और सांस्कृतिक, आध्यात्मिक परिस्थितियों के परिवर्तन से धर्म में भी परिवर्तन आए। बाहरी रूप से सभी धर्मों में मूलत एकता के बुनियादी तथ्यों एवं मूल्यों की बात की है। सनातन धर्म और वैदिक धर्म का कोई एक प्रवर्तक नहीं है। विश्व के अन्य धर्मों के अपने-अपने प्रवर्तक हैं। वर्तमान समस्या अलग-अलग धर्मों और मतों में एकता स्थापित करने की चेष्ठा है। वर्तमान में मानव जीवन अधिकतर अपने स्वार्थ में अस्त-व्यस्त है, जिसका प्रभाव धर्म पर भी पढ़ रहा है। मानव को पहले समय की तरह अब वर्तमान में धर्म का कोई डर नहीं है, पुरातन समय में हम सभी जानते हैं कि मानव यह कहता था, अच्छे काम करने से अगले जन्म में स्वर्ग में जायेंगे और फिर मानव जीवन मिलेगा। यही सकारात्मक सोच थी जो धर्म को बढ़ावा देती थी और सभी प्रेम के साथ एकता से रहते थे। लेकिन अब वर्तमान समय में ऐसा नहीं है, मानव को धर्म से कुच्छ लेना देना नहीं होता। जब वह कोई बुरा काम करता है, या फिर स्वार्थ के लिए काम करता है, या फिर धन के लिए काम करता है। इन्हीं समस्याओं का निराकरण करना हमारा उद्देश्य है और वर्तमान समय

के हिन्दी निबंधों में भी इस तरह की बहुत समस्याओं पर निबंधकारों ने व्यंग्य किया है। जिसका अध्ययन करने पर हमें यह सब पता चलता है।

भारतीय संस्कृति और दर्शन में धर्म सदैव एक महत्वपूर्ण संकल्पना रहा है। पाश्चात्य जगत में भी धर्म और राजनीति में अटूट सम्बन्ध रहा है। जहाँ तक धर्म शब्द की परिभाषा का प्रश्न है, वह अलग-अलग संस्कृतियों और देशों में अलग-अलग अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। वास्तव में प्रत्येक मनुष्य का अपना सुनिश्चित कर्म अथवा कर्तव्य निर्धारित होता है। जिसे उसके कर्म के आधार पर पाया अथवा निर्धारित किया है। इसलिए श्रेष्ठ सामाजिक संरचना के लिए, समाज के सभी वर्गों को व सभी व्यक्तियों को अपना-अपना कर्म, अर्थात अपने-अपने कर्तव्यों का निष्ठापूर्वक पालन करते रहना ही धर्मानुसार आचरण करना है।

धर्म की परिभाषा

धर्म को एक ऐसी एकीकृत प्रणाली के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। जो अपनी प्रथाओं और विश्वासों से एक समुदाय विशेष को नैतिकता से जोड़ता है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से धर्म हर समाज में विद्यमान होता है। सामाजिक धर्म का मुख्य कारण सभी मानवीय गतिविधियों को एक सूत्र में बाँधने का आधार प्रदान करता है। किसी एक समुदाय विशेष के धर्म को उसके राजनीतिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक जीवन से पृथक करना अत्यंत कठिन है।

डॉ. राधाकृष्णन ने अपनी पुस्तक *धर्म और समाज* में धर्म के बारे में कहा है कि- धर्म वह अनुशासन है, जो अन्तरात्मा को स्पर्श करता है और हमें बुराई से संघर्ष करने की सहायता देता है। (45)

धर्म का स्वरूप पुस्तक में डॉ. प्रशांत वेदालंकार ने धर्म की परिभाषा इस प्रकार दी है- धृ धारण पोष्यो धातु से बना है। जिसका अर्थ है- धारण करना और पोषण करना अर्थात पदार्थ के धारक और पोषण तत्व को धर्म कहते हैं। (17)

अर्चना जैन ने अपनी पुस्तक *प्रेमचन्द निबंध साहित्य में सामाजिक चेतना* में धर्म के बारे में कहा है कि- धर्म व्यक्ति के जीवन की सही तह दिखाने वाला प्रेरणा तत्व है, जिसका अनुसरण कर व्यक्ति अपने जीवन लक्ष्य की ओर उन्मुख होता है। शाश्वत मानव शरीर की प्रकृति निहित गुणों को व्यक्ति में विकसित एवं अभिव्यक्त करने के लिए जो प्रयत्न करता है, उसी में धर्म का अस्तित्व निहित है। यदि मनुष्य में यह गुण जन्मजात होते तो धर्म की कोई आवश्यकता ही नहीं थी। (36)

जब हम कर्म (काम) और धर्म (पूजा) दोनों की एक साथ बात करते हैं, तो हमें इन दोनों शब्दों का सही अर्थ समझना बहुत जरुरी हो जाता है। कर्म का अर्थ है, हमारे द्वारा किये गये प्रयास व हमारी उस कार्य के लिए की गई कड़ी मेहनत, और धर्म का मतलब है, कुछ कार्य शक्ति को श्रद्धा के साथ पूर्ण करना। अब इन दोनों शब्दों के अर्थ के बारे में जानने के लिए, हम इस बात को समझते हैं कि किस प्रकार कर्म ही धर्म हो सकता है।

जैसे जब हम अपने कर्म की इज्जत करते हैं, या उस कार्य को पूरे मन लगाकर करते हैं, तो वह कार्य सफल हो जाता है। इसे हम इस प्रकार भी समझ सकते हैं- कर्म ही पूजा है। भगवान ने हर इंसान को दो हाथ, एक मुंह और दो पैर के साथ धरती पर भेजा है। इसका मतलब है कि भगवान भी हमसे कर्म करवाना चाहता है। हमें अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए, काम करना अति आवश्यक है। जब कोई व्यक्ति पूरी

ईमानदारी से कोई काम करता है, तो उसे जीवन में सफलता मिलती है। जब वह आधे मन से या स्वार्थ से काम करता है, तो वह असफल हो जाता है।

जब तक हम कर्म नहीं करेंगे, तब तक तो हम अपने सामने रखे भोजन को भी नहीं खा सकते हैं। इसलिए कर्म के बिना हमारा जीवन अधूरा है। यह जीवन केवल तभी उपयोगी होता है, जब हम सभी कार्य करते हैं। कार्य करना जीवन का मुख्य उद्देश्य है। कर्म के बिना जीवन का कोई व्यक्तित्व नहीं हैं। इसलिए कहा जाता है कि हमारा कर्म ही हमारा धर्म है। जिन लोगों ने अपने जीवन में कर्म के महत्व को समझ लिया है, वह लोग अपने जीवन में सुखद हैं। निराशा जिन लोगों ने की है, कर्म को लेकर वह कभी भी सफल नहीं हुए हैं और निराशा जीवन में अभिशाप के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। हम लोग अक्सर कहते हैं कि किस्मत भी बहादुर लोगों का पक्ष लेती है, क्योंकि उनमें कुछ करने का साहस है। वह खुद अपनी किस्मत बनाते हैं। इस तरह हम अत: यही कह सकते हैं कि हमारा कर्म ही हमारा धर्म है।

4.1.2. धर्म और धर्मनिरपेक्षता

धर्मनिरपेक्षता का शाब्दिक अर्थ है, धर्म से निरपेक्ष रहना अर्थात धर्म के मामले में कोई हस्तक्षेप न करना। व्यक्ति या समुदाय की जो आस्था या धर्म हो, उसे बिना बाध्यता के उसके अनुसार आचरण करने की छूट प्रदान करना ही धर्मनिरपेक्षता है। भारतीय धर्मनिरपेक्षता सभी धर्मों को आदर वह सम्मान देना, भारतीय संस्कृति का प्राचीन काल से ही विशिष्ट लक्षण रहा है। भारत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य है, यहाँ सभी नागरिकों को स्वतंत्र रूप से धर्म को मानने व उसके अनुसार आचरण करने की स्वतंत्रता है। धर्मनिरपेक्षता भारतीय संविधान के आधारभूत ढांचे में शामिल है।

हमारे संविधान में धर्मनिरपेक्षता को आदर्श के रूप में रखा गया है, इससे यह आशय है कि कोई भी राज्य धर्म के नाम पर धर्म विशेष को राज्य के धर्म के रूप में

घोषित नहीं करेगा, किसी भी नागरिक के साथ धार्मिक आधार पर कोई भेद-भाव नहीं किया जायेगा। धर्म का मतलब यही है कि सभी को एक समान दृष्टि से देखा जाये। धर्म निरपेक्ष का यह मतलब कदापि नहीं है कि:

- धर्म की बात नहीं करनी है।
- धर्म का पक्ष नहीं लेना है।
- धर्म के पालन की आज्ञा नहीं करनी है।
- राज्य/सरकार को धर्म से अलग रहना होगा।

धर्मनिरपेक्षता का सीधा-सादा अर्थ सिर्फ इतना है, किसी भी धर्म का पक्ष नहीं लिया जाएगा। जब इंदिरा गाँधी ने संविधान में बदलाव करते हुए देश को धर्मनिरपेक्ष बनाया था, तो उनका मतलब था, कि भारत सरकार किसी भी धर्म विशेष का पक्ष नहीं लेगी। सभी नागरिक सरकार के लिए समक्षक रहेंगे। एक समय ऐसा था, जब हमारे देश में धर्म के नाम पर लड़ाई-झगड़ा होता था, सभी लोग अपने-अपने धर्मों को लेकर लड़ते थे और अपना अपना प्रचार करते थे। ऐसी ही बहुत समस्याएँ प्राचीन समय में देखी गई हैं। जिनको लेकर हिन्दी निबंधकारों ने भी अपने निबंधों में धर्म के बारे में अपने विचार व्यक्त किये हैं। उसके बाद हमारे संविधान में इस बात को स्पष्ट रूप से लागू कर दिया गया, कोई भी राज्य धर्म के नाम पर भेद-भाव नहीं करेगा।

आस्तिक और नास्तिक सामान्यत : आस्तिकता ईश्वरवाद का पर्याय है और नास्तिकता अनीश्वरवाद का। ईश्वरवाद से धर्म का उदय हुआ है और अनीश्वरवाद से विज्ञान का। पर ऐसे भी विचारक हैं, जो धर्म एवं विज्ञान में कोई विरोध नहीं देखते। पर धर्म का मूल तत्व ईश्वर में विशवास एवं आस्था है और विज्ञान का प्रस्थान बिन्दु है, भौतिक जगत का निरीक्षण उसके रहस्यों की खोज और उनकी तर्कसंगत व्याख्या

के बाद प्राकृतिक सिद्धान्त निरूपण, जिसमें बौद्धिकता का विशेष महत्व है। धर्म में भावना का विशेष महत्व है, तो विज्ञान में बुद्धि और तर्क का। इस तरह आस्तिक और नास्तिक दोनों का धर्म के प्रति दृष्टिकोण अलग-अलग रहता है। इसीलिए तो सरकार ने धर्मनिरपेक्षता का संविधान लागू किया है, किसी के साथ धार्मिक भेद-भाव नहीं किया जायेगा।

> डॉ. सुधेश ने अपने रचनात्मक निबंध संग्रह *चिन्तन अनुचिन्तन* में संकलित निबंध 'नास्तिकता' में कहा है कि - नास्तिक ईश्वर के अस्तित्व पर ही प्रश्नचिन्ह नहीं लगाता बल्कि जगत के बारे में भी प्रश्न करता है। उसकी प्रश्नाकुलता एक वैज्ञानिक की प्रश्नाकुलता के समान है। नास्तिक और वैज्ञानिक हर बात को बुद्धि की कसौटी पर कसना चाहता है। इसीलिए मुझे लगता है कि नास्तिकता एक बुद्धिवाद को जन्म देती है, जिससे विज्ञान का विकास होता है। यह नास्तिकता का एक सकारात्मक पक्ष है। (78)

नास्तिकता से यदि विज्ञान का उदय हुआ, विकास हुआ, तो क्या यह माना जा सकता है कि वैज्ञानिक भी एक प्रकार का नास्तिक है, क्योंकि वह जगत को किसी ईश्वर की रचना न मानकर, उसकी उत्पति की खोज करता है। वैज्ञानिक जगत को प्रकृति से उद्भूत एवं विकसित मानता है। तभी तो वह प्रकृति के रहस्यों को खोलने में लगा हुआ है। धरती, जल, वायु, अग्नि, आकाश यह प्रकृति के पाँच मूल तत्व हैं। इन तत्वों की खोज से ही भौतिकशास्त्र, रसायन-विज्ञान, जीव-विज्ञान, शून्य-विज्ञान, आदि विज्ञानों का विकास हुआ है। विश्व में जहाँ आस्तिकता ने अनेक धर्मों एवं दर्शनों को जन्म दिया है, वहाँ नास्तिकता ने भी विचारधाराओं, विज्ञान की शाखाओं और समाज विज्ञान के अनुशासनों का विकास किया है। नास्तिकता की शक्ति उसका नकार है, जो प्रश्नाकुलता में रुपान्तरित होकर बुद्धिवाद को जन्म देता है, और

बुद्धिवाद विज्ञान को जन्म देता है। नास्तिकता एक बौद्धिक दृष्टिकोण है, जो मनुष्य को बुद्धिवाद एवं विज्ञान की ओर ले जाता है, क्योंकि विचारवान मनुष्य जगत के बारे में अधिक से अधिक जानता है, तांकि वह अपने भौतिक जीवन को सुखी बना सके। इसके विपरीत आस्तिकता एक भावात्मकता दृष्टिकोण है, जो मानव को धर्म एवं ईश्वर भक्ति की ओर ले जाता है। भक्ति से भी भावना प्रधान व्यक्ति भावात्मक सुख पाता है। सुख की तलाश आस्तिक नास्तिक दोनों को है। एक का लक्ष्य आध्यात्मिक आनन्द है, दूसरे का लक्ष्य भौतिक सुख सुविधा है।

डॉ. सुधेश ने अपने निबंध संग्रह *चिन्तन अनुचिन्तन* में कहा है कि – यदि कुछ वैज्ञानिक चर्च में जाते हैं, या नमाज पड़ते हैं, या मन्दिर में जाते हैं, तो यह उनका सामाजिक व्यवहार है, क्योंकि वह किसी धार्मिक समुदाय से सम्बन्धित हैं। इससे उनकी आस्था प्रकट नहीं होती अथवा वह किसी धर्म के खाते में नहीं डाले जा सकते, क्योंकि वह जो वैज्ञानिक शोध कर रहे होते हैं, वह किसी धर्म से सम्बन्धित नहीं है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि विज्ञान धर्म का अतिक्रमण करता है अथवा विज्ञान धर्म-निरपेक्ष है। यदि विज्ञान धर्म निरपेक्ष है तो वैज्ञानिक धर्म सापेक्ष कैसे हो सकता है। यदि वैज्ञानिक धर्म-निरपेक्ष है तो वह नास्तिक की श्रेणी में आता है। इसलिए मेरी यह मान्यता है कि नास्तिकता से विज्ञान का उदय हुआ है यह नास्तिकता का सकारात्मक पक्ष है। (78)

स्वतंत्रता के पचास वर्ष बाद यदि हमें धर्मनिरपेक्षता के अर्थ के बारे में आशय स्पष्ट है, तो अवश्य ही धर्म के प्रति हमारे मन में अनेक उलझने आज भी हैं। जिनका समाधान हम नहीं कर पा रहे हैं। इसका अर्थ ही कुछ लोग गलत मानते हैं। धर्मनिरपेक्षता का मतलब यह कभी भी नहीं है की धर्म से हमें कुछ नहीं लेना या धर्म के बारे में कोई पक्ष नहीं लेना या धर्म की हमें आज्ञा नहीं करनी है। बल्कि इसका अर्थ

यह है कि किसी धर्म का पक्ष नहीं लिया जाएगा। क्योंकि सभी धर्मों का अगर हर जगह पर अलग-अलग पक्ष लिया जाए, तो यह सम्भव नहीं है। इससे तो बहुत सी कुप्रथाएँ प्रचलित होगी और कोई भी संस्था होगी फिर तो वह किसी एक धर्म की होगी। इस तरह हमें यह बातों को अच्छे से समझना है और नई पीढ़ी को इन बातो का ज्ञान देना है, तांकि कोई इसका गलत अर्थ न समझे। वर्तमान के निबंधकारों में डॉ. सुधेश ने इसी बात को स्पष्ट किया है, जो अभी हमने उनका उदाहरण प्रस्तुत किया है, उससे इसका साफ़ पता चलता है। आस्तिक और नास्तिक दोनों का उदाहरण देते हुए, उन्होंने यही बताया है कि सभी धर्म निरपेक्ष हैं, उनका अपना-अपना दृष्टिकोण है और सभी अपनी सकारात्मक सोच को लेकर चलते हैं।

ऐतिहासिक रूप से धर्म की दो अवधारणाएँ उपस्थित रही है, एक वह जो मनुष्य और संस्कृति के संबंध को पवित्र मानती है और यह जब स्वीकार करती है कि मानव सृजन चेतना का संवाहक है, इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि वह सृष्टि के केन्द्र में है। भारतीय सभ्यता महानतम स्तर पर पवित्रता के इस सर्वभौमिक बोध से अनुप्राणित होती रहेगी। धर्म के परिवेश में मनुष्य शक्तिशाली होने के कारण शोषक नहीं सिर्फ अपने दायित्व-बोध के प्रति सजग होना है। इसी के विपरीत धर्म की एक दूसरी अवधारणा भी है, जो अपनी वैधता किसी मसीहा की वाणी या किसी विशिष्ट पुस्तक के वचनों से प्राप्त होती है। वह एक ऐसी वैधता लिए होती है, जिस पर न संदेह प्रकट किया जा सकता है और न ही चुनौती दी जा सकती है। कहना न होगा कि पिछले पचास वर्षों में धर्मनिरपेक्षता का सम्बन्ध धर्म की इस दूसरी अवधारणा से संबंधित था। उस अवधारणा से नहीं जो भारतीय सभ्यता के केन्द्र में थी। यह एक ऐतिहासिक विडम्बना ही मानी जाएगी कि हमारे सत्ता गुरू शासको ने स्वतंत्रता के बाद, भारतीय जनसाधारण को एक ऐसे धर्म से निरपेक्ष होने के लिए बाध्य किया, जिसका उनसे कोई लेना-देना नहीं था और इस प्रक्रिया में उन्हें एक ऐसे समाज व्यवस्था में

रहने के लिए विवश किया, यहाँ स्वयं उनकी धार्मिक आस्थाएँ एक हाशिए की वस्तु बनकर रह गई।

स्वतंत्रता के बाद हमने जिस तथाकथित धर्मनिरपेक्ष समाज का निर्माण किया उसमें इस सम्पूर्ण मानव के लिए कोई स्थान नहीं। उपरी चिन्तन में हम भारतीय हैं, भीतर के अँधेरे में हम हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख हैं। अँधेरे में कोई विश्वास पनपता नहीं सड़ता है, इसलिए जब कभी वह बाहर आता है तो अपने सहज आत्मीय स्वरूप में नहीं, बल्कि एक विकृत दमित भावना के रूप में। समय-समय पर होने वाले साम्प्रदायिक दंगे हमें उस अँधेरे की झलक दिखाते हैं। यहाँ एक समाज ने धर्म को फेंक दिया है। क्या आज का भारतीय जिसमें केवल हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख नहीं वह लाखों आदिवासी शामिल हैं। जिनके अपने धार्मिक निजी विश्वास हैं। सैंकड़ों विश्वासों, आस्थाओं, स्मृतियों और संस्कारों का यह संगम केवल एक ऐसी संस्कृति में संभव हो सकता है, जिसमें संपूर्ण मनुष्य की परिकल्पना निहित रहती है।

धर्मनिरपेक्षता का सिद्धान्त प्रगति और विकास की छलनाओं के साथ जी रहा है। स्वतंत्रता के बाद हम अपने को यह सुविधाजनक चलवा देते आए थे, अपने जीवन में धर्म को निष्कासित करने पर ही हम विकास के रास्ते पर आगे बढ़ सकते हैं। नेहरू युग का यह सबसे सुंदर स्वप्न था कि यदि हम पश्चिमी देशों की तरह अपने देश में विराट पैमाने पर, औदयोगीकरण कर सकें तो देश की समस्त जातीय समस्याएँ, अपने आप हल हो जाएँगी। आज विकास की छलनाएँ हमारे सामने अपने पूरे खोखलेपन के साथ प्रकट हो गई हैं। किन्तु उससे जुड़ी धर्मनिरपेक्षता की चलना से मोहभंग आज भी नहीं हो पाया है। दोनों ही हमारी मानसिक गुलामी के पक्ष हैं। इसी तरह की मानसिक गुलामी और गरीबी हमने अंग्रेजों के शासन के भीतर भी महसूस की थी। बीसवीं शती के आरम्भिक तीन दशकों में भारतीय जीवन के कर्म और चिन्तन

के स्तर पर, जो असाधारण सृजनशीलता का दौर आया था, वह आज अविश्वसनीय जान पड़ता है। गाँधी, तिलक, रवींद्रनाथ टैगोर, श्री अरविंद के नाम याद आते हैं। उनकी तुलना में आज हमारी आध्यात्मिक अवस्था और व्यक्तिगत कार्य प्रणाली कितनी फूहड़, अश्लील और नकली हो गई है, क्या इसकी कल्पना हमारे पूर्वज्ञ कर सकते थे। समय के दौर ने इन सभ को इतना प्रभावित किया है कि आज हम इन स्थितियों में आ गए हैं।

आधुनिक युग की ये क्या उल्लेखनीय विडंबनाएँ नहीं हैं, ऊपर से दिखने वाली दो विपरीत विचारधाराएँ धार्मिक अंधता और धर्मनिरपेक्ष राज्य-शक्तियाँ, दोनों ने ही मनुष्य को आंतरिक और अत्यंकित सत्य से विचलित किया है। 21वीं सदी में हमें पूछना चाहिए कि धर्म तो कैसा धर्म, किस धर्म के प्रति निरपेक्षता, जब तक हम इस प्रश्न का उतर नहीं दे पाएँगे, तब तक हम धर्म को साम्प्रदायिकता से अलग नहीं कर पाएँगे। भारत में धार्मिक परम्परा का बोध जो लोगों की जीवन समरसता में रचा-बसा है, हमें उसे छदम साम्प्रदायिकता से अलग करना होगा, जो बाहर से आरोपित की जाती है। इस दृष्टि से भारतीय चरित्र के लिए धर्मनिरपेक्षता या सेक्यूलरिज्म असहज और आरोपित है। यह बात अगर विरोधाभास जान पड़े किन्तु एक धर्मावलंबी भारतीय के लिए धर्म को साम्प्रदायिकता से संकुचित करना उतना ही अस्वाभाविक है, जितना धर्म के प्रति निरपेक्ष रहना। जब कभी भारतीय संस्कृति में ठहराव और संकीर्णता के लक्ष्ण दिखाई दिए, तभी उसी संस्कृति के भीतर उसके विरोध में कबीर, नानक, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद और गाँधी ने हिन्दू धर्म को आत्मदूषित संकीर्णता से उभारकर, एक तरह भारतीय परम्परा से जुड़ने के लिए उत्प्रेरित किया।

जिस तरह विकास के नाम पर इस वर्ग ने मनुष्य और प्रकृति के सहज संबंध को खंडित किया, ठीक उसी तरह एक तथाकथित राज्यसत्ता के नाम पर, उसने एक

भारतीय के धर्म संस्कार और उसके सभ्यता बोध के बीच जो सम्बन्ध सदा से चल रहा था, उसे भी खंडित किया है। यदि आर्थिक स्तर पर प्रकृति मनुष्य के शोषण का साधन बनी तो राष्ट्रीय स्तर पर मानव की धार्मिक आस्था का शोषण हर सेक्यूलर पार्टी अपने निहित स्वार्थों के लिए कर सकती थी। अल्पसंख्यकों को राष्ट्र के भीतर सदैव अल्पसंख्यक रखना, तांकि वह अपने को सदैव असुरक्षित महसूस करते रहें और असुरक्षा-बोध को अपनी वोटों से भुनाते रहें, जिसका प्रणाम आज हम भुक्त रहे हैं। ये संरक्षण और सुरक्षा के नाम पर भारत के सामाजिक-राजनीतिक जीवन को सदैव के लिए विभाजित रखने की स्वार्थपरक मानसिकता थी।

> 'नास्तिकता' निबंध में डॉ. सुधेश ने कहा है कि आज की समग्र बौद्धिकता के बावजूद आधुनिक मनुष्य धार्मिक संकीर्णता, साम्प्रदायिकता, जातिवाद, क्षेत्रीयता, भाषावाद, नस्लवाद से ग्रस्त है। क्या ये संकीर्णताएँ बुद्धि-सम्मत हैं, विज्ञान और तकनीकी अपार उन्नति के बाद भी ऐसा दिन कभी नहीं आएगा कि वह धर्म एवं आस्तिकता को मिटा दें, बल्कि विज्ञान मनुष्य अधिक क्रूर एवं दानव बनता जा रहा है। धार्मिक एवं आस्तिक लोग दुनिया में रहेंगे ही। आवश्यकता इस बात की है कि बुद्धिवाद और विज्ञान मानव को अधिक मानवीय बनने में सहायता करें। (82)

इस तरह धर्मनिरपेक्षता को लेकर हमारे समाज में ऐसे मुद्दे चलते रहे, जो कभी सार्थक सिद्ध हुए और कभी भारतीय संस्कृति को आघात पहुँचाते रहे। सबसे बड़ी बात तो यह है कि धर्मनिरपेक्षता का अर्थ ही कुछ लोगों ने गलत बताया और समझा जबकि ऐसा इसका अर्थ नहीं था। धर्मनिरपेक्ष होना ऐसा कदापि नहीं था, कि धर्म से हमें कुछ लेना-देना नहीं है, या फिर अब हमें धर्म की आज्ञा-पालना नहीं करनी, जबकि धर्मनिरपेक्ष होना यह था कि धर्म के नाम पर कभी भी भेद-भाव नहीं किया जाएगा। धर्मनिरपेक्षता का होना अति आवश्यक था और यह आज सार्थक सिद्ध भी

हुआ है। हमारे संविधान में भी यही कहा गया है कि धर्म के नाम पर किसी भी राज्य में भेदभाव नहीं किया जाएगा और किसी भी संस्था में भी धर्म को आधार मानकर या किसी व्यक्ति का धर्म देखकर कोई निश्चय नहीं लिया जाएगा। भारतीय धर्मनिरपेक्षता सभी धर्मों को आदर वह सम्मान देना भारतीय संस्कृति का प्राचीन काल से ही विशिष्ट लक्ष्ण रहा है।

डॉ. कैलाश वाजपेयी के निबंध *हैं कुछ, दीखें और* के अनुसार- भारत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य है, यहाँ सभी नागरिकों को स्वतंत्र रूप से धर्म को मानने व उसके अनुसार आचरण करने की स्वतंत्रता है। धर्मनिरपेक्षता भारतीय संविधान के आधारभूत ढांचे में शामिल है। धर्मनिरपेक्षता का सीधा-सादा अर्थ सिर्फ इतना है, किसी भी धर्म का पक्ष नहीं लिया जाएगा। (45)

4.1.3. विज्ञान और धर्म

विज्ञान और धर्म दोनों पृथक-पृथक नहीं है, वरन एक सिक्के के दो पहलु हैं, दोनों का एक ही उद्देश्य है, दोनों सत्य का अन्वेषण करते हैं। विज्ञान सत्य का परीक्षण कर स्वीकार करता है और धर्म आस्था के रूप में स्वीकार किया जाता है। कुछ लोग कहते हैं कि विज्ञान के बिना धर्म अंधा है और धर्म के बिना विज्ञान। यही से यह स्पष्ट होता है कि विज्ञान और धर्म एक दूसरे के साथ जुड़े हैं, दोनों ही सत्य की खोज अपने-अपने दृष्टिकोण से करते हैं। इन दोनों का लक्ष्य सत्य की खोज करना और प्रकृति को समझना है। विज्ञान का लक्ष्य हमारे भौतिक पर्यावरण के मूलभूत सिद्धान्तों को समझना है। धर्म हमारे आत्मज्ञान को जगाता है। विज्ञान यहाँ हमारी बुद्धि को प्रकाशमान करती है, वहीं धर्म हमारी आत्मा को प्रकाशित करता है। हालांकि विज्ञान और धर्म में प्राथमिक विरोध माना जाता है, लेकिन यह दोनों एक दूसरे से अंतर संबंधित विषय हैं और दोनों का ही बराबर महत्व है।

रामजी उपाध्याय की पुस्तक *भारतीय धर्म और संस्कृति* के अनुसार- “विज्ञान तर्क और सबूतों पर चलता है, जबकि धर्म में यह आवश्यक नहीं है। धर्म में सिर्फ अपनी बुद्धि के अनुसार आस्था होनी ही आवश्यक है।” (35) धर्म कल्पना और विश्वास पर आधारित होता है, लेकिन विज्ञान केवल कल्पना तक ही तवज्जो देता है, जब तक कि कल्पना साकार रूप लेकर सबूत न बन जाये। धर्म पूरी घटना देखता है, धर्म कहता है कि एक नहीं दो घटनाएँ हो रही हैं, धर्म कहता है कि समग्रता में देखो। इस तरह धर्म केवल बाहर नहीं देखता, भीतर भी देखता है। विज्ञान सिर्फ बाहर देखता है। मन को भी समझना आवश्यक है, तो विज्ञान धार्मिक है, लेकिन आधा धार्मिक है, पूरा धार्मिक हुआ, उस को जानना और मन को जानना। इस तरह यह साफ़ पता चलता है कि दोनों सत्य को जानने की कोशिश करते हैं, दोनों एक दूसरे से संबंधित भी हैं और अलग भी। अत: यही कहा जा सकता है कि दोनों में कुछ अंतर भी है और दोनों में संबंध भी है।

जब भी धर्म और विज्ञान के अंतर की बात करते हैं, तो इन दोनों के बीच का अंतर उनके सिद्धान्तों और अवधारणाओं में मौजूद हैं। विज्ञान और धर्म के बीच संबंध बहुत विवादास्पद भी है, धर्म विश्वास पर आधारित होता है, जबकि विज्ञान तर्क पर आधारित है। यही कारण है कि यह दोनों अक्सर संगत नहीं होते। ईश्वर का अस्तित्व धर्म में मुख्य अवधारणाओं में से एक है। ब्रह्मांड के निर्माण या निर्माण को धर्म के अनुसार भगवान का कार्य माना जाता है। विज्ञान का काम करने का अपना तरीका है और इसका धार्मिक विश्वासों के साथ कुछ भी नहीं है, यह सदैव तर्क पर आधारित होता है, कुछ के लिए सच के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए, वहाँ सबूत होना चाहिए।

विज्ञान और धर्म दोनों ही मनुष्य जीवन को समान रूप से प्रभावित करते हैं। एक और जहाँ विज्ञान तथ्यों व प्रयोगों पर आधारित है, वहीं दूसरी और धर्म आस्था और विश्वास पर। दोनों ही मनुष्य की अपोर शक्ति का स्त्रोत हैं। विज्ञान जहाँ मानव को भौतिक सुखों की प्राप्ति कराता है, वहीं धर्म से मानव में आध्यात्मिक शक्ति आती है। धर्म के मार्ग पर चलकर वह शांति की प्राप्ति करता है। विज्ञान और धर्म दोनों का स्वरूप अत्यंत विशाल है। प्रश्न यह नहीं है कि दोनों में से श्रेष्ठ कौन है, अपितु यह है कि यह दोनों जीवन-मार्ग, हमारे जीवन को किस प्रकार उन्नतिशील एवं शांतिपूर्ण बना सकते हैं। विज्ञान का स्वरूप असीमित है। विज्ञान जो भी कार्य करता है, वह अपने तरीके से करता है, वह तर्क पर आधारित होता है और सबूत चाहता है। कोई भी वैज्ञानिक अपने अनुसंधान और प्रयोगों द्वारा सत्य को एकत्रित करने के लिए नित्य नई खोज के लिए प्रयासरत रहता है। उसके मन में जो कल्पना होती है वह इन खोज, अनुसंधान और प्रयोगों की आधार होती है। मानव कभी उड़ते हुए पक्षियों को देखकर परिकल्पना किया करता था, कि वह भी इन पक्षियों की भाँती उड़ान भर सकता है। उसकी यही परिकल्पना अनेक प्रयोगों की आधार थी।

वर्तमान के निबंधों में भी निबंधकारों ने वैज्ञानिक खोज के बारे में कहा है कि मानव ही सब कुछ है, धर्म उसकी आस्था और विश्वाश है, लेकिन कार्य करता तो मानव ही है। उनका कहना है कि विज्ञान ने खुद खोज की है और दूसरों को भी छुटकारा दिलाता है। विज्ञान कहीं भी धर्म का विरोध नहीं करती। कैलाश वाजपेयी के निबंध संग्रह *हैं कुछ, दीखे और* में संकलित एक उदाहरण है:

> क्या शुद्ध विज्ञान जो प्रकृति की बुनावट परखने निकला था अब स्वयं भी उलटबांसी या सन्ध्याभाषा बोलने लगा है, क्या भौतिकी के नियमों के सहारे आज वैज्ञानिक भी उसी मनोभूमि पर पहुँच रहा है, जहाँ तर्क, द्वंद्वात्मकता,

व्यंग्य, गर्वोक्ति और संशय सब-के-सब पीछे छूट जाते हैं और बाकी रह जाती है एक तरल सदाशयता और घुमड़ती है सिर्फ सीधी सी प्रार्थना-

दुर्जन: सज्जनों भूयात

सज्जन: शान्तिमप्नुयत,

शान्तो मुच्यते बन्धेक्यो

मुक्ताश्चान्यान विमोचते।

यानि दुर्जन सज्जन हो जाएँ, सज्जन शान्ति पाएँ, शांतजन बन्धन से छूट जाएँ और जो छुटकारा पा गये हैं, वे दूसरों को भी छुटकारा दिलाएँ। (13)

विज्ञान के रहस्यपरक होते चले जाने की कहानी दरअसल भौतिकी के उन नियमों से जुड़ी है, जो पिछले कुछ दशकों में उद्घाटित हुए हैं, भौतिकी जिसे अंग्रेजी में 'फ़िजिक्स' कहा जाता है, मूल्त: ग्रीक भाषा का शब्द है, जिस का अर्थ है, वस्तुओं की मूल प्रकृति को देखने परखने का प्रयत्न। कहना न होगा कि कपिल के संख्य से लेकर नागार्जुन के शून्यवाद तक, पूर्व के तमाम ऋषि विचारकों का प्रयत्न भी यही था। धर्म पर हमारी आस्था और विशवास होता है। हम सभी धर्म को अति महत्व देते हैं, क्योंकि हमारी आस्था उससे जुडी हुई है और विज्ञान धर्म की बुराई कदापि नहीं करता है। उसका अपना कार्य करने का तरीका है, वह अपना तर्क निकालता है। इस तरह सभी विद्वानों का मत देखने से साफ़ जाहिर होता है, दोनों में अंतर भी है और समानता भी है, दोनों का कार्य होता है, सत्य की खोज करना। धर्म भी सत्य पर आधारित है और उसी पर विश्वास करता है, उसी तरह विज्ञान भी सत्य की खोज करता है, तर्क के आधार पर। विज्ञान स्वयं में अनन्त शक्तियों का भण्डार है। इसके अंतर्गत वह अपनी कल्पना को अपने किये जाने वाले प्रयोगों के आधार पर साकार रूप देता है।

धर्म भी विज्ञान की भांति अनंत शक्तियों का स्त्रोत है। धर्म प्रयोगों एवं तथ्यों पर नहीं, अपितु अनुभवों, विश्वासों और आस्थाओं पर आधारित है। मानव की धार्मिक आस्था उसे आत्मबल प्रदान करती है। मानव की मान्यताएँ किसी अज्ञात शक्ति पर केन्द्रित रहती है। इस शक्ति का आधार मानव की आस्था और विश्वास होता है। मानव धर्म के मार्ग पर चलकर अपने समस्त जीवन मूल्यों को आत्मसात करता है, जो हमारे चरित्रिक विकास में सहायक होते हैं। इस प्रकार हमने देखा है कि अनेक रूपों में विज्ञान और धर्म का एक ही रूप है। धर्म और विज्ञान दोनों के परस्पर समान गुणों के कारण ही एक-दूसरे का पूरक माना गया है। यह दोनों ही मानव की असीमित शक्ति का स्त्रोत हैं। विज्ञान मानव को भौतिक गुण प्रदान करता है, वहीं धर्म मानव को आत्मिक सुख की ओर ले जाता है।

अत: यह सत्य है कि विज्ञान और धर्म का परस्पर समन्वय ही, उसे प्रगति के उत्कर्ष तक ले जाता है। जब विज्ञान का सहारा लेकर मानव कुमार्ग पर चल पड़ता है, तो धर्म का संबल प्राप्त करना अनिवार्य हो जाता है। धर्म इस स्थिति में मानव का तारणहार बन जाता है। दूसरी ओर जब धर्म की छत्रछाया में अधार्मिक व्यक्तियों का समूह आम लोगों को ठगने का प्रयास करते हैं, तब विज्ञान का अलोक उन्हें सीधे रास्ते पर लाने की चेष्टा करता है।

4.1.4. धर्म और राजनीति

राजनीति का अर्थ होता है, दूसरों को कैसे जीत लूं और धर्म होता है, स्वयं को कैसे जीत लूं इसलिए धर्म और राजनीति को विपरीत मान लिया जाता है। अगर धर्म फैले तो राजनीति अपने आप सिकुड़ जाएगी और अगर धर्म न फैला तो राजनीति फैलती रहेगी। आदमी जीतेगा अगर वह जीतने की कोशिश करेगा, जीतने की

आकांक्षा उसके प्राणों में है। अगर अपने आप को नहीं जीतेगा, तो दूसरों को जीतेगा। धर्म का काम होता है, लोगों को सदाचारी और धार्मिक बनाना और राजनीति का उद्देश्य होता है, लोगों की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए, उनके हित में काम करना। लेकिन जब धर्म और राजनीति दोनों मिलकर नहीं चलते तो फिर कुछ समस्याएँ उत्पन्न होती हैं, क्योंकि वह आदमी धार्मिक नहीं होता और लोगों के हित को भूल कर दूसरों को जीतने लग जाता है। धन्यभागी हैं वह जो स्वयं को जीतते हैं, क्योंकि स्वयं को जीतकर ही परमात्मा के मन्दिर का द्वार खुलता है, शाश्वत जीवन उपलब्ध होता है। जो दूसरों को जीतने में लगे रहते हैं, वह लोग बहुत अभागे हैं, क्योंकि दूसरों को तो वह कभी जीत ही नहीं पाते, दूसरों को जीतने की चेष्टा में स्वयं को भी गवा बैठते हैं।

धर्म और राजनीति का आपस में संबंध होना अनिवार्य है, तभी एक आदमी सच्चा राजनीतिज्ञ होगा और लोगों के हित में काम करेगा। धर्म से हम लोग सदाचारी और प्रेममय बनते हैं, वहीं राजनीति का मुख्य काम है, लोगों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए उनके हित के लिए काम करना। धर्म और राजनीति साथ-साथ चलने चाहिए, तभी राजनीति भृष्टाचार से रहत होगी। जब यह दोनों एकसाथ नहीं चलते, तब हमें भृष्ट राजनीतिज्ञ और कपटी नेता मिलते हैं। लेकिन अगर यह साथ चलते हैं, तो एक धार्मिक नेता, जो सदाचारी और स्नेही है, अवश्य ही जनता के हित का ध्यान रखेगा और एक सच्चा राजनीतिज्ञ बनेगा एक सच्चा राजनीतिज्ञ केवल सदाचारी और स्नेही व्यक्ति ही हो सकता है, इसलिए उसे धार्मिक होना ही है।

इस समय की अगर हम बात करें, तो तमाम सवाल आरोप उठ रहे हैं। एक राजनीतिज्ञ को धार्मिक होना जरूरी है। धर्म के बिना समर्थ और सार्थक राजनीति नहीं हो सकती, हमारे राजनीतिज्ञ नेताओं को धर्म की पालना करनी होगी कहीं ऐसा

न हो कि धर्म की राजनीति की जाये। भारत देश जिस ने विश्व के सभी धर्मों को सत्य के रूप में स्वीकार किया हो। वह देश जो कभी सोने की चिड़िया हुआ करता था, जहाँ विश्व भर में सबसे ज्यादा भाषओं और धर्म में आस्था रखने वाले लोग रहते हों, जहाँ की एकता और अखण्डता इतिहास रचती हो, जहाँ की सभ्यता, संस्कृति, संस्कारों को दूसरे देशों में बहुत बड़ी मिसाल बताया जाता हो। वहाँ पर कुछ स्वार्थ नेताओं की नीति ने राजनीति का धर्म भुलाकर, अपनी ज़िम्मेदारी के कर्ज को अपने से अलग कर दिया है।

वर्तमान में राजनीति और धर्म को देखते हैं, तो अधिकतर यह अलग ही मिलते हैं, क्योंकि भूमंडलीकरण के दौर में सभी राजनेता स्वार्थी हैं। केवल स्वार्थ के लिए काम कर रहे हैं। उनको धर्म से कुछ लेना देना नहीं हैं। उन्होंने धर्म को अलग ही कर दिया है। आज के समय में सभी को अपनी वोट तक लेना देना है, उसके लिए चाहे कुछ भी करना पड़े। आज हम अक्सर देखते हैं कि नेताओं के बीच लड़ाई-झगड़े चलते हैं। अपने स्वार्थ के लिए और ऐसे राजनीतिज्ञ नेता हमारे देश को क्या देंगे। बर्बाद कर रहे हैं, हमें और हमारी आने वाली पीढ़ी को, आज हमें ऐसे नेताओं को निकालना होगा, इन बातों पर विचार विमर्श करना होगा और धर्म और राजनीति को एक करना होगा। कैलाश वाजपेयी अपने निबंध संग्रह *शब्द संसार* में संकलित निबंध 'धर्म और भूमंडलीकरण' में कहते हैं:

> मानवता के धर्म की फ़िक्र किसी को भी नहीं है। कहीं धर्म तो कहीं नस्लवाद की लड़ाई जारी है। भारत में धर्म और नस्लवाद की लड़ाई को नज़र अंदाज नहीं किया जा सकता देश की जनता की आँखें तरस गई हैं, इस बात के लिए कि कब जिस नेता को हम अपना बहुमूल्य वोट देके सत्ता तक पहुँचाया कभी वह जनता से किये गये वादों को पूरा करने हेतु सरकार से लड़ाई करता, कभी वह अपने

क्षेत्र की जनता के लिए सस्ती शिक्षा, बेरोजगारी स्वास्थ्य, बिजली, पानी जीवन सुरक्षा के मसले हल न होने के कारण अनशन करता। (167)

आज देश के हर कोनें में धर्म को लेकर बहस छिड़ी हुई है, इस लड़ाई में आज तक अनगिनत जाने जा चुकी हैं और न जाने और कितनी जाती रहेगी। आज सभी मानवता के लिए बड़ी-बड़ी बातें तो करते हैं, लेकिन केवल दिखावा करते हैं। कभी ईमानदारी से उसी मानवता की सेवा के लिए अपनी सोच बदलने की कोशिश की नहीं, क्योंकि हमारी मानसिकता में व्योहारवाद ही नहीं है। हम एक ऐसे माहौल में जीते हैं, जहाँ परम्पराओं को तोड़कर उस से आगे की सोचना हमारे आचरण में नहीं है। या फिर अन्धविश्वास की बंदिश से आज़ाद होना हमारे बस में नहीं है, यही कारण है कि आज हम अपने असली धर्म और उसकी परिभाषा को भूल गये हैं। आज धर्म और राजनीति अलग अलग इसलिए हैं, सभी को केवल आज स्वार्थ और पैसा चाहिए इसलिए आज हम अपनी अस्मिता को खो रहे हैं। हमारे देश के जो अनपढ़ लोग हैं, उनको लालच देकर नेता अपना स्वार्थ निकाल रहे हैं, और दूसरी और वह लोग भी मजबूर हैं, उनके पास है भी क्या, कोई उन्हें कुछ नहीं देता जो उनके लिए आता है, वह भृष्ट नेता ही खा लेते हैं। इन सब का निराकरण तभी होगा, जब हम अपनी नई पीढ़ी को ज्ञान देंगे, उनको यह बाते समझने-समझाने की आज आवश्यकता है। तभी धर्म और राजनीति एक साथ होंगे और हमें अपनी संस्कृति, सभ्यता पर पहले की तरह ही गर्व होगा। हमारा समाज व्यवस्थित होगा पुष्पित और पल्लवित होगा।

अब हमारे देश में राजनीतिक नेता चाहते हैं, धर्म को राजनीति से अलग रखा जाए। क्या ऐसा करने से देश का कल्याण होगा, हम सभी जानते हैं कि ऐसा करने से भृष्टाचार बड़ेगा। जिस राजनीति में धर्म नहीं है वह सच्चे अर्थों में शांति नहीं ला सकती है। राजनीति में धर्म का होना आवश्यक है और वह धर्म 'मानवधर्म' है। इसमें

हिन्दू, जैन, इसाई, मुसलमान, सिक्ख, बौद्ध का कोई प्रश्न नहीं, मानवता के नियमों पर चलकर, राष्ट्र की सेवा सच्चे अर्थ में की जा सकती है और देश के वासियों को सुखी बनाया जा सकता है। यह ऊपर जो बात की गई है, यह नियम किसी ख़ास धर्म के नहीं है। सब धर्मों में इनका उल्लेख हो सकता है, मगर कुदरती तौर पर यह मानवधर्म है। राजनीति में या सरकार के कामकाज में मानवधर्म के नियमों का पालन करना ही धर्मनिरपेक्ष सरकार बनाना है।

अत: हम यह कह सकते हैं कि धर्म और राजनीति, एक साथ चलकर हमारे समाज का कल्याण कर सकते हैं। कुछ लोगों ने अपने स्वार्थ के लिए धर्म को राजनीति से अलग रखा और इसका प्रभाव हमारे जीवन और समाज में आज देखने को मिल रहा है। हमारी आने वाली नई पीढ़ी, आज बर्बाद हो रही है। बहुत समस्याओं ने उन्हें बंधी बना दिया है। इसलिए साहित्य के द्वारा आज शोध कार्य हो रहे हैं और इससे आने वाली पीढ़ी को ज्ञान प्राप्त होगा, तभी यह सब मिट सकता है। जब हमें अपने वोट का सही प्रयोग करने का पता चल गया तब हमारा समाज व्यवस्थित होगा। जब राजनीतिज्ञ नेता धार्मिक होगा, वह अपना कार्य ईमानदारी से करेगा और राजनीति का जो उद्देश्य है, लोगों की आवश्यकता और उनके हित के लिए एक अच्छा नेता जो धार्मिक होगा वह कार्य करेगा।

4.1.5. धर्म और संस्कृति

भारतीय संस्कृति में ‘धर्म’ शब्द की अभिव्यक्ति अतिशय व्यापक रही है। धर्म के अन्तर्गत प्राय: उन नियमों का समावेश किया गया है, जिनसे व्यक्ति के अभ्युदय के साथ ही समाज की आधिभौतिक और आध्यात्मिक प्रगति की सम्भावना हो। इस प्रकार जीवन के प्रथम श्वास से लेकर, हमारे जीवन के अन्तिम श्वास तक के प्रत्येक क्षण में मानव किस प्रकार व्यवहार करे, अथवा उसके साथ दूसरे कैसा व्यवहार करें,

यह धर्म ही बतलाता है। ऐसी परिस्थिति में मानव धर्म के द्वारा पदे-पदे नियंत्रित है, पर धर्म का यह नियंत्रण मानव को दास बनाकर उसकी उन्नति में बाधक नहीं होता, अपितु धर्म सांस्कृतिक उतराधिकार के रूप में वह अमूल्य निधि है, जिसके सहारे अनायास ही कोई पुरुष पर्याप्त ऊँचाई तक अपने व्यक्तित्व का विकास कर लेता है। धर्म में प्राय उन सिद्धांतो का समावेश दिया गया है, जिसका ज्ञान समाज के महापुरुषों को सत्य का प्रयोग करते समय हुआ था।

वैदिक धर्म ग्रन्थों में बताया गया है, मानव संस्कारों के द्वारा अपनी योग्यता किस प्रकार बढ़ाए, चार आश्रमों में अपने व्यक्तित्व का विकास किस प्रकार करें, चारों वर्णों के लोग सामाजिक सुव्यक्स्था के लिए कैसा व्यवहार करें, कैसा भोजन और पान व्यक्तित्व के विकास के लिए उपयोगी होता है, शरीर की शुद्धि कैसे की जाए, कैसे घर, गाँव या प्रदेश में रहा जाए, कृषि, पशु पालन और व्यापार आदि को किस प्रकार करें, राजा न्यायालय और युद्ध-भूमि में कैसा आचरण करे, प्रजा-पालन की विधि क्या है, शिल्प और कलाओं के उच्च सिद्धान्त क्या है। इन विषयों के अतिरिक्त देवताओं से सम्बद्ध कर्मकाण्ड और आचार तथा स्वर्ग-नरक की चर्चा धर्म-ग्रन्थों में मिलती है। इसी तरह धर्म सांस्कृतिक प्रक्रिया में विशिष्ट योग प्रदान करता है, क्योंकि मानवीय सिद्धान्त केवल मानव मन को ही परिष्कार नहीं करते, अपितु मनुष्य को आत्मिक उत्कर्ष भी प्रदान करते हैं।

देवेंद्र स्वरूप की पुस्तक *संस्कृति एक नाम-रूप अनेक* के अनुसार - जिस प्रकार किसी राक्षस के प्राण एक तोते में बसते थे, उसी प्रकार भारत के प्राण 'धर्म' में छिपे हैं। धर्म को भारत से छीन ले तो भारत मर जाएगा। यह धर्म ही है, जिसका संदेश विश्व को देने के लिए सैकड़ों वर्ष तक अत्याचारों को सहने, लगभग हजार वर्ष तक विदेशी शासन में रहने और विदेशियों द्वारा पीड़ित होने पर भी यह देश आज तक जीवित रहा है। अभी भी उसके जिंदा रहने का कारण

यही है, वह सदैव की भांति आज भी ईश्वर का आश्रय लिए हुए हैं, धर्म और आध्यात्मिकता के अमूल्य भंडार की रक्षा करता आया है। (1)

इस प्रकार कहा जा सकता है, संस्कृति और धर्म में गहरा सम्बन्ध है। संस्कृति के विकास के साथ-साथ धर्म का उन्नयन होता है और धर्म के उन्नयन के साथ संस्कृति समृद्ध होती है। भारत धर्म में जीता है, धर्म के लिए जीता है और धर्म ही भारत की आत्मा है। भारतीय संस्कृति व्यक्ति-समाज राष्ट्र के जीवन का सिंचन कर, उसे पल्लवित-पुष्पित बनाने वाली अमृत सरिता है। भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है। कई भारतीय विद्वान तो भारतीय संस्कृति को विश्व की सबसे प्राचीन संस्कृति मानते हैं। भारतीय संस्कृति जीवन दर्शन, व्यक्तिगत और सामुदायिक विशेषताओं, भूगोल, ज्ञान-विज्ञान के विकास क्रम, विभिन्न समाज, जातियों के कारण बहुत विशिष्ट है। यह भिन्नता-विभिन्नता सहज और स्वभाविक है। हमारी यह संस्कृति सार्वभौमिक सत्य पर खड़ी है और इसी कारण वह सब ओर गतिशील होती है। किसी भी संस्कृति की अमरता, इस बात पर निर्भर करती है कि वह कितनी विकासोन्मुखी है। जिस संस्कृति में युग की मांग के अनुसार विकसित और रूपांतरित होने की क्षमता नहीं होती, वह पिछड़ जाती है। भारतीय संस्कृति आत्मा को ही मुख्य मानती है। शरीर और मन की शुद्धि भी आवश्यक है।

भारतीय संस्कृति का विकास धर्म का आधार लेकर हुआ है। इसीलिए उसमें दृढ़ता है। हमारी संस्कृति व्यक्ति को व्यक्तित्व देती है और उसे महान कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करती है, किन्तु व्यक्तित्व का चरम विकास यह सामाजिक स्तर पर ही स्वीकार करती है। अन्य देशों की संस्कृतियाँ समय के साथ-साथ नष्ट होती रही हैं, किन्तु भारतीय संस्कृति आदिकाल से ही अपने परंपरागत अस्तित्व के साथ अमर बनी हुई है। इसकी उदारता तथा समन्वयवादी गुणों ने इसे अन्य संस्कृतियों को

समाहित तो किया है, किन्तु अपने अस्तित्व के मूल को सुरक्षित रखा है। भारतीय संस्कृति का संरक्षण कैसे किया जाए, भारत संभवत: विश्व का इकलोता देश होगा, जहाँ अपनी कला संस्कृति को बचाने, संजोने और सहेजने को लेकर एक तरह का अपेक्षा का भाव दिखाई देता है। भारतीय संस्कृति को और भी उन्नत बनाने के लिए यह आवश्यक है कि हमारे जो दोष संस्कृति में घर करते गए, हम उन्हें दूर करने का प्रयास करें, तभी सच्चे रूप में उन्नति हो सकती है।

वर्तमान समय में हमें अपनी संस्कृति और धर्म के प्रति सुचेत होना होगा और अपनी संस्कृति को बनाए रखने के लिए सच्चे रूप में कार्य करना होगा, तभी हमारा समाज सुरक्षित हो सकता है। 21वीं सदी के निबंधकारों ने भी वर्तमान में हमारे समाज में जो चल रहा उसको देखा और अपनी कलम इन समस्याओं पर चलाकर साहित्य के द्वारा हमें यह ज्ञान दिया है। इसी तरह संस्कृति को बनाये रखने के लिए, कृष्णबिहारी मिश्र अपने निबंध संग्रह *अराजक-उल्लास* में कहते हैं:

> आज का युग विज्ञान का युग है। हमें नवीन वैज्ञानिक प्रयोगों से लाभ उठाकर देश की उन्नति करनी है। यह जागरण का युग है, जिसमें हमें बड़ी सतर्कता से आगे बढ़ना है। संस्कृति ही किसी देश, समाज या जाति के प्राण है। वहीं से इन्हें जीवन मिलता है। किसी भी देश की सामाजिक प्रथाएँ, व्यवहार, आचार-विचार, पर्व, त्यौहार, सामुदायिक जीवन का सम्पूर्ण ढांचा ही संस्कृति की नींव पर खड़ा रहता है। यह संस्कृति की धारा जिस दिन टूट जाती है, उसी दिन से उस समाज का बाह्य ढांचा भी बदल जाता है। संस्कृति के नष्ट होते ही किसी सभ्यता का भवन ही लड़खड़ा कर गिर जाता है। (121)

वर्तमान में हमें अपनी संस्कृति को संरक्षण में लाने के लिए अपनी धार्मिक परंपराओं के बारे में जानना होगा, अपनी पुश्तैनी भाषा को बचाना होगा, परंपरागत

व्यंजनों की विधि अगली पीढ़ी को सौंपनी होगी, संस्कृति की कला और तकनीकी को दूसरों से शेयर करना होगा, समुदाय एवं समाज के अन्य सदस्यों के साथ समय बिताना होगा, सामाजिक एवं राष्ट्रीय महत्व के उत्सवों का प्रबंधन और सहभागिता करना होगा, संस्कृति पर गौरव करना और उसे अपने आचरण में उतारना होगा। यह संस्कृति के संरक्षण के लिए हमें, इन बातों को अपने आचरण में लाना होगा।

अनेक विभिन्नताओं के बाद भी भारत की पृथक सांस्कृतिक सत्ता रही है। हिमालय पूरे देश के गौरव का प्रतीक रहा है। गंगा, यमुना, और नर्मदा जैसी नदियों की स्तुति यहाँ के लोग प्राचीनकाल से करते आ रहे हैं। राम, कृष्ण और शिव की आराधना यहाँ सदियों से की जा रही है। सभी में भाषाओं की विविधता जरूर है फिर भी संगीत, नृत्य, और नाटी के मौलिक स्वरूपों में आश्चर्यजनक समानता है। यहाँ की संस्कृति में अनेकता में एकता भी स्पष्ट रूप में झलकती है। भारतीय संस्कृति स्वभाविक रूप से शुद्ध है, जिसमें प्यार, सम्मान दूसरों की भावनाओं का मान-सम्मान और अहंकार रहित व्यक्तित्व अंतर्निहित है। गुरु का सम्मान भी हमारी संस्कृति का ही एक रूप कहा जा सकता है। भारतवर्ष में शुरू से ही गुरु का सम्मान किया जाता है। गुरु द्रोणाचार्य के मांगने पर, एकलव्य ने अपने हाथ का अंगूठा दान में दे दिया था। भारतीय संस्कृति के अनुसार गुरु का स्थान और सम्मान भगवान से भी बढ़कर होता है। बड़ों के लिए आदर और सम्मान भारतीय संस्कृति का एक बहुत ही बड़ा सिद्धान्त है। बड़े खड़े हों उनके सामने ना बैठना, बड़ों के आने पर स्थान को छोड़ देना, उनको सबसे पहले खाना परोसना, जैसी क्रियाओं को अपनी दिनचर्य में देखा जा सकता है, जो हमारी संस्कृति का एक अभिन्न अंग है। हमारी संस्कृति में हम देखते हैं, युवा लोग कभी भी अपने से बड़ों का नाम लेकर संबोधन नहीं करते हैं। सभी बड़ों, पवित्र पुरषों और महिलाओं का आशीर्वाद प्राप्त करने और उन्हें मान-सम्मान देने के लिए, उनके

चरणों को स्पर्श करते हैं। छात्र अपने शिक्षक के पैर छूते हैं। मन, शरीर, वाणी, विचार, शब्द और कर्म में शुद्धता हमारे लिए बहुत महत्वपूर्ण है।

कर्मक्षेत्र को आधार बनाकर चलने वाली संस्कृति सदैव जीवित रहती है और अधिक सामर्थ्यवान होती है। वह व्यक्ति व समाज के मूल को ही प्रेरणा देकर, संपूर्ण बाह्य ढांचा बदल देती है। हमारी संस्कृति को सच्चे अर्थों में मानव-संस्कृति कहा जा सकता है। मानवता के सिद्धान्तों पर स्थित होने के कारण ही तमाम आघातों के बावजूद, यह संस्कृति अपने अस्तित्व को सुरक्षित रख सकी है। आज हमें भारतीय संस्कृति के भविष्य को उज्ज्वल बनाने के लिए, अपने समस्त साम्प्रदायिक वैमनस्यों को भुलाकर सहिष्णु बनाना होगा। भारतीय संस्कृति की उदार प्रवृति ही हमारी संस्कृति के भविष्य को समुज्ज्वल बना सकती है। भारतीय संस्कृति एक विचार, एक भाग अथवा जीवन मूल्य है, जिनको जीवन में अपनाकर जीवन के विकास को प्राप्त किया जा सकता है। भारतीय संस्कृति का मुख्य उद्देश्य, हमारा सामूहिक विकास करना है। भारतीय संस्कृति एक महान जीवनधारा है, जो प्राचीनकाल से सतत प्रवाहित है। इस तरह हमारी संस्कृति स्थिर एवं अद्वितीय है, जिसके संरक्षण की जिम्मेदारी वर्तमान पीढ़ी की है। इसकी उदारता और समन्वयवादी गुणों ने अन्य संस्कृतियों को समाहित तो किया है, किन्तु अपने अस्तित्व के मूल को सुरक्षित रखा है। *भारतीय धर्म और संस्कृति* पुस्तक में रामजी उपाध्याय कहते हैं – “एक राष्ट्र की संस्कृति, उसके लोगों के दिल और आत्मा में बस्ती है। सर्वांगीनता, विशालता, उदारता और सहिष्णुता की दृष्टि से अन्य संस्कृतियों की अपेक्षा भारतीय संस्कृति अग्रणी स्थान रखती है।”(66)

4.1.6. धर्म एकता का माध्यम

लोगों को संगठित रखने में धर्म की निश्चित रूप से महत्वपूर्ण भूमिका रही है। धर्म की वजह से प्राचीनकाल से ही कई प्राचीन सभ्यताएँ अपने अस्तित्व के लिए संघर्षरत रही हैं। धर्म किसी भी व्यक्ति को व्यक्तिगत, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक सभी स्तरों पर प्रभावित करता है और साथ ही धर्म किसी भी समाज में एकजुटता का साहस भी दिलाता है। धर्म की वजह से ही लोगों की विचारधारा में समानता देखने को मिलती है और एक धर्म के लोग विश्वस्तर पर एक दूसरे से जुड़ाव महसूस करते हैं, और सामूहिक उन्नति के लिए अग्रसर होते हैं। एक तरह की सोच, एक तरह की जीवन पद्धति एवं एक ही तरह के जीवन मूल्यों का विस्तार का एक सशक्त माध्यम धर्म है। धर्म के अविर्भाव का मूल उद्देश्य ही लोगों के बीच एकता को बढ़ाना है। लोगों के रहन-सहन एवं जीवन जीने के तरीके, आहार-विहार, आपस में एक दूसरे के साथ रिश्ते, ईश्वर में विश्वास, पूजा या ईबादत की पद्धति आदि का विकास हुआ, जिन्हें व्यापक स्तर पर धर्म की संज्ञा दी जाने लगी। इस प्रकार समय के साथ-साथ विश्व में बहुत धर्मों की स्थापना हो गई और विश्व के सभी धर्मों के मूल में एकता की भावना ही थी। धर्म एकता का ही माध्यम है, लोगों के बीच के मतभेद को नष्ट करना, लोगों का एक सूत्र में बंधे रहना और एक अच्छे समाज का निर्माण करना ही धर्म का मुख्य उद्देश्य है। इस तरह समाज में धर्म की उत्पति का आधार एकता को माना जाता है। जिसके द्वारा लोग संगठित होकर अपने समाज के हितों के प्रति सोचते हुए, अपने समूह की बेहतरी की दिशा में कदम बढ़ाते हैं।

धर्म हमारी आस्था और विश्वास पर आधारित होता है। धर्म कभी भी किसी के साथ भेद-भाव नहीं करता है। इसीलिए एकता का सबसे बड़ा माध्यम धर्म को माना जाता है। धर्म सभी को एक जैसा ज्ञान देता है। सभी को विश्वास और ईश्वर की पूजा

करने को कहता है। बड़ों की आज्ञा करना, आदर से उनका सम्मान करना, धर्म सभी को बतलाता है। आज जो समय चल रहा है, इसमें तो एकता का होना बहुत आवश्यक है। आज बहुत सी समस्याओं ने हमें प्रभावित किया है। हमारी नई पीढ़ी को इससे परिचित कराना है और उनको इससे छुटकारा भी दिलाना है। यह तभी संभव है, जब हम सब एक साथ एकजुट होकर ईमानदारी से अपने देश के लिए कुछ करेंगे। कोई भी कार्य एकता से किया जाये तो वह सफल आवश्यक होता है। हमारे वर्तमान के निबंधों में भी हमें एकता के साथ रहने का संदेश मिलता है। डॉ. रामदरश मिश्र ने कहा है कि जैसे नदियाँ सभी के साथ एक जैसा व्यवहार करती हैं, वैसे हमें भी उनसे यह ज्ञान लेना है कि हम सभी भी एकता से अपना कार्य करें और अपने समाज को कुछ नया देने का प्रयास करें और हमारी आने वाली पीढ़ी को कुछ नया दे सकें और उनको भी एकता के साथ रहने का संदेश दें। क्या नदियाँ कभी किसी के साथ भेदभाव करती हैं, क्या वह जब अपना पानी देती है, तो किसी जाति या विशेष समुदाय को देती है, नहीं वह सभी हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख और सभी जाति को एक साथ पानी देती है। जब कुरोपित होती है, तो भी सभी के लिए, यह बात मिश्र के निबंध 'नदियाँ' में स्पष्ट होती हैं। उनका यह निबंध हमें एकता का उद्देश्य देता है, जिसको अपनाकर हम अपना जीवन बदल और व्यवस्थित बना सकते हैं और एकता के साथ रह सकते हैं। एकता की कभी भी हार नहीं होती। जब हम सब मिलकर कोई कार्य करते हैं, तो हम सफल आवश्यक होते हैं। इसमें कोई आश्चर्य नहीं हैं।

इनके अतिरिक्त श्यामसुन्दर दुबे ने भी अपने निबंधों में एकता का संदेश दिया है। हमें एकता से रहना चाहिए। उन्होंने पीपल के वृक्ष का उदाहरण देकर हमें एकता और सच बोलने का सन्देश दिया है। उनके निबंध 'पीपल धरु ध्यान सो धरई' में बताया है कि प्राचीन समय में लोग किस तरह एकता और सच का साथ देते थे, पीपल के वृक्ष

के नीचे सभी गाँव के लोग एकता से एक साथ बैठते थे और पीपल के वृक्ष के नीचे गाँव के अहम फैसले लिए जाते थे, क्योंकि उस जगह पर झूठ बोलना बहुत बड़ा अभिशाप माना जाता है। आज ऐसा कहीं देखने को नहीं मिलता, क्योंकि सभी अपने कार्य में इतने अस्त-व्यस्त हैं। उनके पास समय नहीं है, सभी को केवल माया चाहिए और दूसरी ओर आज ऐसा पीपल का वृक्ष कहीं देखने को नहीं मिलता। धर्म एकता का ही माध्यम है, जब भी आस्था और विश्वास की बात होती है, तो क्या धर्म कभी किसी के साथ भेद-भाव करता है, कभी नहीं, धर्म सबको एक जैसा ज्ञान देता और एक जैसा व्यवहार करता है।

डॉ. श्रीराम परिहार अपने निबंध संग्रह *परंपरा का पुनराख्यान* में कहते हैं कि भारत विश्व के समस्त देशों में से एक है जो प्राचीनतम राष्ट्र है। भारत की संस्कृति और एकता ही उसकी प्राणतत्व है। राष्ट्र का चैतन्य उसकी संस्कृति से ही उद्‌भूत होता है। अर्थात भारत राष्ट्र की संस्कृति का गहरा संबंध धार्मिकता और एकता से भी है। यह हमारी एकता ही भारत की संस्कृति की धारक भी है और धार्मिक एकता ही भारत को विश्व के अन्य देशों से अलग पहचान देती है। (32)

श्रीराम परिहार ने यहाँ साफ़ कहा है, धर्म और एकता ही हमारी संस्कृति को समृद्ध बनाने में बहुत बड़ा योगदान देते हैं। इस तरह हम यह बात कभी नहीं भूल सकते कि हमारा धर्म हर जगह पर, हमें एकता बनाए रखने के लिए प्रोत्साहित करता है। किसी भी धार्मिक संस्था में सभी के साथ एक जैसा व्यवहार किया जाता है। चाहे वह सिक्ख धर्म, हिन्दू, ईसाई, या मुस्लिम हो। हर जगह पर लंगर सभी को एक साथ बैठकर मिलता है, चाहे वह राजा हो, चाहे कोई भिखारी, यहाँ से ही हमें एकता का संदेश मिलता है। हमारा कोई भी धर्म हो सभी में किसी का कोई पक्ष नहीं लिया

जाता, इसलिए हमारी संस्कृति आज जिन्दा है, इतनी समस्याओं के बीच भी हमारी संस्कृति की जिजीविषा अगर है, तो यही कारण है कि भारतीय संस्कृति आज भी है। समय के साथ प्रभावित अवश्य हुई है, लेकिन अभी भी समय है, इसको हम पहले की तरह ही जिन्दा रखें और अपनी संस्कृति, एकता, संस्कार पर पहले की तरह गर्व करें।

धर्म आपसी सद्भाव एवं एकता का प्रतीक है। क्योंकि किसी धर्म विशेष को मानने वाले लोग, एक ही प्रकार की जीवन पद्धति का पालन करते हैं। धर्म लोगों को संगठित करने का कार्य करता है और भाईचारे की भावना के साथ समाज को समग्र विकास के पथ पर अग्रसर करता है। सामाजिक एकता को बढ़ावा देना, विश्व के सभी धर्मों का मुख्य उद्देश्य है। धर्म का उद्देश्य अपने अनुयायियों को जीवन जीने के लिए, जरूरी सभी गुणों से परिपूर्ण करते हुए, एक ऐसा आधार प्रदान करना है, जिससे वह एकता की भावना से संगठित होकर समाज की भलाई के लिए कार्य कर सकें। इससे हमें यही संदेश मिलता है कि धर्म हमें एकता का ही पाठ पढ़ाते हैं। किसी भी पंथ विशेष या सम्प्रदाय को मानने वाले लोगों को एक साथ जोड़कर रखने में धर्म की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। विश्व के प्राचीनतम धर्मों से ही प्रेरणा लेकर कई नए धर्मों की स्थापना हुई।

इन सभी पंथों को मानने वाले लोगों में व्यापक स्तर पर, विभिन्न मुद्दों पर एकजुटता परिलक्षित होती है। धार्मिक एकजुटता से ही कोई भी समाज प्रगति के राह पर चल सकने में समर्थ होता है। यही वजह है, हर राष्ट्र अपनी सीमाओं के भीतर कौमी एकता को प्रोत्साहित करते हैं। अगर लोगों के बीच एकता और सामंजस्य न हो, तो धर्म की परिकल्पना ही बेमानी हो जाती है। हमारे समाज में एकता को बनाए रखने में धर्म की बहुत अहम भूमिका होती है। धर्मपरायणता का पालन किसी भी समाज के विकास एवं उसके नागरिकों के कल्याण के लिए अनिवार्य है। जैसे-जैसे

दुनिया में सभ्यता का विकास हुआ, धर्म की आवश्यकता महसूस होने लगी क्योंकि हर समाज को संचालित करने के लिए, एक आदर्श संचार संहिता का पालन किया जाना जरूरी था। इस आदर्श आचार संहिता अर्थात धर्म का मुख्य उद्देश्य मानव को सही तरीके से जीवन जीने के लिए प्रेरित करना है। धार्मिक समरसता एवं एकता की वजह से ही समाज के सभी लोगों में साझा-संस्कृति का विकास हुआ है। ऐसी स्थिति को दूसरे शब्दों में सामाजिक एकता भी कहते हैं।

भारत जैसे धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र में जब राष्ट्रहित की भावना से लोग एक साथ खड़े होते हैं, तो पूरे विश्व की निगाहें भारत की धार्मिक एकता की मिसाल देती हैं। वर्तमान में कुछ ऐसी स्थितियां भी समय-समय पर धार्मिक कट्टरवाद एवं धार्मिक उन्माद की भावना को बढ़ावा देने की कोशिशें भी जारी रही हैं, लेकिन बहुमत द्वारा ऐसी शक्तियों को विफल किये जाने का प्रयास भी लगातार जारी है। राष्ट्रधर्म हमें यह सिखाता है कि पहले हम भारतीय हैं, फिर उसके बाद ही हमारा कोई अपना धर्म है, जो हमारी जीवन पद्धति को निर्धारित करता है। भारत जैसे विशाल देश में कश्मीर से कन्याकुमारी तक अगर हम एकजुट हैं, तो यह धर्म के कारण ही हैं। भारत की ही तरह पूरे विश्व के लोगों को एकजुट रखने में भी धार्मिक मूल्यों का अहम योगदान है, क्योंकि सभी धर्म मनुष्य को एक सूत्र में बंधने का कार्य करते हैं। हमारे धार्मिक संत कवि कबीर एवं रविदास ने भी धर्म की व्याख्या, सभी इंसानों की भलाई एवं आपसी भाईचारे एवं एकता के प्रतीक के तौर पर की है। इसी तरह अत: हम यह कह सकते हैं कि कोई भी धर्म हो वह एकजुट रहने का ज्ञान हमें देता है। किसी भी धर्म में किसी व्यक्ति या संस्था में धर्म कभी किसी के साथ भेद-भाव नहीं करता। इस तरह धर्म एकता का माध्यम है। यह बिलकुल सही बात है। डॉ. श्यामसुन्दर दुबे ने अपने निबंध *जहाँ देवता सोते हैं* में कहा है- “धर्म आस्था और विश्वास पर आधारित होता है, जिससे हमें एकता बनाये रखने का भी उपदेश मिलता है।”(70)

4.2. नीति पक्ष

4.2.1. नीति का अर्थ स्वरूप और परिभाषा

उचित समय और उचित स्थान पर उचित कार्य करने की कला को नीति कहते हैं। नीति सोच समझकर बनाये गये सिद्धान्तों की प्रणाली है, जो उचित निर्णय लेने और सम्यक परिणाम पाने में मदद करती है। नीति में अभिप्राय का स्पष्ट उल्लेख होता है। नीति को एक प्रक्रिया या नयाचार की तरह लागू किया जाता है। नीति काव्य का उद्भव विश्व साहित्य के प्राचीनतम ग्रन्थ 'ऋग्वेद' से माना जाता है। इसके साथ ही ब्राह्मण ग्रन्थों, उपनिषदों, रामायण, महाभारत में धर्म और नीति का सदुपदेश सम्मिलित है। इन नीति ग्रन्थों में तत्व ज्ञान और वैराग्य का सुन्दर सन्निवेश है। इनमें प्राय: सभी धार्मिक विश्वासों का उल्लेख और उपदेश है। इन नीति ग्रन्थों में लोक जीवन के व्यवहार में आने वाली बातों पर, विचार करने के साथ ही साथ जीवन की असारता का निरूपण कर, मानव मात्र को 'मोक्ष' के साधन का उपदेश भी है।

नीति का अर्थ

द्वारिका प्रसाद शर्मा के ग्रन्थ *संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ* के अनुसार- नीति शब्द नीत से बना है। नीत- लाया गया, पहुँचाया गया। पाया गया, प्राप्त। व्यय किया गया, बीता हुआ। भली-भाँति आचरित। किया हुआ, धन संपति, गल्ला। नीति- ले जाने की क्रिया। पथ-प्रदर्शन, चाल-चलन। शीत, युक्ति, उपाय। राज्य की रक्षा के लिए काम में लायी जाने वाली युक्ति, राजाओं की चाल जो वह राज्य की प्राप्ति अथवा रक्षा के लिए चलतें हैं। आचार पद्धति, लोक समाज के कल्याण के लिए निर्दिष्ट किया हुआ आचार-व्यवहार। प्राप्ति, दान, सम्बन्ध, सहारा। कुशल,- ज्ञ,- निष्ठा,- विद – नीति जानने वाला। घोष – बृहस्पति की गाड़ी का नाम।

दोष – नीति सम्बन्धी त्रुटि या भूल। बीज – षडयन्त्र का उदगमसथल – व्यक्तिक्रत – राजनीति या सामाजिक नीति के नियमों को तोड़ना। आचार-पद्धति में भूल, नीति में भूल। शास्त्र – वह शास्त्र जिसमें देश काल और पात्र के अनुरूप व्यवहार करने के नियमों का निरूपण किया गया हो। वह शास्त्र जिसमें मनुष्य समाज के हित के लिए देश, काल और पात्र के अनुसार आचार, व्यवहार प्रबन्ध एवं शासन का विधान हो। (611)

वामन शिवराम आप्टे की पुस्तक *संस्कृत हिन्दी कोश* के अनुसार- नीति- (स्त्री) (नी + क्तिन) - आचरण, चालचलन, व्यवहार- कुशलता, निर्देशन, दिग्दर्शन, प्रबन्ध, शालीनता। (550)

नीति की परिभाषा

हिन्दी शब्द सागर ग्रन्थ में नीति की परिभाषा देते हुए डॉ. रामचन्द्र वर्मा हिन्दी में व्यवहार के ढंग, लोक व्यवहार के आधार, लोकाचरण की पद्धति, औचित्य, योजना तथा राजनीति आदि के अर्थ में नीति की व्याख्या की है। (566)

हिन्दी साहित्य कोश में डॉ. राधाकृष्णन के अनुसार- कोई भी आचरिक सिद्धान्त, जो मानव आचार और परम सत्य के सम्बन्ध का निरूपण करता है, नीति कहलायेगा। (97)

संस्कृति काव्य में नीति तत्व ग्रन्थ में नीति की परिभाषा देते हुए गंगाधर ने कहा है कि- मानव समाज को श्लाघनीय एवं सुव्यवस्थित पथ पर अग्रसर करने तथा उसके प्रत्येक व्यक्ति को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सम्यक एवं सुगमता से उपलब्धि करने हेतु जिन विधि अथवा निषेधात्मक, वैयक्तिक एवं सामाजिक

नियमों का विधान देश, काल एवं पात्र को लक्ष्य रखकर बनाया जाता है, वही नीति है। (13)

डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने अपनी पुस्तक *हिन्दी साहित्य कोश* में नीति को इस प्रकार परिभाषित किया है- समाज को स्वस्थ एवं संतुलित पथ पर अग्रसर करने एवं व्यक्ति को अर्थ, धर्म, काम तथा मोक्ष की उचित रीति से प्राप्ति करने के लिए जिन विधि-निषेध मूलक, सामाजिक, व्यावहारिक, आचरिक धार्मिक तथा राजनीतिक नियमों का विधान देश, काल और पात्र के संदर्भ में किया जाता है, जिसे नीति शब्द से अभिहित करते हैं। (420)

डॉ. रामदुलारी देवी ने अपनी पुस्तक *मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में नीति-तत्व* में कहा है कि- नीति का तात्पर्य सदाचार से है, जिससे यह निश्चित किया जाता है कि जीवन को सुचारू रूप से व्यतीत करने के लिए कौन से कार्य को करना चाहिए और किसे छोड़ देना चाहिए। वे सद आचरण जिससे देश, समाज तथा व्यक्ति की उन्नति हो, उसे नीति कहते हैं। (10)

तुलसीकाव्य में नैतिक मूल्य में नीति के स्वरूप को स्पष्ट करने में डॉ. चरणदास शास्त्री का प्रयास स्तुत्य है। उनके अनुसार- देशकाल तथा पत्रानुसार समाज की प्रगतिपूर्वक व्यक्ति के एहिक तथा अमानुषिक अभ्युदय के लिए मान्यता प्राप्त आभ्यन्तर एवं बाह्य विधि-निषेध मूलक आचार-विधान का नाम ही नीति है। (27)

तुलसी का मानस ग्रन्थ में डॉ. मुंशीराम शर्मा ने नीति को जीवन के विविध क्षेत्रों का सम्पर्क सुखद बनाने वाली पद्धति के रूप में स्वीकार किया है। नीति शब्द का अर्थ है- वह पद्धति का मार्ग जिस पर चलकर जीवन में वैयक्तिक,

व्यावहारिक, सामाजिक, राजनीतिक आदि विविध क्षेत्रों का सम्पर्क सुखद बनाया जा सकता है। (168)

इस तरह सभी विद्वानों का दृष्टिकोण विभिन्न प्रकार का है, सभी ने अपने अपने विचार नीति को परिभाषित करने के लिए अपने ग्रन्थों में व्यक्त किये हैं। नीति वही है, जो हम व्यवहार करते हैं। उचित समय और उचित स्थान पर, उचित कार्य करने की कला को ही नीति कहते हैं। नीति का मतलब यही है, हमें अपना कार्य ईमानदारी से करना चाहिए, तभी हम सफलता पा सकते हैं। जब कभी भी हम स्वार्थ के लिए केवल कार्य करते हैं, तो हमें सफलता प्राप्त नहीं होती है। हर आदमी अपने जीवन काल में किसी के भी साथ कैसा व्यवहार करता है, यही उसकी नीति है। हमें यहाँ पर नीति से यही संदेश लेना है कि हमें सदैव ही ईमानदारी के साथ अपना कार्य करना चाहिए, किसी के भी साथ बुरा व्यवहार नहीं करना चाहिए।

वर्तमान में भी हिन्दी निबंधकारों ने अपने निबंधों में बहुत सी समस्याओं पर चोट की है, चाहे वह बाज़ारवाद हो, पर्यावरण हो, हमारा व्यवहार यानी नीति हो, भक्ति और दर्शन हो, हमारी संस्कृति को क्षति पहुँचाने वाली सभी समस्याओं पर विचार किया गया है। जिनका अध्ययन करने पर यह सभी समस्याओं का ज्ञान होता है, प्राचीन समय और आज के समय में कितना अंतर आ चुका है। यह सभी का ज्ञान हमें वर्तमान की रचनाओं को पड़ने से मिलता है। हमारा यहाँ पर यही उद्देश्य है कि यह समस्याओं पर चर्चा करते हुए, नई पीढ़ी को यह बातों का ज्ञान करवाना और खुद भी इस पर चरितार्थ करना, तांकि हम सभी मिलकर एक अच्छे समाज की स्थापना करें और पहले की तरह एक साथ रहें। आधुनिक होना बुरी बात नहीं है, हमारा जीवन सौ वर्ष पहले जैसा था, आज भी वैसा रहे, ऐसा कोई नहीं चाहता, लेकिन कुछ बिन्दु ऐसे हैं, जिनको ध्यान में रखकर हमें नये साधनों को अपनाना है। जिससे हमारी भावनाएँ,

हमारी संस्कृति भी बनी रहे और हम अच्छे साधनों का प्रयोग करके सुखद जीवन भी बतीत कर सकें।

समय चाहे आज का हो चाहे पहले का, ईमानदारी का महत्व और जरूरत तब भी उतनी थी और आज भी उतनी है। आज भले यह माना और कहा जाता हो ईमानदार होना इतना आसान कार्य नहीं है, ईमानदार व्यक्ति को आज के युग में कोई सुकून से नहीं रहने देता। लेकिन हम सब यह अच्छी तरह जानते हैं कि जितना सुकून और आराम ईमानदारी में होता है, उतना किसी भी और स्थिति में नहीं होता। इसलिए हमें अच्छा व्यवहार करना चाहिए और अपना कार्य ईमानदारी के साथ करना चाहिए, तांकि कभी भी किसी मानव को हम ठेस न पहुँचाये। अच्छी नीति हमारी होगी तो सदैव सफलता हमारे कदमों में रहेगी।

4.2.2. अंधविश्वास

अन्धविश्वास का शाब्दिक अर्थ होता है, आँखें मूंदकर विश्वास कर लेना या बिना जाने समझे विश्वास करना। इससे यह तत्पर्य निकाला जा सकता है कि किसी विषय को जाने समझे बिना विश्वास कर लेना संक्षिप्त में अन्धविश्वास कहलाता है। सामाजिक तौर पर पुराने रूढ़िवादी विचारों से प्रभावित होकर किये जाने वाले कार्य, जिसमें कारण अज्ञात हो, हम अन्धविश्वास कहते हैं। आज 21वीं सदी में भी देश में अनेक लोग अन्धविश्वास पर विश्वास करते हैं। ऐसे लोग अक्सर कुछ पाखंडी साधुओं, बाबाओं, तांत्रिकों के बहकावे में आकर अपना धन और इज्जत गवा बैठते हैं। देश में महलाएँ अधिक अन्धविश्वास की शिकार हैं। हमें इस विषय के बारे में जानना बहुत आवश्यक है और आने वाले समय में इससे छुटकारा पाना बहुत आवश्यक है।

हमारे देश में आज भी बहुत लोग ऐसे गाँव और गरीब हैं, जो शिक्षित नहीं है। वही लोग अधिकतर इसकी चपेट में आते हैं। जिनको इसका ज्ञान नहीं है और कुछ

पाखंडी लोग उनसे उनके अच्छे के लिए बहुत पैसा बटोरते हैं। अधिकतर महलाएँ पुत्र, सन्तान पाने के लिए बाबा के चक्कर लगाती हैं। ऐसे बाबा भोली-भाली औरतों से मोटी रकम वसूलते हैं, कई बार उनकी इज्जत पर भी खतरा उठ जाता है। इसलिए हमें कभी भी ऐसे पाखंडी साधुओं के बहकावे में नहीं आना चाहिए, यह तभी संभव होगा, जब हमारी आने वाली पीढ़ी को इन बातों का ज्ञान होगा और वह अपने परिवारों को भी यह ज्ञान देंगे। अंधविश्वास को लेकर जब हमारे मन में भैय आ जाता है, तभी हम इसमें फसते हैं, पाखंडी लोग इसका अनुचित लाभ उठाते हैं।

आज भी हमारे समाज में अनेक लोग अंधविश्वास को मानते हैं। बिल्ली द्वारा रास्ता काटने पर रुक जाना, छीकने पर काम का न बनना, उल्लू का घर की छत पर बैठना अशुभ मानना, बायीं आँख फड़कने को अशुभ मानना, ऐसी अनेक धारणाएँ हमारे समाज में आज भी मौजूद हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि अनपढ़ लोगों के साथ ही हमारे समाज के पढ़े लिखे लोग भी अन्धविश्वास में पड़ जाते हैं। जब हमारे मन में भैय पड़ जाता है, तो हम इसकी लपेट में आ जाते हैं। लेकिन हमें इन बातों को आज समझना-समझाना है और सभी को यह शिक्षा देनी है, तांकि आने वाले समय में हम ऐसी स्थितियों से छुटकारा पा सकें। कुछ पाखंडी साधु कुछ कामों के लिए मोटा पैसा बटोरते हैं- मनचाहा प्यार, मनचाही शादी, पारिवारिक क्लेश, झगड़ा खत्म करने के लिए, सन्तान के लिए, मनचाही नौकरी, दुश्मन का नाश, प्रमोशन के लिए, बीमारी ठीक करने के लिए, दुःख कष्ट दूर करने के लिए, अचानक से धन पाने के लिए, अमीर बनने के लिए, वशीकरण आदि।

अन्धविश्वास की कुछ घटनाएँ

- अंधविश्वास की कुछ घटनाएँ हमारे देश में पिछले कुछ दिनों में घटित हुई हैं। 2017 में महलाओं की चोटी काटने की अनेक खबरें आई। महलाएँ और आस

पास के अनपढ़ लोग इसे भूत-प्रेत मानते हैं, लेकिन डॉक्टरों ने इसे मनोवैज्ञानिक कारण बताया, जिसमें महलाएँ खुद अपनी चोटी काटने का काम करती थी।

- राजस्थान में भी एक ऐसी घटना पिछले दो वर्षों में हुई थी जिसमें एक दलित महिला को उसके ही रिश्तेदार और पड़ोसियों ने डायन बताकर पीट-पीटकर मार डाला।
- जुलाई 2018 में दिल्ली के बुराड़ी इलाके में 11 लोगों ने मोक्ष पाने के लिए फाँसी के फंदे पर लटक कर मर गये। इस घटना ने तो पूरे देश को चौंका दिया था, इससे पता चलता है कि आज भी देश में बहुत अन्धविश्वास है।
- 2018 में हरियाणा में जलेबी बाबा कोई पाखंडी था, जिसको गिरफ्तार किया गया, उसने तंत्र-मंत्र के नाम पर 90 से अधिक लडकियों के साथ चाय में नशीला पदार्थ मिलाकर दुष्कर्म किया और 120 से अधिक अश्लील फ़िल्में बना ली।

ऐसी ही बहुत घटनाएँ हमारे समाज में आज भी होती हैं। जिसका कारण अन्धविश्वास और अनपढ़ता भी है। अगर हम लोग समझदार होंगे, तभी ऐसी समस्याओं से छुटकारा मिल सकता है। कोई हमें घर से नहीं लेकर जाता, हम खुद जब जाते हैं, तो पाखंडी हमारे मन में एक ऐसा भैय डाल देते हैं कि हम पूरी तरह अन्धविश्वास में फंस जाते हैं। वर्तमान के निबंधों में निबंधकारों ने अन्धविश्वास से बचने के लिए हमें ज्ञान दिया है। जिसका अध्ययन करने पर हमारे मस्तिष्क का विकास होता है और यह सब झूठ साबित होता है। हमें ऐसे पाखंडी लोगों से बचना है और दूसरों को भी बचाना है। डॉ. श्यामसुंदर दुबे ने अपने निबंध संग्रह *अलोक अनवरत* में कहा है:

हम सभी को तर्क और विज्ञान के अनुसार सोचना चाहिए। हमारी सोच तर्कवादी होनी चाहिए। हम सबको अपनी मानसिकता बदलनी होगी। भाग्य-दुर्भाग्य विधि का विधान है। यदि दुर्भाग्य नहीं होगा तो भाग्य को पहचानना मुश्किल हो जायेगा। (121)

दुबे ने अपने निबंध में अंधविश्वास को लेकर हमें सुचेत कराया है कि हमें अपने अस्तित्व को पहचानना होगा, तभी हम इनसे छुटकारा पा सकते हैं। दुबे कहते हैं कि हम अपने स्वार्थ को लेकर इसमें फंस जाते हैं, लेकिन बाद में एक भैय पड़ जाता है। हमें ऐसे पाखंडी को नकारना है। सबको पुत्र चाहिए, जिसके लिए हम पाखंडी के पास जाते हैं, लेकिन अगर बेटियां नहीं होगी तो पुत्र से शादी कौन करेगा। आज समाज में हर कोई बेटा चाहता है, मगर सब यह भूल जाते हैं कि बेटों को जन्म देने वाली भी स्त्री होती है। अन्धविश्वास का सबसे बड़ा कारण यही है कि हर आदमी जीवन में किसी न किसी समस्या से घिरा हुआ है, ऐसे में परेशान लोगों को जब कोई उपाय देता है, तो वह पाखंडी के चक्कर में फंस जाते हैं। किसी को नौकरी चाहिए, तो किसी को सन्तान चाहिए। किसी को पुत्र चाहिए, किसी का बिजनेस नहीं चल रहा है। रोजमर्रा की ऐसी तमाम समस्याओं को लेकर व्यक्ति साधु, तांत्रिकों, बाबाओं के पास जाता है। कुछ लोग धैर्य नहीं रख पाते, जल्द से जल्द समस्या का हल निकालना चाहते हैं, जिससे वह अन्धविश्वास में फंस जाते हैं।

अन्धविश्वास के अनेक नुकसान होते हैं। इसमें हमारा धन और समय नष्ट होता है, धन और समय आज कितना आवश्यक है। यह हम सभी लोग अच्छी तरह जानते हैं। कई बार यह पाखंडियों के जादू टोटके व्यक्तियों की जान तक ले जाते हैं। बच्चों की बलि दे दी जाती है। इतना ही नहीं औरतों की इज्जत से खिलवाड़ भी किया जाता है। *शब्द-संसार* निबंध में डॉ. कैलाश वाजपेयी ने कहा है- “आज तक अन्धविश्वास से

कोई लाभ नहीं हुआ है। जब भी हुआ नुकसान ही हुआ है। अन्धविश्वास से सदैव हमारे समाज में हानि होती है।"(66) हमारी सरकारों को चाहिए कि इसको लेकर कानून बनाया जाए, जिससे यह अपराध माना जाए। इस कानून को कर्नाटक सरकार ने 2017 में पारित किया है। इस कानून के अनुसार ऐसे तंत्र-मंत्र, जिससे इंसान की जान को खतरा हो, को अपराध माना गया है।

ऐसे ही कानून हर राज्य में लागू होने चाहिए, तांकि इस अपराध को रोका जा सके। हमें समाज में इसको लेकर स्कूल कालेज में जागरूकता फैलानी चाहिए, तांकि हमारी नई पीढ़ी और हमारे परिवार इस अन्धविश्वास में न पड़े। अन्धविश्वास पर रोक लगाने के लिए देश के सभी नागरिकों को आगे आना होगा। हर किसी व्यक्ति के जीवन में कोई न कोई समस्या है और इसका यह मतलब कदापि नहीं है कि हमें इससे छुटकारा पाने के लिए पाखंडी लोगों के पास जाएँ। हमारा कर्तव्य है कि हमें ऐसे पाखंडी कहीं भी मिले तो पुलिस को सूचना दे और समाज में इसको लेकर जागरूकता फ़ैलाने का कार्य करें।

4.2.3. दान

दान का शाब्दिक अर्थ होता है 'देने की क्रिया'। आधुनिक सन्दर्भों में दान उसको कहते हैं, जब किसी जरूरतमंद को सहायता के लिए कुछ दिया जाता है। सभी धर्मों में सुपात्र को दान देना परम कर्तव्य माना गया है। जब मानव किसी दूसरे प्राणी को कुछ सहायता में देता है, जिसको उसकी आवश्यकता होती है, तब मानव को बहुत ख़ुशी मिलती है। दान किसी वस्तु पर से अपना अधिकार समाप्त करके, दूसरे का अधिकार स्थापित करना है। दान किसी भी रूप में दिया जा सकता है। केवल धन देना दान नहीं है, जो भी वस्तु हम किसी जरूरतमंद को देते हैं, वह दान है। किसी को विद्या देना, भूमि देना, खाना देना, गाय देना और किसी गरीब कन्या का विवाह करना

आदि। कहा जाता है कि एक हाथ से दिया दान हजारों हाथों लौटकर आता है। जो हम किसी को देते हैं, वो ही पाते हैं, हमारा धर्म हमारे आस्था और विश्वास का फल हमें देता है। कोई भी अच्छा काम करने से हमें कितनी खुशी महसूस होती है। लेकिन एक बात है दान उसी को देना चाहिए, जिसको उसकी आवश्यकता है। वर्तमान में इसका भी गलत प्रयोग हो रहा है, हर कोई माँगने बैठा हुआ है, जो कि कार्य भी कर सकता है।

दूसरी ओर कुछ लोग धार्मिक स्थानों पर ऐसा कुछ दान में करते हैं, जिसकी आवश्यकता नहीं होती। जहाँ सब कुछ पहले बहुत है, उसको और दे रहे हैं। जिससे दान का गलत प्रयोग हो रहा है। धार्मिक स्थानों पर हमने देखा है लोग कितना दूध मूर्तियों पर बहा रहे हैं और दूसरी तरफ एक आदमी ऐसा है, जिसको खाना नहीं मिल रहा है, तो क्या यह दान सही है, कदापि नहीं या फिर कोई भी धर्म ऐसा कहता है, जो भूखा प्यासा है उसको न देकर, जहाँ जरूरत नहीं है वहाँ दान दिया जाए। कोई भी धर्म ऐसा नहीं कहता यह हमारे समाज में कुछ लोगों ने धर्म के नाम पर, अपनी तरफ से यह ऐसे सिद्धान्त बनाये हुए हैं। यह सब बिलकुल गलत है, हर समाज में इसको गलत माना जायेगा और कोई धर्म ऐसा नहीं कहता है। किसी के पास रहने के लिए मकान नहीं है, खाने के लिए खाना नहीं है, और कोई ऐसा है जिसका कोई अंग नहीं है, वह काम नहीं कर सकता है। ऐसे लोगों को दिया हुआ दान कभी व्यर्थ नहीं जाता।

दान की महिमा तभी होती है, जब वह नि:स्वार्थ भाव से किया जाता है। अगर कुछ पाने की लालसा में हम दान करते हैं, तो वह व्यापर बन जाता है, न कि दान। यहाँ पर हमारे समझने योग्य बात यह है कि दान देना उतना जरूरी नहीं है, जितना दान देने का भाव। अगर हम कहीं कुछ दान कर रहे हैं, या किसी को कोई वस्तु दे रहे

हैं, लेकिन हमारी देने की इच्छा नहीं है, तो वह दान झूठा हुआ, उसका कोई अर्थ नहीं है। हमारी एक भावना होती है, दान देने की जैसे पुण्य मिलेगा या परमात्मा इसके प्रत्युतर में हमें कुछ देगा, तो हमारी नजर वह लेने पर है, देने पर नहीं तो क्या यह एक सौदा नहीं हुआ।

इस तरह दान का बहुत महत्व है। अगर हम एक उदारता का भाव रखते हैं, तो हमारा भी अच्छा होता है, कहते हैं कि दान एक हाथ दिया तो हजारों हाथों लोटकर आता है। जब किसी जरूरतमंद को हम दान देते हैं, तो वह कितनी हजारों दुआएँ हमें देता है, इसीलिए तो कहा जाता है कि अच्छा कर्म करने पर हमें अच्छा फल मिलता है। *है कुछ, दीखें और* निबंध संग्रह में कैलाश वाजपेयी कहते हैं:

> यह कुछ सोचने जैसा है कि हर आदमी, आदम की तरह सामान्यत बेगुनाह होता है, हर कोई अपने-अपने अच्छे-बुरे कर्मों का फल भोगता है। आदम के कामों का फल नहीं। कर्म करो फल की चिंता मत करो हमारा अधिकार केवल अपने कर्म पर है, उसके फल पर नहीं। हर क्रिया की प्रतिक्रिया होती है, यह तो संसार एवं विज्ञान का धारण नियम है। इसलिए उन्मुक्त हृदय से श्रद्धापूर्वक एवं सामर्थ्य अनुसार दान एक बेहतर समाज के निर्माण के साथ साथ स्वयं हमारे भी व्यक्तित्व निर्माण में सहायक सिद्ध होता है और सृष्टि के नियमानुसार उसका फल तो कालान्तर में निश्चित ही हमें प्राप्त होता है। (203)

वर्तमान समय में दान देने का महत्व इसलिए बढ़ गया है कि आधुनिकता एवं भौतिकता की अंधी दौड़ में हम लोग दान देना जैसे भूल ही गये हैं। आज हम अपने ही कार्य में इतने व्यस्त हैं कि दान देने का समय जैसे हमारे पास नहीं है। ऐसा कुछ सोच रहे हैं, लेकिन यह धारणा हमारी गलत है। क्योंकि यह केवल बहाना मात्र है, दान न देने का। पहले हर रिश्ते को दिल से समर्पण, त्याग एवं सहनशीलता से दिल से सींचा

जाता था, लेकिन आज हमारे पास समय नहीं है, हम सब दौड़ रहे हैं और आज हमारे पास दिल भी नहीं है, क्योंकि सोचने का समय जो हमारे पास आज नहीं है। लेकिन हमारे पास पैसा और बुद्धि बहुत है, इसलिए हम आज हर वस्तु में निवेश करते हैं, चाहे वह रिश्ते हों, चाहे वह संबंध क्यों न हो। आज अगर हम कहें कि हम लोग दान को नि:स्वार्थ भाव से देना भूल गये हैं, देंगे भी तो पहले यह सोच लेंगे मिलेगा क्या और इसलिए आज समाज टूट रहा है, परिवार टूट रहे हैं। दान देना हमारे विचारों एवं हमारे व्यक्तित्व पर एक मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालता है, इसलिए हमारी संस्कृति हमें बचपन से ही यह सिखाती है कि हमें देना है, न कि लेना। हमें अपने बच्चों के हाथ से ऐसे काम करवाने चाहिए, तांकि वह अपने बचपन से कुछ अच्छा सीख जाएँ और उनमें संस्कार बचपन से ही आ जाएँ।

कुछ लोग केवल धन देना ही दान समझते हैं, लेकिन यह कदापि सही नहीं है कि दान धन का ही हो। भूखे को रोटी, बीमार का उपचार, उचित परामर्श, आवश्यकतानुसार वस्त्र, सहयोग और विद्या, ये सभी भी बहुत बड़ा दान है। यह वस्तुएँ जब हम सामने वाले की आवश्यकता को समझते हुए देते हैं, तो बदले में कुछ पाने की अपेक्षा नहीं करते, तो यह सब दान ही है। जैसे विद्या के दान को सर्वश्रेष्ठ माना जाता है, क्योंकि उसे न तो कोई चुरा सकता है और न ही वह कभी समाप्त होती है, बल्कि यह बढ़ती ही है और एक व्यक्ति को शिक्षित करने से भविष्य में हम, उस व्यक्ति को दान देने लायक एक ऐसा व्यक्ति बना देते हैं, जो समाज को सहारा दे न कि वह खुद समाज पर निर्भर रहे। आज के परिप्रेक्ष्य में रक्त दान एवं अंग दान समाज की जरूरत है। जो दान किसी की रक्षा करे उससे बड़ा दान और क्या हो सकता है। हम प्रकृति से बहुत कुछ सीखते हैं, सूर्य अपनी रौशनी हमें देता है, फूल अपनी खुशबू, पेड़ अपना फल, नदियाँ अपना जल, धरती अपने सीने पर फसल हमें लुटाती है। इस तरह सभी बातो का अध्ययन करने पर यह पाया है कि दान देना बहुत

बड़ा कदम है, लेकिन वह भावना से दिया जाये न कि उससे हमें क्या मिल रहा है, ऐसा देखा जाये। नि: स्वार्थ और श्रद्धापूर्वक दिया हुआ दान, कभी व्यर्थ नहीं जाता। यह कहावत सच है कि एक हाथ दिया दान हजारों हाथ हमारे पास आता है।

4.2.4. उत्सव-पर्व-त्यौहार एवं मेले

उत्सव का ही अर्थ होता है, पर्व या त्यौहार। हमारी भारतीय संस्कृति में पर्वों का विशेष स्थान है, यहाँ तक कि इसे पर्वों या त्यौहारों की संस्कृति कहना गलत नहीं होगा। पूरा साल भर हमारे यहाँ कोई न कोई पर्व या त्यौहार चलता ही रहता है। हर ऋतु में, हर महीने में, कम से कम एक दो प्रमुख त्यौहार मनाये जाते हैं। कहा जाता है कि भारत पर्वों और त्यौहारों का देश है। इसमें कोई संदेह नहीं है। पूरे वर्ष में प्रत्येक दिन कोई न कोई उत्सव मनाया जाता है। हमारे भारत में पूरे विश्व की तुलना में अधिक त्यौहार या उत्सव मनाये जाते हैं। सभी राज्य में अलग अलग किस्म के त्यौहार मनाये जाते हैं और साथ ही यह उत्सव हमें धर्म का ज्ञान और एक साथ रहने का संदेश भी देते हैं। कितने लोग एक साथ मिलकर घूमते हैं, सभी प्यार का सामंजस्य बैठाते हैं। हमारे भारत में बहुत से धार्मिक त्यौहार भी हैं, जो गुरुओं के जन्म दिन और बरसी पर मनाये जाते हैं। सभी त्यौहार अलग अवसर से संबंधित होते हैं। धार्मिक त्यौहार में से अधिकांश उत्सव सभी राज्यों में समान रूप से मनाये जाते हैं। जन्माष्टमी, क्रिसमस, रक्षाबंधन, दीपावली, ईद-उल-जुहा, नागपंचमी, दशहरा, होली, वैसाखी, रथ यात्रा, 15 अगस्त, 2 अक्टूबर, 26 जनवरी, रामनवमी और गुरु नानक जयंती, यह धार्मिक त्यौहार लगभग सभी भागों में एक समान मनाये जाते हैं।

हमारा देश अनेकता में एकता का अद्भूत संगम है। यहाँ अनेक धर्मों, जाति, भाषा के लोग इस प्रकार रहते हैं कि जैसे विभिन्न रंगों के पुष्पों को एक माला में पिरो दिया गया हो। हर एक धर्म, जाति अथवा सम्प्रदाय की अपनी सांस्कृतिक विरासत है, जो

भिन्न-भिन्न त्यौहारों के माध्यम से प्रकट होती है। वर्तमान में त्यौहारों को लेकर भी कुछ लोगों की भावना कम होती जा रही है। इसी को लेकर डॉ. रामदरश मिश्र अपने निबंध संग्रह *छोटे-छोटे सुख* में पुस्तक मेला दिल्ली को लेकर कहते हैं:

> मुझे भी इस मेले की प्रतीक्षा रहती है। बचपन में मैंने मेले खूब देखे हैं। देहात में तब मेलो का बहुत महत्व था वे देहाती जीवन को कामकाज की अनेक वस्तुएँ तो उपलब्ध करते ही थे, उसकी एकरसता को तोड़ते भी थे, व्यक्ति को सामूहिक उल्लास से जोड़ते भी थे। तब देहात में मेले-हटिये, पर्व-त्यौहार आदि ही तो मनोरंजन के साधन थे। वे लोगों के आर्थिक अभाव में भी भीतरी सम्पन्नता सृजित करते थे, लोगों में फटेहाल मस्ती भरते थे। मेलों में जो लोग कुछ नहीं खरीद सकते थे, वह घूम-घामकर सुख पा लेते थे। ईद मेला सभी बड़े मेलों के भौतिक राग-रंग और गहमागहमी के भीतर धर्म की अन्तर्धारा विद्यमान रहती थी। (90)
>
> अब देहात में भी मेलों का वह महत्व नहीं रह गया है, जो पहले था क्योंकि एक तो वहाँ भी इलेक्ट्रानिक मीडिया द्वारा प्रदत मनोरंजन के नये-नये साधन खूब उपलब्ध हो गये हैं, दूसरे यात्रा के यान्त्रिक साधनों के कारण शहर और गाँव की दूरी काफी सिमट चुकी है, तीसरे मेले से जुडी जो सामूहिक मानसिकता थी, वह राजनीति के प्रभाव से काफी दूर तक खण्डित हो चुकी है और व्यक्ति स्वार्थवश या भयवश अपने में केन्द्रित होता जा रहा है। (91)

मिश्र की बातों से साफ़ पता चलता है कि वर्तमान में पहले जैसे पर्व या उत्सव को लेकर लोगों में भावना नहीं है। कुछ आधुनिक साधनों के आने से लोग उत्सव में कम जाते हैं, क्योंकि मनोरंजन के साधन अब हमारे पास ही हैं। वर्तमान निबंधकार ऐसी चिंता को अपनी लेखनी में प्रकट करते हमें दिखाई देते हैं। कोई भी त्यौहार एक

विशिष्ट अर्थ या उद्देश्य के लिए होता है। जिसके कारण इसकी महता युगों-युगों तक कायम रहती है। इन त्यौहारों के माध्यम से मानव एवं समाज की प्रकृति एवं दशा की झलक स्पष्ट रूप में देखी जा सकती है। समय-समय पर यह विभिन्न त्यौहार मनुष्य के परस्पर भेदभाव व वैमनस्य को भुलाकर, उनमें धार्मिक समन्वय वह सामाजिक एकता हेतु प्रेरित करते हैं। जब सभी लोग किसी त्यौहार में एक साथ रहते हैं, तो उनमें जाति-भेद दूर होते चले जाते हैं। अगर आज के समय की भाग दौड़ को देखा जाए तो किसी के पास समय निकाल पाना बहुत मुश्किल कार्य है। ऐसी परिस्थितियों में कलुषता, हीनता, कपट, व्यभिचार की उपज होती है। हमारे सांस्कृतिक त्यौहार, मानव के बीच सच्चाई, निष्कपटता और आत्मविश्वास भर देते हैं। सभी त्यौहार हमें एकता का संदेश देते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारे त्यौहारों का धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक हर एक दृष्टि से विशेष महत्व है।

यह एकता का संदेश तो देते ही हैं, साथ ही हमारी सांस्कृतिक विरासत और गौरव भी हैं। भारत के त्यौहारों को देखकर कोई भी यह अनुमान लगा सकता है कि इस देश की संस्कृति कृषि प्रधान है, तथा यहाँ की जड़ें बहुत गहरी है। बहुत से लोग इन त्यौहारों में निहित संदेश को भुला बैठे हैं और ऐसे प्रयासों से भारत का गौरव खण्डित हो रहा है। वर्तमान समय बदलाव का समय है। इसके बीच से गुजरते हुए हमें अपनी सांस्कृतिक विरासत को जिन्दा रखना है। यह तभी संभव है, जब हम सब एक साथ मिलकर कार्य करें और अपनी नई पीढ़ी को इन बातों के बारे में जागरूक करें। भारत एक महान देश है, यहाँ इतने पर्व उत्सव साल भर मनाये जाते हैं।

हमारे देश में त्यौहारों का महत्व नि: संदेह है। जाति-भेद भावना को यह त्यौहार छिन्न-भिन्न कर देते हैं। अब बात करते हैं, कुछ समान रूप में चलने वाले त्यौहारों की जिसमें नागपंचमी का त्यौहार सावन मास की शुक्ल पक्ष की पंचमी को नाग

पूजोत्सव के रूप में पूरे देश में धूम-धाम के साथ मनाया जाता है। इससे हमारे मन में नाग देवता के प्रति श्रद्धा भावना व्यक्त होती है। इससे हमारे धार्मिक संस्कार जगते हैं।

रक्षाबंधन के त्यौहार का महत्व प्राचीन परम्परा के अनुसार, गुरु महत्व को प्रतिपादित करने से है। लोगों की यह मान्यता है कि इस दिन गुरु अपने शिष्य के हाथ पर रक्षा सूत्र बाँध करके, उसे अभय रहने का वरदान देता है। आज की परम्परा के अनुसार बहनें अपने भाईयों के हाथ पर राखी बाँधकर, परस्पर प्रेम के निर्वाह का वचन लेती हैं।

दशहरा का त्यौहार पूरे देश में आश्विन मास में मनाया जाता है। इसको मनाने के विभिन्न तौर तरीके हैं, जिनसे हमारी धार्मिक भावनाएँ जुडी हुई हैं। देवों पर दैत्यों से आए हुए संकट के निवारण परम शक्ति दुर्गा का नवरात्रि पूजन समारोह से जहाँ इस त्यौहार का समापन करके हम सात्विक और आत्मिक शक्ति के महत्व को जुटाते हैं। वहीं दूसरी और धर्मसंस्थापक और मानवीय मूल्यों के रक्षक तथा इसके विरोधी तत्वों रावण, बालि आदि के विनाशकर्ता श्रीराम की रामलीला का चित्रांकन और छायांकन करके, हम मानवता के पथ का निर्देश करते हैं।

भाद्र मास जन्माष्टमी का त्यौहार योगीराज श्रीकृष्ण के जन्म दिन की याद में धार्मिक महत्व की दृष्टि से मनाया जाता है। होली के त्यौहार का महत्व स्वत: प्रकट है इस आनंद और उमंग में अपनी दुर्भावना को भूलकर एक हो जाते हैं।

दीपावली का त्यौहार कार्तिक मास की अमावस के अंधकार को पराजित करने के लिए प्रकाश का आयोजन करके सम्पन्न किया जाता है। लोगों की धारणा है कि इस दिन ही राम रावण को पराजित करके, अपनी राजधानी अयोध्या लौटे थे और उनके स्वागत में अगणित दीपमाला को पूरे धूम-धाम से सजाकर, अयोध्यावासियों ने अपना अपार उत्साह प्रदर्शित किया था। दीपावली के त्यौहार के बारे में डॉ.

श्यामसुंदर दुबे अपने निबंध संग्रह *जहां देवता सोते हैं* में संकलित निबंध ‘दीवाली का दीप पाहुना’ में कहते हैं:

> दीपावली का त्यौहार जिस तरह से दियों की अवली का प्रतीक है- वैसे ही यह विभिन्न त्यौहारों का गुंफन भी है। धनतेरस और नरक चतुर्दशी भी इस त्यौहार के प्रारंभिक त्यौहार हैं। भले ही इनको लोक ने अपने ढंग से अपने अलग-अलग अर्थ देने के लिए भिन्न-भिन्न पौराणिक कथाओं को आश्रय मान लिया हो, लेकिन इनका आयोजन लोक में अपने कर्मकांड के अनुसार ही होता है। (111)

> दीपावली की प्रकाश कथा के साथ अनेक कथा परिवर्तन जुड़ते गये। कभी इसे इंद्रविजय के मुखपर्व की तरह याद किया गया। कभी राम द्वारा लंका विजय के उपरांत अयोध्यापुरी लौटने के उत्सव की तरह देखा गया है। लेकिन दीपावली हर अँधेरे के विरुद्ध प्रकाश की विजय का ही महोल्लास पर्व है। दीपावली पर लोक ने अनेक कलात्मक अरेखनों को सज्जा कर इस पर्व को जीवन की सौन्दर्य चेतना का प्रतीक बना दिया है। लोक की दीपावली का सम्पूर्ण तात्पर्य केवल हैप्पी दीवाली कह कर नहीं समझा जा सकता है। इसे समझने के लिए बहुत अनौपचारिक होकर जीना पड़ेगा। (112)

अत: यही कहा जा सकता है कि सभी के त्यौहार हमें परस्पर एकता, एकरसता, एकरूपता का पाठ पढ़ाते हैं। सभी जाति के लोग एक साथ मिलकर, अपना मनोरंजन करते हैं और एकता से त्यौहारों को मनाते हैं। हमारे देश के त्यौहारों का महत्व धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, आध्यात्मिक दृष्टि से बहुत अधिक है। राष्ट्रीय दृष्टि से 15 अगस्त, 26 जनवरी, 2 अक्टूबर और 14 नवम्बर का महत्व अधिक है। अंतिम रूप में हम यह कह सकते हैं कि हमारे देश के त्यौहार विशुद्ध प्रेम, भेदभाव और सहानुभूति का संदेश हैं।

4.2.5. दया-भावना

दया शब्द हिंदी में काफी प्रयुक्त होता है, जिसका अर्थ है, करुणा, और दया को धर्म का मूल कहा जाता है। जब तक हमारे हृदय में दया है, तब तक धर्म उस पर टिका हुआ है, दया की अनुपस्थिति में धर्म का कोई अस्तित्व नहीं है। दया करुणा एक मानवीय हृदय भाव जिन्हें औरों के दुखों के प्रति संवेदना हो उसे दयालु कहा जाता है। दया प्राणी का पहला धर्म है, निर्दयी मानव हिंसक जानवर के समान होता है। अपने हृदय में दया करुणा नम्रता जैसे ईश्वरीय गुणों को बसाए रखे, तभी मानव धर्म और सुंदर बन सकता है। दया दूसरों की ओर विनम्र और विचारशील होने का गुण है। यह एक ऐसा गुण है, जो हर किसी के पास नहीं है। दया एक पुण्य है, जो शायद ही इन दिनों कभी देखी जाती है। लोग इन दिनों अपने आप में इतने व्यस्त हैं कि वह अपनी जरूरतों और इच्छाओं को पूरी करते हैं और दूसरों की प्राय: अनदेखी करते हैं। आज के समय में दूसरों के प्रति दयालु होना, बहुत कठिन कार्य हो गया है। क्योंकि आज हर व्यक्ति स्वार्थवश हो गया है। आज का व्यक्ति ऐसा समझता है कि वह बहुत सी समस्याओं में घिरा हुआ है, जैसे उसके पास कुछ अच्छा करने का समय नहीं है, लेकिन वह यह नहीं जानता कि जब वर्तमान में हम कुछ अच्छा नहीं कर रहे, तो क्या समस्याओं से छुटकारा मिल सकता है। डॉ. श्रीराम परिहार के निबंध *धूप का अवसाद* में कहा गया है- "दया न ही किसी चीज के बदले और न ही सहायता के बदले बल्कि किसी की जरूरत के मुताबिक उस व्यक्ति की मदद करना है।"(150)

दया से तात्पर्य यही है कि हमारे आस-पास के लोगों के प्रति अच्छा होना। दयालु व्यक्ति किसी जरूरतमंद के प्रति उसकी आर्थिक सहायता करके बना जा सकता है। जब हम दूसरों के प्रति विनम्र होते हैं, उनके कार्यों में उनकी सहायता करते हैं और ऐसे अच्छे कृत्य करते हैं, तो हमें सिद्धि और ख़ुशी का अहसास मिलता है। भगवान भी

तो दयालु है। हमें जो वस्तु चाहिए होती है, भगवान हमें देता है, वह कितना बड़ा दयालु है। वैसे ही हमें भी दूसरों के प्रति दयालु होना चाहिए। हमें दूसरों के प्रति दया दिखाने का मतलब यह नहीं है कि हम उनके लिए कुछ बहुत बड़ा करें। किसी को भावनात्मक समर्थन देने के रूप में छोटे से योगदान के रूप में भी कुछ हो सकता है। हमें किसी के साथ अच्छा व्यवहार करना या हमारे आस-पास के लोगों की छोटी सी जरूरतों को पूरा करना, इस रूप में भी दया हो सकती है। इन सबके लिए आपकी सकारात्मक सोच और आपका दिल अच्छा होना चाहिए, इससे आपका कुछ बिगड़ता नहीं है, इससे ज्यादा धन की आवश्यकता नहीं है।

दूसरों के साथ विनम्रता से रहकर, हमारा मन बहुत प्रसन्न होता है किसी की छोटी सी मदद करने पर, हम बहुत अच्छा महसूस करते हैं, और इससे दूसरे के चेहरे पर भी मुस्कराहट आती है, जब उसका हम अच्छा करते हैं। किसी को अगर हम खुश करते हैं, तो क्या हमें ख़ुशी नहीं मिलेगी, अवश्य मिलती है। दयालुता किसी मानव के प्रति ही नहीं, किसी के भी प्रति हो सकती है। हमें जानवरों पर भी दया दिखानी चाहिए। कुछ लोग ऐसे भी होते हैं, जो सडकों पर आवारा कुत्तों और गाय पर पत्थर फेंकते हैं, तांकि वह उन्हें डरा सकें। हमें जानवरों के प्रति दयालु होना चाहिए, वह भी तो जीव हैं, उनमें भी हमारे तरह आत्मा है, शरीर है। जानवरों का उचित तरीके से इलाज कराना या उनको खाना देना पानी पिलाना दया के तरीके हैं। हम बहुत जगह पर देखते हैं कि बहुत सा भोजन व्यर्थ जाता है, जो कचरे के डिब्बे में जाता है, लेकिन उसका हम उचित प्रयोग कर सकते हैं। हमें अपने आस-पास चारों ओर घूम रहे कुत्ते, बिल्लियाँ और कोई भी जानवर हो उसको यह भोजन फैंकने की बजाय खिलाना चाहिए, जिससे दया का काम होगा और हमारा जाता भी कुछ नहीं है।

वर्तमान में 21वीं सदी के निबंधकार भी कहते हैं कि दया का होना बुरी बात कभी नहीं होती, हमें तो दया अपने जीवन का आवश्यक अंग बनानी चाहिए। डॉ. श्रीराम परिहार अपने निबंध संग्रह *धूप का अवसाद* में कहते हैं कि- “दयालुता सबसे अच्छी चीज है। मानव को कैसे बुद्धिमान माना जा सकता है, जिसने उस वक्त दयालुता नहीं अपनाई, जब वह अपना सकता था। वह आग्रह करता है कि दयालुता के लिए दयालुता करे।”(151) आज के समय में लोग बहुत आत्म- अवशोषित हो गये हैं, वह केवल अपने बारे में सोचते हैं। हमारे जीवन के विभिन्न चरणों में बढ़ती प्रतिस्पर्धा के मुख्य कारणों में से एक यह है कि लोग इस तरह से आगे बढ़ रहे हैं और अपने बारे में केवल सोच रहे हैं। ऐसी स्थितियों में दया की भावना लुप्त हो रही है। हर व्यक्ति आज अपने आप को बेहतर बनाना चाहता है। वह दूसरे लोगों को यह दिखाना चाहता है कि उसकी जिन्दगी दूसरों की तुलना में कितनी बेहतर है। अपने आप को अच्छा बनाना या सुधारना गलत बात नहीं है, लेकिन सब कुछ भूल जाना हमारे संस्कार, हमारी संस्कृति, हमारी एकता और दया भावना, यह गलत है। हम समय की लपेट में आकर या बाज़ारवाद की लपेट में आकर भूल जाते हैं।

हर व्यक्ति अच्छे और दयालु व्यक्ति के साथ दोस्ती और रिश्ते बनाना चाहता है, कोई भी व्यक्ति अशिष्ट, अभिमानी, स्वार्थी और घमंडी के साथ रिश्ता बनाना पसंद नहीं करता है। इसीलिए अच्छा व्यक्ति होना अनिवार्य है और दयालुता भी अनिवार्य है। अगर हम बाहर बहुत दयालु हैं, अपने सहकर्मियों और दोस्तों के साथ लेकिन अपने परिवार माता-पिता और बच्चों के साथ असभ्य व्यवहार करते हैं, तो हमें कोई दयालु नहीं कहेगा। बदले में किसी चीज की उम्मीद किये बिना लोगों के प्रति दयालु होना ही असल दयालुता है। कोई भी व्यक्ति जो दयालु है, वह एक अच्छे चरित्र वाला व्यक्ति माना जाता है। यदि भगवान ने हमें अच्छा जीवन देकर दयालुता दिखाई है, तो हमें भी आस-पास के लोगों के साथ अच्छा व्यवहार और दयालुता दिखानी

चाहिए, तांकि हम भी उनके अच्छे जीवन का निर्माण कर सकें। अगर हमारे पास कोई ज्ञान है, हम पढ़ाई में अच्छे हैं, तो हमें अपना ज्ञान दूसरों से बाँटना चाहिए ज्ञान बाँटने से बढ़ता है।

किसी भी प्रकार से जब हम अच्छा कार्य करते हैं, तो वह दया ही है। अत: निष्कर्ष रूप में यही कहना चाहता हूँ कि हमें अपने आस पास लोगों से अच्छा व्यवहार करना चाहिए, साथ ही किसी जरूरतमंद व्यक्ति की मदद करनी चाहिए, यही सबसे बड़ी दया भावना है। जब हम केवल अपने लिए कार्य करते हैं, तो हमें उतनी ख़ुशी नहीं मिलती, जितनी किसी और की सहायता करने पर मिलती है।

निष्कर्ष

वर्तमान में मानव ने अपना ध्यान अपने स्वार्थ तक संकुचित रखा है, जिसके कारण आज मानव जीवन एक दु: स्वप्न सरीखा हुआ जा रहा है। आज हमारे समाज में धर्म और नीति को लेकर लोगों में भेद-भाव हो रहा है, जिसके कारण आज मानव समस्याओं में ग्रस्त है। साहित्य समाज का दर्पण है और समाज की दिशा निर्देशन में सहायक होता है। भारतीय संस्कृति समाज का वह आवश्यक अंग है, जो हमारे समाज को एक नया दृष्टिकोण और उच्च आदर्श को प्राप्त कराने में सहायक होते हैं। मानव एक विवेकशील प्राणी है, जो एक समाज का निर्माण करता है। इसके पीछे उसकी सभ्यता और संस्कृति परिलक्षित होती है और इस संस्कृति और सभ्यता को उसके सिद्धान्त रचते हैं।

साहित्य को आधार बनाकर, इस अध्याय में धर्म और नीति का विवेचन किया गया है, जिसे हमारे शोध की प्रविधियों के द्वारा नवीन निष्कर्षों को प्राप्त किया गया है। 21वीं सदी के निबंधकारों ने अपने निबंधों में जो प्रयास किये हैं, उनको भी यहाँ स्पष्ट किया गया है, किस तरह आज हमारे समाज में अन्धविश्वास, दान, धर्म और

धर्मनिरपेक्षता, दया, धर्म और विज्ञान को लेकर जो विवाद है, उसको भी वर्तमान निबंधों के द्वारा स्पष्ट किया गया है। सांस्कृतिक चेतना से सम्बद्ध वर्तमान निबंधों में सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक स्थितियों के प्रभावों का भी मूल्यांकन भी किया गया है, जिससे हमें आज हमारे समाज में क्या हो रहा है, उसका ज्ञान मिलता है, और इन्हीं स्थितियों को अपनाकर प्रचलित समस्याओं से छुटकारा पाना ही हमारे शोध का उद्देश्य है।

पंचम अध्याय

21वीं सदी के हिन्दी निबंधों में सांस्कृतिक चेतना : सामाजिक और राजनैतिक पक्ष

5.1. सामाजिक पक्ष

5.1.1. समाज का अर्थ स्वरूप और परिभाषा

5.1.2. समाज और राजनीति

5.1.3. पारिवारिक संबंध

5.1.4. नारी की स्थिति

5.1.5. सामाजिक जीवनमूल्यों की प्रतिष्ठा

5.1.6. बाजारवाद

5.1.7. उतर-आधुनिकतावाद

5.1.8. प्रकृति और पर्यावरण

5.2. राजनैतिक पक्ष

5.2.1. राजनीति का अर्थ स्वरूप और परिभाषा

5.2.2. वर्तमान राजनीतिक दशा

5.2.3. वैश्वीकरण

5.2.4. भ्रष्टाचार

5.2.5. स्वार्थ-भावना

5.2.6. देश-भक्ति

निष्कर्ष

5.1. सामाजिक पक्ष

5.1.1. समाज का अर्थ स्वरूप और परिभाषा

समाज एक से अधिक लोगों के समुदायों से मिलकर बने एक वृहद समूह को कहते हैं, जिसमें सभी व्यक्ति मानवीय क्रियाकलाप करते हैं। मानवीय क्रियाकलाप में आचरण, सामाजिक सुरक्षा और निर्वाह आदि की क्रियाएँ सम्मिलित होती हैं। समाज लोगों का एक ऐसा समूह होता है, जो अपने अंदर के लोगों के मुकाबले, अन्य समूहों से बहुत कम मेलजोल रखता है। एक व्यक्ति से मिलकर एक परिवार बनता है और परिवार से मिलकर एक गाँव बनता है, फिर सभी का समूह मिलकर एक समाज बनता है। किसी समाज के अंतर्गत आने वाले व्यक्ति एक दूसरे के प्रति परस्पर स्नेह तथा सहृदयता का भाव रखते हैं। दुनिया के सभी समाज अपनी एक अलग पहचान बनाते हुए, अलग-अलग रस्मों-रिवाजों का पालन करते हैं।

समाज को हम दो प्रकार से देख सकते हैं। प्रारंभिक समाज, जब इंसानों ने आपसी लाभ को प्राप्त करने के लिए, एक साथ रहना प्रारम्भ किया। इस समाज को प्राय: बैंड समाज कहा जाता था। जिस समाज में ना कोई बड़ा था और ना ही कोई छोटा था, सामाजिक रूप में सभी समान थे और योग्यता के अनुसार सभी अपनी-अपनी शक्ति से, अपने समाज की जरूरतों को पूरा करते थे और यह खानाबदोश जिंदगी जीते थे। बाद में कुछ समय बाद, यही समाज कुछ सामाजिक नियमों से बंधने लगा और ईश्वर की परिकल्पना कर एक धर्म का विकास कर लिया। फिर वह लोगों ने कुछ आपसी रिश्ते बना लिए और कुछ सामाजिक मान्यताएँ भी बना ली, अपनी उपासना पद्धति निश्चित कर ली, धार्मिक मान्यताएँ एवं कर्मकांड निश्चित कर लिया। अपनी इन सभी विचार के अनुसार, एक स्थान पर वास कर वस्तु निर्माण किया और उस स्थान की उपज और संसाधनों के आधार पर अपना भोजन तथा रहन-सहन का तरीका और

व्यापर निश्चित कर लिया। फिर उन्हीं सभी वस्तुओं को अपने सामाजिक नियमों से जोड़ दिया, इस तरह यह दूसरे प्रकार का समाज बना और यही रूप वर्त्तमान समाज का है। आज समाज उसको कहते हैं, जिसमें लोगों का एक समूह, जिनकी संस्कृति और सभ्यता एक समान हो और एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में रहते हों, ऐसे लोगों के इस समूह को समाज कहते हैं।

समाज में विभिन्न कर्ताओं का समावेश होता है, जिनमें अत: क्रिया होती है। इस अत: क्रिया का भौतिक और पर्यावरणात्मक आधार होता है। प्रत्येक करता अधिकतम संतुष्टि की ओर उन्मुख होता है। सार्वभौमिक आवश्यकताओं की पूर्ति समाज के अस्तित्व को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए अनिवार्य है। सामाजिक प्रणाली में व्यक्ति को कार्य, पद दंड और पुरस्कार, योग्यता तथा गुणों से संबंधित सामान्य नियमों और स्वीकृत मानदंडों के आधार पर किये जाते हैं। इन अवधारणाओं की विसंगति की स्थिति में व्यक्ति समाज की मान्यताओं और विधाओं के अनुसार अपना व्यवस्थापन नहीं कर पाता और उसका सामाजिक व्यवहार विफल हो जाता है। ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर उसके लक्ष्य की सिद्धि नहीं हो पाती है। कारण यह है कि उसे समाज के अन्य सदस्यों का सहयोग नहीं प्राप्त होता। सामाजिक दंड के इसी भय से सामान्यत व्यक्ति समाज में प्रचलित मान्य परंपराओं की उपेक्षा नहीं कर पाता है।

समाज का अर्थ

समाज के अर्थ को परिभाषित करते हुए कालिका प्रसाद ने अपने ग्रन्थ *वृहत हिन्दी कोश* में समाज का अर्थ इस प्रकार बताया है- “समाज मिलना, एकत्र होना, समूह, संघ, दल, सभा, समिति, आधिक्य, सम्मान करने वालों का समूह, विशेष उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संगठित संस्था, ग्रहों का योग, हाथी।”(441)

रामचन्द्र वर्मा के ग्रन्थ *प्रामाणिक हिन्दी कोश* में समाज शब्द का अर्थ- "समाज समूह, गिरोह, एक जगह रहने वाले अथवा एक ही परिवार का काम करने वाले लोगों का वर्ग दल या समूह, समुदाय, किसी विशेष उद्देश्य से स्थापित की गई सभा, सोसायटी।"(1283)

रमाशंकर शुक्ल रसाल के *भाषा शब्द कोश* के अनुसार – "समाज- संज्ञा, समूह, सभा, समिति, दल, वृन्द, समुदाय, संस्था, एक स्थान निवासी तथा समाज आचार-विचार वाले लोगों का समूह, किसी विशेष उद्देश्य या कार्य के लिए अनेक व्यक्तियों की सभा, आर्य समाज।"(312)

संस्कृत हिन्दी कोश में वामन शिवराम आप्टे के अनुसार- " 'सम' उपसर्ग पूर्वक 'अज' धातु के साथ 'धज' प्रत्यय लगने पर समाज शब्द बना है। जिसका अर्थ है मंडल, संग्रह, गोष्ठी, समिति, समुच्चय, दल आदि।" (1076) इसे इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि सम का अर्थ सम्यक रूप से और अज धातु का अर्थ है जाना। अत: एक ही उद्देश्य को लेकर, किसी निश्चित दिशा में जाने वाले व्यक्ति और समूह को समाज कहते हैं।

> *समाजवाद* पुस्तक में डॉ. सम्पूर्णानन्द के अनुसार- "एक साथ या एक-से चलने का अर्थ फौजी सिपाहियों की भाँति किसी एक दिशा में कदम मिलाकर चलना नहीं है। तात्पर्य यह है कि लोगों की, उन लोगों की जो समाज के अंग हों, परिस्थिति एक सी हो, उनके प्रयत्न और उद्देश्य एक से हों। (19)

इस प्रकार समान संभावनाओं के माध्यम से प्रत्येक व्यक्ति के साथ समानता का व्यवहार जिस समूह विशेष में होता हो, उसे ही समाज कहा जाता है। रामचन्द्र वर्मा के *मानक हिन्दी कोश (खण्ड-2)* के अनुसार:

इस शब्दकोश में हमारे समाज और हमारे आस पास घटित हो रहे व्यवहार को बहुत गंभीरता से विवेचित किया गया है। इसमें समाज शब्द पर और भी व्यापक दृष्टि से विचार किया गया है। इस शब्दकोश में व्यावहारिक जीवन में अपनाए जाने वाले संगठनों का उल्लेख किया गया है और लोक व्यवहार में समाज शब्द के प्रति लोगों का जिस भावना के तहत व्यवहार होता है को पूर्ण रूप से स्पष्ट किया गया है।

१) बहुत से लोगों के गिरोह या झुण्ड: जैसे- सत्संग समाज;

२) एक जगह पर रहने वाले लोगों का दल या समूह (समुदाय);

३) किसी विशिष्ट उद्देश्य से स्थापित की हुई सभा; जैसे- आर्य सभा, संगीत-समाज;

४) किसी प्रदेश या भूखण्ड में रहने वाले लोग जिनमें सांस्कृतिक एकता होती है;

५) किसी संप्रदाय के लोगों का समूह; जैसे-अग्रवाल समाज। (284)

समाज की परिभाषा

समाज की परिभाषा देते हुए सभी विद्वानों ने अपने-अपने विचार व्यक्त किये हैं। सभी विद्वानों की परिभाषाओं को देखते हुए, हमें यही निष्कर्ष प्राप्त होता है कि समाज एक विशेष समूह है, या व्यक्तियों का समूह है। समाज में रहने वाले सभी व्यक्तियों को नियमानुसार जीवन व्यतीत करना पड़ता है। मनुष्य और समाज एक-दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं। व्यक्ति और समाज का संबंध बहुत गहरा है। कैलाशनाथ जेतली अपनी पुस्तक *समाज-दर्शन* में कहते हैं कि- “जहाँ कहीं जीवन है वहाँ समाज

भी है।”(25) डॉ. नत्थूलाल गुप्त अपनी पुस्तक ‘महाभारत एक समाजशास्त्रीय अनुशीलन’ में समाज की परिभाषा देते हुए कहते हैं-

‘समाज’ एक अत्यंत व्यापक शब्द है। इसकी अर्थ परिधि में धर्म दर्शन, नैतिक मूल्य, सामाजिक संस्थाएँ, नारी दशा, शिक्षा मनोविनोद के साधन, स्वास्थ्य एवं रोग, अन्न-पान, गृहोपकरण, कला, स्त्री शिक्षा आदि विविध विषयों का समावेश होता है। (29)

राजनीति दर्शन ग्रन्थ में डॉ. विश्वनाथ प्रसाद वर्मा ने समाज की परिभाषा देते हुए कहा है - “जब अनेक मानव एक साथ रहते हैं, तब उनके पारस्परिक संबंधों से समाज बनता है। मानव समाज की ईकाई है और समाज के बिना वह पूरा विकसित मनुष्य नहीं हो सकता।”(107) यहाँ पर वर्मा की परिभाषा को देखने से हमें यह पता चलता है, समाज के निर्माण में मानवीय संबंधों की व्यावहारिक स्थिति इसका प्रमुख कारण है, साथ ही उन्होंने यह भी स्पष्ट किया है कि हमारा जो व्यक्तिगत विकास है, वह अकेले में नहीं हो सकता, कोई भी मानव एकांत में रहकर समाज का हिस्सा नही कहलाएगा और उसका जो व्यक्तिगत विकास है, वह सामूहिक सहभागिता में ही संभव है।

साहित्य का समाजशास्त्र पुस्तक में डॉ. नगेन्द्र के अनुसार- “समाज का अभिप्राय सामुदायिक जीवन की ऐसी अनवरत नियामक व्यवस्था से है, जिसका निर्माण व्यक्ति पारस्परिक हित तथा सुरक्षा के निमित जाने-अनजाने कर लेते हैं”(10)

इस तरह से सभी विद्वानों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से समाज को परिभाषित किया है। एक समूह में एक साथ रहना ही समाज कहलाता है। हर कोई व्यक्ति वहाँ रहना चाहता है, जहाँ उसके अधिकार सुरक्षित रहें। समाज ही है जो दो या उससे अधिक व्यक्तियों के बीच स्थित पारस्परिक जटिलता का बोध कराता है। समाज में

निवास करने वाले हर किसी व्यक्ति के हृदय में समाज के रीति-रिवाजों से जुड़े होने के कारण अपनत्व की भावना उनमें विद्यमान रहती है। समाज व्यक्तियों के पारस्परिक संबंधों की एक व्यवस्था है, इसलिए इसका कोई मूर्त स्वरूप नहीं होता है। इसकी अवधारणा अनुभूतिमूलक है। पर इसके सदस्यों में एक दूसरे के सत्ता और अस्तित्व की प्रतीति होती है। ज्ञान और प्रतीति के सामाजिक संबंधों का विकास संभव नहीं है। इस प्रकार का सामूहिक आचरण समाज द्वारा निर्धारित और निर्देशित होता है। वर्तमान सामाजिक मान्यताओं की समान लक्ष्यों से संगति के संबंध में सहमति अनिवार्य होती है। यह सहमति पारस्परिक विमर्श तथा सामाजिक प्रतीकों के आत्मीकरण पर आधारित होती है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक सदस्य को यह विश्वास रहता है कि वह जिन सामाजिक विधाओं को उचित मानता है और उनका पालन करता है, उसका दूसरे भी पालन करते हैं। व्यक्तियों द्वारा सीमित आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु स्थापित विभिन्न संस्थाएँ इस प्रकार कार्य करती हैं, जिससे एक समवेत ईकाई के रूप में समाज का संगठन अप्रभावित रहता है।

5.1.2. समाज और राजनीति

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी की दृष्टि में राजनीति सेवा व लोक कल्याण का एक सशक्त माध्यम है। वह अक्सर कहा करते थे कि जो लोग समाज को कुछ देना चाहते हैं, या फिर समाज या राष्ट्र के लिए स्वार्थ लिप्सा को त्यागकर कुछ करना चाहते हैं, ऐसे निर्मल चरित्र वाले लोगों को ही राजनीति में पदार्पण करना चाहिए। किंतु समय के दौर में लोग गाँधी की इन बातों को भूल गये हैं, या उन्हें दफना दिया गया है, तभी तो आज हमारे राजनीतिक नेता स्वार्थ भावना वाले हो गये हैं। आज के राजनेताओं के लिए राजनीति केवल सत्ता प्राप्ति और स्वार्थलिप्सा की पूर्णता का माध्यम ही रह गई है। आज हमारे भारत देश के लिए इससे बड़ा दुर्भाग्य क्या होगा कि मौजूदा राजनीति

में आपराधिक पृष्ठभूमि वाले अनेक व्यक्ति दाल में नमक की मानिंद खुल गये हैं। संसद और विधानसभाओं में ऐसे कई सांसद व विधायक हैं, जिनके खिलाफ विभिन्न अपराधों के आरोप हैं। जिनके ऊपर अपराध चल रहे हैं, वह हमारी जनता के हितों के लिए क्या कार्य करेंगे, और हमारा समाज कहाँ जा रहा है, ऐसे नेताओं पर कारवाई होनी चाहिए और उन्हें सांसद में से बाहर निकालना चाहिए। इससे बड़ी दुर्भाग्य की बात और क्या हो सकती है। ऐसा नहीं है कि सभी राजनेता भृष्ट हैं। लेकिन 1975 के बाद राजनीति में जिस तरह से आपराधिक पृष्ठभूमि वाले लोगों का प्रवेश हुआ है, और हो रहा है, यह आज गहन चिंता का विषय है। इसी तरह हमारी मौजूदा राजनीति अपराधीकरण की गिरफ्त में जा रही है।

एक कहावत है कि जैसा पानी कुएँ में होगा, वही बाल्टी में आयेगा। नि: संदेह 1975 के बाद हमारे देश के कुछ राजनेताओं की सोच में नकारात्मक परिवर्तन आये हैं। वर्तमान में राजनेताओं ने किसी भी तरह चुनाव जीतने को अपना साध्य बना लिया है। ऐसी स्थिति में लोगों के हितों का कौन सोचता है। राजनेताओं को तो चुनाव जीतना है, उसके लिए कुछ भी करना पड़े वह कर रहे हैं, आज हमारे समक्ष सब कुछ हो रहा है। हमें कब तक यह सब देखते रहना होगा। आज समय है, हम ऐसे नेताओं को राजनीति से बाहर निकालें। इसका हमारे समाज पर आज नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। समाज और राजनीति एक दूसरे से गहन संबंधित है। पहले समाज का जन्म होता है, फिर हम राजनेता का चुनाव करते हैं, जो हमारे समाज को और प्रफुल्लत करे। समाज के बाद ही शासन बनता है, जिसमें हमारे हितों और सुरक्षा के लिए कानून बनता है और फिर हम सब मिलकर अच्छे राजनेता चुनते हैं, जो हमारे हितों की पूर्ति करें। आज समय है कि हमें अपराधियों को निकालना होगा और अपने समाज

को फिर से व्यवस्थित बनाना है, जैसे पहले था। राजनीतिक नेता अच्छे होंगे तभी तो हमारा समाज भी अच्छा होगा और पुष्पित और पल्लवित होगा।

यदि सभी राजनीतिक दल यह तह कर लें कि उन्हें आपराधिक पृष्ठभूमि वाले व्यक्तियों को चुनाव में टिकट नहीं देना है, तो इन समस्या का सहजता से हल निकाला जा सकता है। जनता को भी चाहिए कि ऐसे आपराधिक पृष्ठभूमि वाले लोगों को अपना कीमती वोट नहीं देना चाहिए। एकता के साथ सभी को ऐसे कार्य करने की आज आवश्यकता है। ऐसे अपराधियों को बाहर निकाला जाए और समाज को अच्छे से व्यवस्थित करने में कोई बाधा न डाल सके। साहित्य सबसे बड़ा उपादान है, इन समस्याओं का निराकरण करने के लिए, क्योंकि हर व्यक्ति जो ज्ञान लेता है, वह साहित्य से ही लेता है। साहित्य और समाज दोनों का आपस में गहरा सम्बन्ध है। साहित्य को हमारी आने वाली नई पीढ़ी को पड़ने से यह ज्ञान प्राप्त होगा, इसलिए आज इन बातों पर विचार-विमर्श होना बहुत आवश्यक है। कैसे राजनेता वर्तमान में हमें चुनने हैं, इसका ज्ञान सभी को होगा, तो वह अपना वोट व्यर्थ नहीं जाने देंगे, जिससे हमारे समाज को एक स्वार्थलिप्सा से रहत राजनेता प्राप्त होगा, जो लोगों के हितों की सुरक्षा के लिए कार्य करेगा। इस तरह समाज और राजनीति दोनों का परस्पर सम्बन्ध है। *भाषा और समाज* पुस्तक में रामविलास शर्मा कहते हैं- “समाज से ही राजनेता पैदा होते हैं और समाज के लिए ही राजनीति होती है, जिसके द्वारा हमारे हितों को सुरक्षित रखा जाता है।”(125)

5.1.3. पारिवारिक संबंध

परिवार साधारणतया पति-पत्नी और बच्चों के समूह को कहते हैं, किंतु दुनिया के अधिकांश भागों में वह सम्मिलित वासवाले रक्त संबंधियों का समूह है, जिसमें विवाह और दतक प्रथा स्वीकृत व्यक्ति भी सम्मिलित हैं। जब किसी एक घर में एक

साथ दो या दो से अधिक सदस्य रहते हैं, उन सदस्यों के समूह को परिवार कहते हैं, पति-पत्नी और बच्चों के समूह को ही परिवार कहा जाता है। परिवार के सदस्यों की संख्या के आधार पर परिवार को देखा जाता है, अगर परिवार में सदस्यों की संख्या कम है, तो उसे छोटा परिवार कहा जाता है। परिवार और भी होते हैं, जैसे मूल परिवार, बड़ा परिवार और संयुक्त परिवार। परिवार समाज की सबसे छोटी ईकाई होती है। माता पिता और उनके बच्चों को मिलाकर एक परिवार बनता है। एक परिवार का जीवन में बहुत महत्व होता है। एक बच्चा अपने परिवार की छत्र-छाया में रहकर ही बड़ा होता है। वहीं वह प्यार के महत्व को समझकर रिश्तों में बंधता है। परिवार के रिश्ते बच्चे को ख़ुशी प्रदान करते हैं और जिम्मेदारी का भी एहसास दिलाते हैं। परिवार ही है जो बच्चे को सामाजिक बनाता है।

परिवार हर किसी के जीवन में बहुत महत्वपूर्ण होता है। परिवार के बिना यह जीवन एक अधूरा सा लगता है। माता-पिता, भाई-बहन, पति-पत्नी, बच्चे सभी एक परिवार का हिस्सा होते हैं। हर किसी परिवार के सदस्य दुःख-सुख में एक दूसरे का साथ देते हैं। हर किसी मुश्किल को एक साथ मिलकर झेलते हैं और सुलझाते भी हैं। सभी समाजों में बच्चों का जन्म और पालन पोषण परिवार में होता है। बच्चों का संस्कार करने और समाज के आचार व्यवहार में उन्हें दीक्षित करने का काम मुख्य रूप से परिवार का होता है। इसके द्वारा समाज की सांस्कृतिक विरासत एक से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होती है। व्यक्ति की सामाजिक मर्यादा बहुत कुछ परिवार से ही निर्धारित होती है। नर-नारी के यौन संबंध मुख्यत: परिवार के दायरे में निबद्ध होते हैं। औद्योगिक सभ्यता से उत्पन्न जनसंकुल समाजों और नगरों को यदि छोड़ दिया जाये, तो व्यक्ति का परिचय मुख्यत: परिवार और कुल के आधार पर होता है। संसार के विभिन्न प्रदेशों और विभिन्न कालों में यदपि रचना, आकार, संबंध और कार्य की

दृष्टि से परिवार के अनेक भेद हैं, किंतु उसके यह उपर्युक्त कार्य सार्वदेशिक और सार्वकालिक हैं।

परिवार के सभी सदस्यों का होना, अपनी-अपनी जगह पर आवश्यक है। वर्तमान में डॉ. श्यामसुंदर दुबे ने पारिवारिक संबंध और परिवार की आवश्यकता पर निबंध लिखे हैं और परिवार के बदल रहे जीवन मूल्यों की चिंता को प्रकट कर रहे हैं, उनका अध्ययन करके हम आने वाली पीढ़ियों को इसका ज्ञान दें। यहाँ पर उनके निबंध संग्रह *अलोक अनवरत* में संकलित निबंध 'पिता, आखिर पिता ही है' में एक उदाहरण प्रस्तुत है:

> जीवन के निषेध व्यापारों में रमी रहने वाली जवानी जब उतरती है, तब वह अपनी अर्जित पूँजी का हिसाब लगाना शुरू कर देती है। घर-द्वार, जमीन-जायदाद, घोड़ा-गाड़ी उसका साथ छोड़ चुके होते हैं, ये सब उसके पुत्रों के रण क्षेत्र में परिणत हो जाते हैं। वह अकेला निहत्था इस रण क्षेत्र का रेफरी भी नहीं रह जाता। उसका शरीर भी उसे धोखा देने लगता है। तब उसके पिता की स्मृतियाँ, उसकी शरण-स्थली बन जाती हैं। वह अपने आप को अपने पिता की स्मृति अलगनी पर टांग देता है। पिता ही तो होता है, जो हर संघर्ष में अपनी संतान का संबल बनता है। (34-35)

यहाँ पर पिता के महत्व को दुबे ने रेखांकित किया है कि पिता का हमारे जीवन में कितना महत्व होता है, जो आज कहीं-न-कहीं बदल रहा है। आज सभी के संबंध बदल रहे हैं। जिसके नकारात्मक प्रभाव हमारे जीवन और हमारी संस्कृति और समाज पर पड़ते जा रहे हैं। लोक के तहस-नहस होते जीवन मूल्यों की चिंता करते निबंधकार ने लोक परंपराओं के परीक्षण हेतु, अपनी बौद्धिक प्रतिक्रियाएँ भी यहाँ प्रस्तुत की हैं। ये प्रतिक्रियाएँ लोक जीवन के उस ऊर्जा की तलाश करती हैं, जिसमें लोक को

पुनर्नवा करने की विपुल संभावनाएं हैं। इन 21वीं सदी के निबंधों में भारतीय जीवन की मूल्य मान्यताओं को जिस वैचारिक परिप्रेक्ष्य में अभिव्यक्त किया गया है, वह नए भारत के नए संकल्पों का प्रकाश आलेख है।

सुरक्षित रहने और आगे बढ़ने के लिए, इस दुनिया में परिवार सभी की सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता है। किसी के भी जीवन में परिवार की बहुत महत्वपूर्ण भूमिकाएँ होती हैं। स्कूली परीक्षाओं या विभिन्न प्रतियोगिताओं में अक्सर विद्यार्थियों को परिवार से संबंधित विषयों पर निबंध दिए जाते हैं, जिसका उद्देश्य यही है कि हमारी नई पीढ़ी को इन बातों का अच्छे से ज्ञान हो। जब हम समाज में जन्म लेते हैं, तो सबसे पहले जो ज्ञान या शिक्षा हमें मिलती है, वह परिवार से मिलती है। हम परिवार से ही कुछ आवश्यक गुण अपनी वंश परंपरा के अनुसार सीखते हैं। अपने संपूर्ण विकास और समाज में भले के लिए बच्चे को सकारात्मक परिवारिक रिश्तों की जरूरत होती है। जब किसी भी परिवार में हम एक साथ रहते हैं, तो एक स्वस्थ परिवारिक रिश्ते बच्चों में अच्छी आदतें, संस्कृति और परंपरा को बढ़ावा देने में मदद करते हैं। हमारी नई पीढ़ी को पूरे जीवन में तैयार करने की सबसे महत्वपूर्ण भूमिका परिवार निभाता है। जिससे प्रेरणा लेकर एक आदमी अपने जीवन में अच्छे संस्कार सीखता है। संयुक्त परिवार की जितनी जरूरत बच्चों को है, उतनी ही बूढ़े लोगों को भी होती है।

वर्तमान पारिवारिक संबंध

किसी भी परिवार जिसमें बहुत से सदस्य होते हैं, उसको बड़ा परिवार या संयुक्त परिवार कहते हैं। संयुक्त परिवार में रहने के बहुत से लाभ है और साथ ही बहुत से नुकसान भी वर्तमान समय में पैदा हो चुके हैं। पहले समय में सभी एक साथ मिलकर रहना चाहते थे, लेकिन आज एक साथ नहीं रहना चाहते, जिसमें बहुत समस्याओं ने

घर कर लिया है। हमारी नई आधुनिक सोच ने यह समस्याओं को जन्म दिया है। बहुत से और भी कारण है, जिन्होंने पारिवारिक संबंधों को प्रभावित किया है। उससे पहले यहाँ पर हम कुछ संयुक्त परिवार के लाभ और नुकसान की बात करते हैं।

संयुक्त परिवार के लाभ

- ये जीने का एक बेहतर तरीका उपलब्ध कराते हैं, जो उचित वृद्धि के लिए अत्यधिक योगदान करता है।
- संयुक्त परिवार के सदस्य के पास आपसी सामंजस्य की समझ होती है।
- एक बड़े संयुक्त परिवार में बच्चों को एक अच्छा माहौल और सदैव के लिए समान आयु वर्ग के मित्र मिलते हैं। इस वजह से परिवार की नई पीढ़ी बिना किसी रुकावट के पढ़ाई खेल और अन्य दूसरी क्रियाओं में अच्छी सफलता प्राप्त करती हैं।
- परिवार के मुखिया की बात मानने के साथ ही संयुक्त परिवार के सदस्य ज़िम्मेदार और अनुशासित होते हैं।

संयुक्त परिवार के नुकसान

- संयुक्त परिवार में उचित नियमों की कमी की वजह से कई बार कुछ सदस्य कामचोर हो जाते हैं और उनकी दूसरे की कमाई पर खाने की आदत बन जाती है। वो परिवार के अन्य अच्छे और सीधे सदस्यों का शोषण करना शुरु कर देते हैं।
- आमतौर पर संयुक्त परिवार में ऊँची हैसियत और अधिक कमाने वाले सदस्य कम कमाने वालो का अपमान करते हैं, जिससे रिश्तों में दरार पड़ जाती है।

- घर में बच्चों को लेकर छोटी-छोटी बातें जैसे - कुछ खाने की वस्तुओं को लेकर या अधिक पैसा कमाने वाले अपने बच्चों को अच्छे और महँगे स्कूलों में पढ़ाते हैं और घर में ही दूसरे बच्चों का बोझ कभी नहीं बांटते, इस तरह से बच्चों में भेदभाव की भावना आ जाती है।

इस तरह से वर्तमान में हमारे पारिवारिक संबंध पहले जैसे नहीं है। आज परिवार में पति-पत्नी, माता-पिता और बच्चे, स्त्री-पुरुष, छोटे और बढ़े सभी में रिश्ते बदल चुके हैं। इन सब को बहुत से पहलुओं ने प्रभावित किया है। आज वर्तमान नकारात्मक सोच, भूमंडलीकरण, वैश्वीकरण, बाजारवाद, मोबाईल-फ़ोन, इन सभी ने हमारे संस्कार, संस्कृति, हमारे संबंध और हमारे समाज को बहुत प्रभावित किया है। आज पति-पत्नी के बीच पहले जैसे संबंध नहीं है। आज लोगों को किसी से कुछ नहीं लेना है, वह मोबाईल फ़ोन पर दिन भर लगे रहते हैं, इसने भी बहुत प्रभावित किया है। इसी मोबाईल को लेकर कुछ लोगों का तलाक हो चुका है। स्त्री द्वारा घर का काम न करना, पूरा दिन अपने माईके के साथ बातें करते रहना, जिससे घर में लड़ाई-झगड़ा होता है। इसी तरह की बहुत खबरें अख़बारों में देखने को मिलती रही हैं। आज पत्नी कहती है, मेरे पास समय नहीं है, घर का काम करने का और पूरा दिन मोबाईल पे लगी रहती है। इससे घर में लड़ाई का होना अनिवार्य है।

डॉ. श्यामसुंदर दुबे ने अपने निबंध संग्रह *अलोक अनवरत* में बदलते हुए पारिवारिक संबंधों को लेकर कहा है कि - लोकगीतों में हमारे सामाजिक संबंधों की न जाने कितनी भंगिमाएँ प्रकट होती हैं। पति-पत्नी, भाई-बहन, देवर-भौजाई, जीजा-साली जैसे सबंधों को आधार बनाकर अनेक लोकगीतों की रचनाएँ हुई हैं। मुझे अचरज हुआ जब पिता-पुत्र जैसे संबंध-युग्म पर रचे गए लोकगीतों में खीजने के बाद भी नहीं पा सका। इन संबंधों में क्या काव्यात्मक

होने की गुंजाईश कम है। इस संबंध में व्याप्त संवेदन ऊष्मा में उतना ताप नहीं है, जितने पर पिघलकर यह संबंध काव्य की द्रोणी में एक नया आकार ले सकें। आयु के बढ़ते कर्म मर पिता-पुत्र के बीच औपचारिकता का फासला बढ़ना शुरू हो जाता है। (36)

निबंधकार ने यहाँ पर पिता-पुत्र के संबंध को दर्शाया है कि आयु बढ़ जाने से पुत्र पिता से बड़ा नहीं होता पिता तो पिता ही होता है। उसके लिए आज भी पुत्र का मोह वैसा ही है। आज जो अनेकमुखी अँधेरा हमारे चारों ओर सक्रिय है, उसने हमारी जीवनगत आस्थाओं को खण्डित कर धूमिल किया है। विश्वास के विरवे इस सड़ांध और सीलन भरे वातावरण में मुरझा रहे हैं। ऐसे बदलाव के समय में यह निबंध दीये की लो को उकसाने का काम कर रहे हैं। उजाले की पक्षधरता में रचे गए इन निबंधों में जीवन का शाश्वत संदेश समाया हुआ है। उजाला कभी भी पराजित नहीं होता है, वह सदैव सतत है। इन निबंधों को आधार बनाकर आज प्रचलित समस्याओं को लोगों तक पहुंचाना और इसका निराकरण करना ही हमारा उद्देश्य है, तांकि हमारे समाज के लिए हम कुछ नया कर सकें।

महानगरों में पड़ोसी एक दूसरे को जानते नहीं है, लोग अजनबी की तरह रहते हैं। समय का ऐसा दौर चल रहा है कि किसी के पास कोई फुरसत नहीं है। पहले समय में कोई भी अनहोनी हो जाती थी, तो सभी झट से साथ मिल जाते थे, लेकिन आज कोई किसी के साथ अनहोनी हो जाए, तो किसी का साथ या सहयोग मिल पाएगा, इसका कोई भरोसा नहीं है। आदमी यह समझता है, आज उसके पास सभ कुछ है, यह सच भी है लेकिन सब कुछ पा लेने के बाद भी आदमी अकेला है। कहीं भी वास्तविक टिकाऊ ख़ुशी देखने को नहीं मिलती है। आज हर कोई असंतुष्ट ही दिख रहा है। जहाँ पर इतना अजनबीपन हो वहां पर अपराध का घटित होना आवश्यक हो जाता है,

अक्सर यह कहावत है कि जब आदमी अकेला होता, है वह शैतान का घर होता है। उसके मन में कुछ गलत प्रश्न चलने शुरू हो जाते हैं। आज सामाजिक संबंधों के साथ-साथ परिवार के आत्मीय रिश्तों में जुड़े सरोकार भी बहुत कमज़ोर पड़ रहे हैं।

सही बात तो यह है कि इस वैश्विक दौर में रक्त संबंधों के साथ में अब नातेदारी तथा रिश्ते भी स्वार्थ की आग में झुलसने को मजबूर हैं। परिवार के आत्मीय संबंधों पर चोट करने वाली बहुत घटनाएँ आज हमें देखने को मिल रही हैं। आखिर पति-पत्नी, पिता-पुत्र, भाई-बहन, सभी पारिवारिक संबंधों और समाज के आत्मीय संबंधों से जुड़ी ये सभी घटनाएँ सीधे-सीधे सामाजिक ढाँचे की दीवारों के दरकने के ही संकेत हैं। छोटे-छोटे स्वार्थ के लिए आज भाई-भाई जमीन का काम हो या कोई घर का बंटवारा हो लड़ते-झगड़ते हैं। किसी को भाई से कोई लगाव नहीं है। एक भाई कमजोर है तथा दूसरे के पास पैसा अच्छा है, तो वह उनके बोझ को कम नहीं करता, बल्कि अपना पूरा हक मांगता है, ऐसे खून के रिश्ते हो गए हैं। सामुदायिक रिश्तों की मिसाल माने जाने वाले गाँवों में भी अब परिवारों की संयुक्तता विभाजित हो रही है। संपति से जुड़े रिश्ते भी अब बहुत कमजोर होते जा रहे हैं। कहीं-कहीं संपति से जुड़े यह रिश्ते इंच-प्रति-इंच जमीन को लेकर खून की होली खेल रहे हैं। अदालतों में अधिकतर मुकदमे जमीन-जायदाद को लेकर ही दर्ज हैं। परिवार की संयुक्तता कमजोर होने के पीछे सबसे बड़ी समस्या संपति के बंटवारे और उससे जुड़े विवादों की रहती है। घर परिवार में सास बहू काम के प्रति लडती हैं, बहू कहती है उसको कोई काम नहीं करना है, वह पूरा दिन नाटक देखने और मोबाईल पर व्यस्त रहती है। इसी तरह माता-पिता और उनकी संतान के संबंध भी बिगड़ चुके हैं। पहले की तरह आज संतान को माता पिता का डर नहीं है। किसी अच्छे संस्कार के लिए या किसी काम के लिए

माता-पिता अगर बच्चों को कुछ कहते हैं, तो बच्चे आगे से बोलते हैं, जबकि पुरातन समय में ऐसा कदापि नहीं था।

> डॉ. दुबे जी के निबंध *अलोक अनवरत* में उन्होंने कहा है- भूमंडलीय परिवेश ने बाजार को घर-घर में उतार दिया है। अब घर और बाजार में कोई फर्क नहीं है। पारिवारिक संबंधों में हमारी बदलती पहचान भ्रष्टाचार की पराकाष्ठा पनप रही है, अवलोकन बताते हैं कि आज हर रिश्ता एक तनाव के दौर से गुजर रहा है। रिश्ता चाहे पति-पत्नी का हो चाहे भाई बहन या दोस्त या किसी कर्मचारी का। (80)

निबंधकार के कहने का सीधा मतलब है कि आज हमारे आस पास घटित हो रहे संबंध हमें बताते हैं कि आज रिश्ते कैसे चल रहे हैं। चारों ओर पूँजी, संपति, धन, बाजार और पेशेवरवाद के सामने मानव, मानवीयता, सहिष्णुता, चरित्र, संस्कार और मूल्य आदि की चर्चा पृष्ठभूमि में चली गई है। इस विश्लेषण से यह साफ़ है कि आज के वैश्विक दौर में सामाजिक रिश्ते असहिष्णुता और संवेदनशून्यता को प्रतिबिंबित कर रहे हैं। कहने की आवश्यकता नहीं है कि आज देश की संस्कृति, तरह-तरह के वैश्विक संपर्कों से गुजर रही है। ऐसी अवस्था में सामाजिक रिश्तों का बदलना स्वाभाविक ही है। ऐसे दौर में हमें अपनी संस्कृति और समाज को ओर अपने सामाजिक संबंधों को बनाए रखने के लिए कार्य करने की आवश्यकता है। हमें सभी को एकता से यह बातों को अपने जीवन में अपनाना होगा, तभी इससे छुटकारा पाया जा सकता है। केवल समस्या का फैलाव करना किसी समस्या का समाधान नहीं होता है।

5.1.4. नारी की स्थिति

भारत में महिलाओं की स्थिति ने पिछली कुछ सदियों में कई बड़े बदलावों का सामना किया है। प्राचीन काल में पुरुषों के साथ बराबरी की स्थिति से लेकर, मध्ययुगीन काल के निम्न स्तरीय जीवन और साथ ही कई सुधारकों द्वारा समान अधिकारों को बढ़ावा दिए जाने तक, भारत में महिलाओं का इतिहास काफी गतिशील रहा है। आधुनिक भारत में महिलाएँ राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, लोक सभा अध्यक्ष, प्रतिपक्ष की नेता, आदि जैसे शीर्ष पदों पर आसीन हुई हैं। नारी की स्थिति पहले बहुत खराब थी, समय के चलते-चलते नारी की स्थिति में बहुत सुधार हुआ है। पहले की उपेक्षा धीरे-धीरे शिक्षा का प्रचार-प्रसार बढ़ने से और नारी के प्रति कानून व्यवस्था बनने से बहुत सी समस्याओं का निराकरण हुआ है। लेकिन कुछ नारी की स्थिति आज भी खतरे में है, जिसका ध्यान आज हमें करना होगा। नारी हमारे समाज का आवश्यक अंग है। नारी के बिना समाज संभव नही है।

नारी ने प्राचीन समय में बहुत सी समस्याओं का सामना किया है। जैसे- सती, जौहर, परदा और देवदासी आदि। इन सभी का सामना करते हुए, नारी ने बहुत समय कष्ट झेला है। समय के साथ नारी को कुछ अधिकार प्राप्त हुए हैं, जिनमें शिक्षा, संपति का अधिकार और श्रमशक्ति की भागीदारी आदि, यह अधिकार प्राप्त करने के बाद नारी की स्थिति में कुछ सुधार आते गये। यह सफल भी हुए हैं, तभी तो नारी की दशा प्राचीन समय से बेहतर हुई है। कुछ सम्प्रदायों ने नारी के प्रति अपनी आवाज उठाई और अपनी सकारात्मक सोच के अनुसार नारी को उसका अधिकार दिलवा दिया। शासन ने नारी के शोषण के प्रति अपराध को घोषित किया, जिससे नारी के प्रति लोगों का दृष्टिकोण बदलता गया। यौन उत्पीड़न, दहेज, बाल-विवाह, कन्या भ्रूण हत्या और लिंग के अनुसार गर्भपात, घरेलू हिंसा और तस्करी आदि को सरकार ने

कानून पास किया, यह सभी होने पर कारवाई की जाएगी और दोशियों को सजा दी जाएगी। ऐसे ही कानूनों की आवश्यकता थी और आज वर्तमान में भी कुछ नारी के प्रति और कानून सख्त होने की आवश्यकता है।

बलात्कार जैसी घटनाएँ आज भी हो रही हैं, कुछ राजनेता और कुछ लोग ऐसे हैं, जो आज भी नारी का शोषण कर रहे हैं, चाहे वह दफ़्तर की बात हो या फिर गाँवों की, गाँवों में गरीब और अनपढ़ नारी के साथ गलत व्यवहार किया जाता है। बाल-विवाह आज भी हो रहे हैं, पिछले दिनों कुछ घटनाएँ हमारे समक्ष प्रस्तुत हुई हैं। 18 साल की लडकी का विवाह 60 साल के बूढ़े के साथ हुआ है। क्योंकि उसके पास काफी जमीन और पैसा था, अनपढ़ माता-पिता के मजबूर करने पर लड़की ने उससे शादी करवा ली। लेकिन इस व्यवस्था के लिए हमारा कोई कानून नहीं है, जो ऐसे अपराधियों को सजा दे सकता हो। इसलिए अवलोकन से यह पता चलता है कि आज भी समाज में नारी के साथ कुछ गलत व्यवहार हो रहा है। बड़े-बड़े नेताओं के बच्चे अगर किसी लड़की के साथ बलात्कार करते हैं, तो झट से उन्हें जेल से बाहर निकाल दिया जाता है। कुछ पाखंडी साधू और बाबा भी हैं, जो नारी का शोषण कर रहे हैं।

नारी समाज का अभिन्न अंग है और उसकी नियति प्राय: व्यापक समाज से भिन्न नहीं मानी जाती। यदि कोई समाज पिछड़ा हुआ है, तो उसकी नारी भी पिछड़ी हुई होगी। उन्नत देशों और समाजों में नारियों की सामाजिक स्थिति अविकसित देशों और समाजों की नारियों की तुलना में बेहतर पाई जाती है। डॉ. सुधेश ने अपने निबंध संग्रह *चिन्तन अनुचिन्तन* में संकलित निबंध ‘नारी की नियति’ में कहा है:

> इस लेख में मैं व्यापक स्तर पर नारी की स्थिति और उसकी नियति पर विचार करना चाहता हूँ। उसकी नियति उसकी स्थिति से जुड़ी हुई है। स्थिति में यदि परिवर्तन लाया जा सकता है, तो नियति को क्यों नहीं बदला जा सकता। (97)

यहाँ पर निबंधकार कहना चाहता है कि नारी की नियति को बदला जाये। जीव विज्ञान और विज्ञान की अनेक शाखाएँ कहा करें कि जैविक दृष्टि से नारी और पुरुष की क्षमताओं में कोई अंतर नहीं है, पर पुरुष स्वयं को नारी से श्रेष्ठ समझता है। इसके बावजूद कि पुरुष की जननी नारी है, वंश परम्परा पुरुष के आधार पर देखी जाती है। नारी विवाह के बाद पुरुष के वंश का भाग मान ली जाती है, पुरुष नारी के वंश का हिस्सा नहीं बनता।

परिवार का उद्भव चाहे जब हुआ हो पर उसमें नारी की केन्द्रीय स्थिति है। नारी सन्तान को जन्म देती है, उसका पालन पोषण करती है। अकेला पुरुष या अकेली नारी कभी भी परिवार नहीं होती, नारी और पुरुष मिलकर परिवार बनाते हैं। उसमें पूर्णता सन्तान या सन्तानों से आती है। परिवार कैसा भी हो उसका आधार नारी ही है। नारी की भूमिका पुत्री से शुरू होकर पत्नी, माँ, दादी, नानी और तमाम संबंधों तक फैलती जाती है। सारे पारिवारिक संबंधों की आधार नारी को माना जाता है। दो भाई इसलिए भाई हैं, क्योंकि उन्हें एक माता ने जन्म दिया है। परिवार के आधार पुरुष और नारी दोनों हैं, क्योंकि दोनों मिलकर परिवार बनाते हैं। ऊपर से यही नजर आता है, पर परिवार की वास्तविकताओं में घुसकर देखें तो परिवार में नारी की केन्द्रीय भूमिका मिलेगी। जो घरेलू स्त्रियाँ हैं, चौंका-चूल्हा, भोजन-बनाना, घर की सफाई, बच्चों की देखभाल, पति-सेवा, सास-ससुर की तीमारदारी, सब उनके जिम्मे है। जो कुछ सम्पन्न परिवार हैं, वह घरेलू काम नौकर-नौकरानी से करा लेते हैं, फिर भी बहुत से काम नारी करती है। नौकरीपेशा महिलाएँ घर की उबाऊ जिन्दगी से तो बच जाती हैं, पर शाम को दफ़्तर से लौटकर यदि वह पति के लिए चाय न बनाए, तो उनके पतिव्रता होने में संदेह लगता है। दफ़्तरों में भी वह तरह-तरह की शिकार होती हैं। महिलाएँ यदि किसी अन्याय का विरोध करें, तो उन्हें चरित्रहीन की उपाधि देकर

चुप करा दिया जाता है। नारी की वर्तमान स्थिति को बदलकर ही उसकी क्रूर नियति को बदला जा सकता है।

भ्रूण हत्या

वर्तमान में हमारे भारत में भ्रूण हत्या की सबसे बड़ी समस्या चल रही है, सभी को आज बेटा चाहिए। अधिकतर लोगों के पास आज बेटे ही हैं, क्योंकि लड़की को कोई जन्म नहीं देना चाहता, लेकिन आज हमारा समाज यह भूल रहा है कि बेटे को जन्म देने वाली एक लड़की ही है। बेटे की शादी भी एक लड़की से होगी यह बात समाज आज भूल रहा है और भ्रूण हत्या बढ़ रही है। हमारे जो भ्रूण हत्या को लेकर क़ानूनी प्रतिबंध लगा है, वह अधिकतर कागज तक ही सीमित रह गया है। वर्तमान में हमारे यहाँ लड़कियों की संख्या लडकों की तुलना में बहुत कम होती जा रही है।

> डॉ. सुधेश अपने निबंध संग्रह *चिन्तन अनुचिन्तन* में संकलित निबंध 'नारी की नियति' में भ्रूण हत्या को लेकर कहा है- आर्थिक अधिकार से अधिक महत्वपूर्ण है, नारी का जीने का अधिकार, जिसका उल्लंघन उसके गर्भ में आने के समय से शुरू हो जाता है। बालिकाओं को गर्भ में ही समाप्त करने की घृणित घटनाएँ प्राय: सुनने और पढ़ने को मिल रही है। भ्रूण हत्या पर क़ानूनी प्रतिबंध लगा है, पर वह कागज तक ही सीमित रह गया है। कानून से अधिक प्रभावी होती है सामाजिक चेतना, जिसे नारी के पक्ष में करने की बड़ी आवश्यकता है। पर किसी एक उपाय से नारी की सामाजिक स्थिति में सुधार नहीं हो सकता। शैक्षिक, आर्थिक, क़ानूनी और सामाजिक उपायों से ही नारी की नियति को बदला जा सकता है। (101)

आज जरूरत है इन बातों पर विचार करके वर्तमान समय और आने वाली पीढ़ी को इससे मुक्त कराया जा सके, और नारी की स्थिति और नियति को बदला जाए।

नारी की जो समस्याएँ आज प्रचलित हैं, उनसे छुटकारा पाया जा सके। हमारे समाज में नारी की बहुत आवश्यकता है। कोई भी काम हो उसमें नारी का आवश्यक योगदान होता है। नारी के प्रति नियति को बदलने के लिए नारी की शिक्षा पर आरक्षण दिया जाना चाहिए। लोग नारी के राजनीतिक आरक्षण की बात ज़ोर से करते हैं। लेकिन शैक्षिक, आर्थिक आरक्षण की कोई बात नहीं करता है। इसलिए आज भ्रूण हत्या पर और भी अधिक शसक्त कानून बनाने की आवश्यकता है।

दहेज प्रथा

दहेज प्रथा भी आज वर्तमान समय में हमारे समाज की बहुत बड़ी समस्या बन चुकी है। प्राचीन काल से लेकर नारी की स्थिति बहुत खराब थी, उसके बाद बहुत संघर्ष करने के बाद नारी की स्थिति कुछ अच्छी हुई है। लेकिन कुछ समस्याएँ आज भी प्रचलित हैं, जिनमें दहेज प्रथा बहुत बढ़ रही है। 21वीं सदी में दहेज प्रथा हमारे विकासशील देश के लिए कोढ़ का काम कर रही है। दहेज प्रथा हमारे लिए कलंक है, जो दिन-प्रति-दिन बढ़ रही है। दहेज प्रथा हमारे आस-पास कितनी घटनाएँ हो रही हैं और आज तो यह बेटियों की जान भी ले रही हैं। पुरुष प्रधान देश होने के कारण हमारे देश में महिलाओं का शोषण किया जाता है, दहेज प्रथा इसी शोषण का एक रूप है। दहेज आज लोगों के लिए एक गर्व का विषय बन चुका है, वह लोग ऐसा सोचते हैं कि अगर हमने दहेज नहीं दिया, तो समाज में हमारी कोई इज्जत नहीं रह जाएगी। भारत में बहुत से लोग आज भी अनपढ़ हैं, जो अपने रीति-रिवाज को लेकर दहेज जैसी कुप्रथाओं को बढ़ावा देते हैं, ऐसे ही फिर लड़के वाले और अधिक दहेज की माँग खुद करने लगते हैं।

डॉ. सुधेश जी ने अपने निबंध संग्रह *चिन्तन अनुचिन्तन* में दहेज जैसी कुप्रथा को लेकर कहा है- कुछ लोग नारी विरोधी यथास्थिति को बनाए रखने के लिए

तर्क देते हैं कि नारी सम्बन्धी अनेक कानूनों का दुरपयोग हो रहा है, और उनमें दहेज-विरोधी कानून की अधिक चर्चा होती है। कहा जाता है कि इस कानून की आड़ में लड़की वाले लड़के वालों को सता रहे हैं, अवश्य ऐसी घटनाएँ संभव है, क्योंकि मानव प्रकृति बड़ी विचित्र है। पर दहेज प्रथा के कारण पुत्री के माता-पिता कितनी मानसिक यन्त्रणा के बीच गुजरते हैं, और कितनी भागी पुत्रियों को इस कुप्रथा के कारण अपनी जानें खोनी पड़ी हैं, उनके आगे उक्त कानून के दुरपयोग की छुटपुट घटनाएँ गौण हो जाती हैं। यह बात दूसरी है कि दहेज-विरोधी कानून में कुछ सुधार अपेक्षित हो, इस प्रकार संभव है कि तलाक के कानून में भी कुछ सुधार की आवश्यकता है। (101)

नारी की नियति को बदलने का एक अन्य उपाय है, उसकी सामाजिक स्थिति को बेहतर बनाना, जो उसे अधिकारों से सम्पन्न करने के बाद संभव है। अधिकार सिर्फ कागज पर न रहें, समाज को इसकी व्यवस्था भी करनी होगी। नारी के प्रति सब का अपना दृष्टिकोण है, कुछ लोग नारी को केवल भोग विलास की वस्तु समझते हैं। लेकिन आज हमें यह कदापि नहीं भूलना है कि सबसे पवित्र माँ के रूप में नारी ही है। निष्कर्ष रूप में हम यही कहना चाहते हैं कि नारी की शिक्षा, आर्थिक स्वतन्त्रता, पिता की जायदाद में पुत्री का कानूनी अधिकार, नौकरी में आरक्षण, विधान सभाओं और संसद में आरक्षण, और संचार-माध्यमों में नारी की गरिमा के अनुकूल वातावरण बनाकर नारी की वर्तमान स्थिति को बदला जा सकता है, तब ही नारी की नियति और स्थिति श्रेयस्कर होगी।

5.1.5. सामाजिक जीवनमूल्यों की प्रतिष्ठा

आज सभी ओर समाज में कलुषित प्रवृतियों के कारण मानव में ईर्ष्या, द्वेष, मोह, मद की प्रवृतियाँ विकराल रूप धारण करती जा रही हैं। दूसरी ओर विज्ञान के बढ़ते

प्रभाव के कारण, मानव आज उन्मनिया विकास के शिखर पर विराजमान होता जा रहा है। आज के उपभोक्तावाद या यांत्रिकीकरण के प्रभाव से मानव इतनी बुरी तरह जकड़ा जा रहा है कि वह संवेदनशून्य होता जा रहा है। परिणामत: हमारे समाज में अनेक भयानक और विकराल परिस्थितियां जन्म लेने लगी। जैसे कन्या भ्रूणहत्या, आतंकवाद, दंगे-फसाद, किसानों की आत्महत्या, छात्रों की आत्महत्या, नारी अत्याचार, बलात्कार, पारिवारिक संबंधों में बदलाव, दहेज, हमारी खण्डित होती एकता और दलीयप्रतिबद्धता आदि बहुत सी समस्याएँ विकराल रूप धारण करती जा रही हैं। इस तरह आज भारतीय समाज की नींव खोखली होती हुई नजर आती है। ऐसे भयानक परिवेश में व्यक्ति को संवेदनशील बनाने के लिए तथ्य स्वस्थ और सुंदर समाज का निर्माण करने के लिए भारतीय जीवनमूल्य या मानवमूल्यों की नितांत आवश्यकता है। 21वीं सदी के ललित निबंधों की सबसे उल्लेखनीय विशेषता उनमें अंतर्निहित मानवीय मूल्य हैं। हिन्दी ललित निबंधों में ऐसे ही मानवीय मूल्यों के दर्शन होते हैं। जो समाज को एक नई दिशा दिखाने के लिए सार्थक सिद्ध होते हैं।

आज के आधुनिक युग में वैज्ञानिक प्रगति ने अनेक क्षेत्रों में प्रगति की है। संगणक उसी की ही उपज है, संगणक की सुविधा के कारण कठिन से कठिन काम कुछ घंटों में ही होते जा रहे हैं, जिसके कारण उन्नति के अनेक द्वार खुलते जा रहे हैं। आज की युवापीढ़ी अधीन होती जा रही है, जिसके चलते युवापीढ़ी का शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य बिगड़ता जा रहा है, मानवमूल्यों का ह्रास हो रहा है। हमारी युवापीढ़ी को सुदृढ़ और संस्कारक्षम बनाने के लिए आज मानवीय मूल्यों की स्थापना की नितांत आवश्यकता है। तभी भारत को महासत्ता बनाने का सपना साकार हो सकता है। आज मानव को यांत्रिक नहीं, हाड़-मांस का संवेदनशील मानव बनाने के लिए, आज की नई पीढ़ी में भारतीय संस्कृति के प्रति आस्था निर्माण करने हेतु मानवतावादी दृष्टिकोण की बहुत ही आवश्यकता है। मानव की आन्तरिक कलुषित

प्रवृतियों को समाप्त या नष्ट करके सदप्रवृतियों को जाग्रत करने के लिए और मानव को मानव के रूप में स्थापित रूप देखकर, बसुधैव की भावना निर्माण करने वाली दृष्टि मानवमूल्यों से ही विकसित होती है। वर्तमान के हिन्दी ललित निबंधों में यही दृष्टि परिलक्षित होती है।

डॉ. श्यामसुंदर दुबे ने अपने ललित निबंधों में हमारे सामाजिक जीवनमूल्यों को लेकर अपनी कलम चलाई है। *नेह के नेग* निबंध संग्रह में यहाँ पर उनका लगभग तीस-चालीस साल पहले के सामाजिक मूल्यों के विषय में एक उदाहरण है:

> उस समय मुझे लोग अधिक प्रसन्न और अधिक संतुष्ट नजर आते थे। वे गा-बजा लेते थे और सत्संग कर लेते थे। उत्सव-त्यौहारों में डूबकर आनंद लेते थे। लड़ाई-झगड़े, शराबखोरी, व्यभिचारी जैसे दुष्कृत्यों का इसी गाँव में अभाव था। लोग शांत स्वभाव वाले और मानसिक कुंठा से रहत थे। दुःख भी भारी थे। जात-पात, छुआछूत, हारी-बीमारी, टोटा-घाटा, अशिक्षा-अकाल, अन्धविश्वास, अटकाव भटकाव मेरे गाँव में शताब्दियों से था। गाँव में फिर भी मन रमता था। (06)

हिन्दी ललित निबंधों में मानवीय मूल्यों की महता महनीय है। मानव अपने मानवीय मूल्यों के कारण ही विधाता की सर्वश्रेष्ठ सृष्टि है। ईश्वर ने मनुष्य को बुद्धि तत्व प्रदान किया है, जिसके कारण वह अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ है, लेकिन वर्तमान युग में व्यक्ति समष्टि- भाव को भूलकर व्यष्टि में सीमित हो गया है। इन समस्याओं के समाधान के लिए समाज में सामाजिक मूल्यों की जरूरत महसूस हो रही है, जिसमें दया, माया, प्रेम, सहानुभूति, मातृत्वभाव, परोपकार की वृति आदि मानवीय मूल्य मुख्य हैं। इन मूल्यों के पोषण से मनुष्य को संवेदनशील बनाया जा सकता है, जो स्वस्थ और सुंदर समाज के निर्माण में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। प्रत्येक मानव का लक्ष्य केवल आनंद की प्राप्ति रहा है। आवश्यकता यह है कि वह आनंद चिरस्थायी हो,

जो व्यक्ति के साथ-साथ समाज में स्वस्थ वातावरण को निर्मित कर सके। प्रत्येक मानव में प्रेम, त्याग, समर्पण, एकनिष्ठता, भ्रातृत्व-भाव, सर्वधर्म समभाव, आदि बहुत से सामाजिक जीवन मूल्य जीवन में आवश्यक हैं।

भारतीय समाज की बुनावट और बनावट जीवनमूल्यों या मानवमूल्यों की नींव पर हुई है। समाज के विभिन्न वर्गों के लिए और जातियों के अंतर्संबंध जीवनमूल्यों से जुड़े हुए हैं। कृषक, मजदूर, कर्मकार व्यापारी, पुरोहित आदि समाज के सभी वर्गों के लोग कर्म के धागे से जुड़े हुए हैं। इस संसार का प्रत्येक व्यक्ति कर्म और व्यवहार केवल अपने लिए ही नहीं करता, इस समाज के अन्य लोगों के लिए भी करता है। दान-प्रतिदान, सहयोग-सहकार की सारी क्रियाएँ संस्कृति और संस्कारों के साथ समाज के सभी वर्णों और जातियों में हजारों वर्षों से प्रचलित हैं, जो मानवमूल्यों के स्नेहिल धागे में बंधे चली आ रही है। मानवमूल्यों का यही रस समाज के विकास, शांति, स्थायित्व, प्रेम और समरसता का आधार है।

> डॉ श्यामसुंदर दुबे ने अपने ललित निबंध संग्रह *राम-रंग-रस भींजी चुनरिया* में हमारे जीवन मूल्यों और मानवमूल्यों को प्रतिष्ठित करने के लिए अहंभाव के त्याग पर विशेष बल देते हुए यह कहते हैं- आधुनिक समाज में व्यक्ति की स्वार्थपरता ने उसे हिंसक बना दिया है। जीवनमूल्यों की समरसतावादी स्नेह-परंपरा का क्षरण हो रहा है। आदमी का पेट कुछ इस तरह से बढ़ रहा है कि उसी में सब कुछ स्वाहा होता जा रहा है। आदमी की सख्ती बेमिसाल हो रही है। इस सख्ती को काटने वाले औजार हैं ही नहीं। उलटे बंदूकें पनप रही हैं। (14-15)

मौलिक उन्नति और उपलब्धि के इस युग में मनुष्य की भौतिक सुखों के प्रति चेतना प्रबल हुई है। अधिकाधिक सुख की इच्छा, धन व पद की लिप्सा, दूसरों से आगे

जाने की स्पर्धा, दूसरों से अधिक धनवान बनने की प्रबल इच्छा, सम्पन्न दिखाने की प्रबल इच्छा ने धीरे-धीरे मनुष्य को मनुष्य से दूर कर दिया। एक समय था, जब मानव उत्सव प्रेमी था और अब उत्सवों में डूबकर भी वह आनंद नहीं ले पा रहा है। परिणामस्वरूप मानवमूल्यों का क्षरण हुआ है। आज चारों ओर कटुता, वैमनस्य, शत्रुता, हिंसा, बदले की भावना, दूसरों के प्रति बुरे विचार आने लगे हैं। जिसके चलते आज संपूर्णविश्व में मानव त्रस्त है। यह सब आधुनिक प्रगति के कारण हुआ है। मानव ने बाहर के सुख-साधनों को पाने के लिए अपनी अंतरात्मा में होने वाले मानवमूल्यों रूपी रत्नों को खो दिया है। यही महत्वपूर्ण कारण है कि आज साहित्य में खोए हुए मानवमूल्यों की पुनर्प्रतिष्ठा की बात की जा रही है।

वर्तमान समय में जितने भी हमारे मानवमूल्य बदल रहे हैं, ऊपर सबको बताया गया है और हम यही पाते हैं कि आज इन बातों को समझने की बहुत आवश्यकता है। इसका प्रभाव सीधा हमारी संस्कृति और समाज पर पड़ता है। अगर हम इन बातों को समझकर अपने जीवन में अपना लेते हैं, तो हमारा समाज तभी पुष्पित और पल्लवित होगा। हमें वर्तमान के साथ संघर्ष करके अपनी संस्कृति और समाज को प्रफुल्लत बनाए रखना है।

5.1.6. बाजारवाद

वह मत या विचारधारा, जिसमें जीवन से संबंधित हर वस्तु का मूल्याँकन केवल व्यक्तिगत लाभ या मुनाफे की दृष्टि से ही किया जाता है; मुनाफा केन्द्रित तंत्र को स्थापित करने वाली विचारधारा; हर वस्तु या विचार को उत्पाद समझकर बिकाऊ बना देने की विचारधारा ही बाजारवाद है।

आज बाजार का जमाना है। जिसमें हमारा पूरा अस्तित्व बाजार के नियंत्रण में आ चुका है और जो शेष है, वह भी जल्द ही बाजार की परिधि में दिखाई पड़ेगा। कोई क्या खाए, क्या पिए, कहाँ जाए, क्या पढ़े, क्या देखे और क्या सुने सब पर आज बाजार का पहरा है। बाजार ही आज यह सब तय करता है और अपने ही हिसाब से परोसता है। हमारा स्वाद और हमारा जयका सब ही तो आज बाजार के इशारे पर नाच रहा है। ज्ञान और कर्म की सभी इन्द्रियों पर बाजार का पहरा लगता जा रहा है। ऊपर से देखने पर लगता है कि बाजार एक उन्मुक्तता देता है, चुनने की छूट देता है और एक हद तक समर्थ होने का एहसास देता है। ऐसे में हम खुद को शक्तिशाली महसूस करने लगते हैं, पर यह हमारे मन का कोरा भ्रम होता है। क्योंकि इसका आधार आदमी की अपनी बुद्धि या विवेक न हो कर लुभावना विज्ञापन होता है, जो एक नया यथार्थ रचता है, जो आकर्षक और दिलासा देने वाला होता है। आज विज्ञापन हमें रचने लगा है और विज्ञापन की डोर व्यापारी के हाथ में है। जिसकी नजर केवल अपने स्वार्थ पर ही गड़ी रहती है।

वर्तमान समय में बाजार का उत्पाद दिन-प्रति-दिन बढ़ता जा रहा है। हर वस्तु को केवल अपने व्यक्तिगत मुनाफे के लिए खरीदा और बेचा जाता है। जिससे हमारा स्वार्थ पूरा हो जाये। हर किसी जगह पर आज बाजार है, चाहे वह घर हो, स्कूल हो, कोई सरकारी संस्था हो या व्यापारी हो, सभी को अपने स्वार्थ के लिए हर वस्तु में अपना मुनाफा देखना है, यही बाजार है। भारत देशी और विदेशी हर किस्म के व्यापारियों के लिए स्वर्ग सरीखा जा रहा है। यहाँ पर बढ़ती आबादी के चलते उपभोक्ताओं की कमी नहीं है। मध्य वर्ग खोखली प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए खरीदारी की ओर बढ़ रहा है, तांकि वह उच्च वर्ग की नकल कर आगे बढ़ सके। बाजार बढ़ रहा है और खरीदारी की प्रतिष्ठा और सभ्यता का पैमाना बनी जा रही है। आज के समय में

खरीदारी का उतना महत्व अपने लिए नहीं है, जितना औरों की तुलना में अपने लिए ऊँची जगह बनाने के लिए है और बनी हुई जगह को सुरक्षित रखने के लिए है। जो हमारे पास है, उससे संतुष्टि तो है जो नहीं है, उसकी असंतुष्टि अधिक है। और दूसरी तरफ बाजार है, जो चीजों के नए-नए माडल बना रहा है और आभाव का तीव्र एहसास दिलाने से बाज नहीं आता है। इस तरह की निरंतर असंतुष्टि और उससे उपजी कुंठा में जीना आज बहुत लोगों की नियति सी बनती जा रही है।

21वीं सदी के निबंधकारों में कैलाश वाजपेयी अपने निबंधों में बाजार की चिंता को लेकर अपने निबंधों में अपने भाव और विचार व्यक्त कर रहे हैं। इनके निबंध संग्रह *शब्द संसार* में संकलित निबंध ‘बाजार का उत्पाद’ में वह कहते हैं कि - सादा जीवन उच्च विचार वाले देश में अब क्या हो रहा है- इसे समझना या फिर इस पर विमर्श करना हो तो रंगीन काँच पर आने वाले विज्ञापनों के मनोविज्ञान का आकलन कीजिए। विज्ञापन मनोविज्ञान में विकृति पैदा करते हैं। लोभी, लम्पट, मदाक्रांत तो करते ही हैं, भीतर अकारण अमर्ष पैदा करते हैं। (87)

यहाँ गौर करें तो यह बात साफ़ हो जाती है कि यहाँ जरूरतों और व्यापार का सौदा हो रहा है। विज्ञापन जरूरतें बेचता है, जरूरी और गैर जरूरी दोनों तरह की, और हम सभी इन अंतहीन जरूरतों को खरीदते जाते हैं। इस बदलते मिजाज के नए जमाने में अगर किसी के पास कम जरूरत हो तो उसे असभ्य करार दिया जाता है। बाजार अपनी जरूरतों के मुताबिक सभ कुछ बेच रहा है। आज हम विज्ञापनों की प्रखर छाया तले अपना जीवन जी रहे हैं। खरीदने के लिए आज क्रेडिट कार्ड है, जो लगता है कि बिना किसी खर्च के हमारा काम आसान कर देता है। पर यह हमारी गलतफ़हमी केवल खरीदारी को बढ़ावा देने के लिए होती है।

आज बाजार का विन्यास और चरित्र बदल रहा है। कोई समय था जब मेले ठेले और बाजार करना उत्सव होता था, लेकिन आज बाजार विमानवीकरण का बहाना होता जा रहा है। इस कठिन समय में हमें यह समझना होगा कि बाजार हमारे लिए है, न कि हम बाजार के लिए। जीवन जीने का विवेक यदि नहीं होगा, तो न यह धरती बचेगी और न हम, क्योंकि धरती का कोष सीमित है। आज महानगरीय जीवन एक दु:स्वप्न सरीखा हुआ जा रहा है। संशय, असुरक्षा, अनिश्चितता और तीव्र गति के दबाव आदमी के जीवन और उसके रोजमर्रे के कामकाज में ऐसे तनाव को जन्म दे रहे हैं, जो व्यक्तिगत स्वास्थ्य के साथ-साथ सामाजिक सद्भाव को गहरा आघात पहुंचा रहे हैं। श्रीराम परिहार के निबंध *धुप का अवसाद* के अनुसार:

> वर्तमान में मानव ने अपनी योजना के तहत, अपना ध्यान अपनी सीमित स्व की मांगों की आपूर्ति तक संकुचित रखा है। आज जो कुछ हो रहा है, वह एक गहराते सांस्कृतिक संकट का संकेत है। सांस्कृतिक मूल्यों की जीवन और व्यवहार में सार्थक अभिव्यक्ति है और सतर्क, संवेदनशील दृष्टि में उनकी तलाश ही हमारा मार्ग प्रशस्त कर सकती है।(98)

व्यापार और बाजार अब शायद सामाजिक जीवन को समझने के लिए अधिक सटीक और कारगर रूपक हो रहे है। हमारी जरूरतें और हमारी पहचान अब हम नहीं तय करते, वरन बाजार कर रहा है। बाजार हमसे चलता है जरूर, पर उसी के साथ ही यह भी उतना ही सच्च है कि बाजार हमें चलाता है। जीवन के बाजारीकरण की यह प्रक्रिया बड़ी तीव्र गति से चल रही है और उपभोक्ता होने के गर्व में हम उपभोग्य बनते जा रहे हैं। यह परिवर्तन समाज के विभिन्न स्तरों को अलग-अलग ढंग से प्रभावित कर रहा है। यह प्रभाव प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों ही तरह सक्रिय है। इस बाजार के चलते हर कोई एक द्वीप बनता जा रहा है और संबंधों के दायरे सिकुड़ते

जा रहे हैं। हम पढ़े-लिखे और सुशिक्षित होकर उन्मुक्त हो रहे हैं। आज हमारे संबंधों के दायरे परिभाषित नहीं करते बल्कि दायरे हमारे लिए ब्याज हो गये हैं, काम निकालने के, उनका शुद्ध उपयोगितावादी मूल्य ही अब शेष रह गया है।

> *शब्द संसार* निबंध संग्रह में संकलित निबंध 'बाजार का उत्पाद' में कैलाश वाजपेयी ने कहा है-बाजारवाद के चलते कोई भी उपकरण से पहले उसके साथ की कितबिया को बड़े गौर से पढ़ना आवश्यक है। उस पूरी इबादत में कहीं पर एक चकमा देने वाला वाक्य भी होता है जिसका अर्थ दोहरा होता है। उस इबादत के विषय में अलग से ठीक-ठीक स्पष्टीकरण लिए बगैर कभी भी कोई भी उपकरण नहीं खरीदना चाहिए। हालाँकि कुछ चीजों के बारे में लिखी हिदायत भी व्यर्थ होती है। उदाहरण के लिए सिगरेट के पैकेट पर 'स्मोकिंग इज इंजुरियस टू हेल्थ' लिखा होने के बावजूद किस सिगरेट पीने वाले ने सिगरेट पीनी बंद की है। (89)

उपभोक्ता गरीब हो या अमीर, उसका बाजार और विज्ञापन और छद्म लुटेरों से बच पाना मुश्किल है। आज बाजार ने हर व्यक्ति और हर घर में परिवेश किया है, इस बात से हमें आज सुचेत होना है, हमारा जीवन और हमारा समाज इन समस्याओं से आज लड़ रहा है। हमें आज इन बातों को समझकर अपने जीवन में अपनाना है और नई पीढ़ी के लिए जागरूकता का काम साहित्य के द्वारा फैलाना है, तांकि हमारा समाज इन समस्याओं से छुटकारा पा सके। बाजार के चलते हुए हमारे पारिवारिक रिश्तों में बहुत बदलाव आ रहा है और साथ ही हमारे बच्चों पर बाजार का बुरा प्रभाव पढ़ रहा है, जो हमारे समाज के आने वाले भविष्य हैं। बच्चों को आज से यह शिक्षा देनी होगी, तभी आगे वह इन बातों को समझ सकते हैं। आज के बचपन पर इस व्यापक बदलाव की एक गहरी छाया देखी जा सकती है। घर, परिवार और

समुदाय के कामों और दायित्वों को उनसे छीन-छीन कर बाजार के हवाले करता जा रहा है। बच्चों के हर कदम पर नजर रखते हुए, बाजार, परिवार और समाज से उनका हक छीन कर उनके खाने-पीने, खेल-स्वास्थ्य, मनोरंजन, पढ़ाई-लिखाई सब कुछ को व्यापार- व्यवसाय का हिस्सा बना रहा है। इन सब पर बाजार का कड़ा और बड़ा पहरा है। उनके स्वाद, उनके भोजन, उनके पसंद और नापसंद को गढ़ता हुआ बाजार ही सब कुछ निश्चित करने लगा है। हँसना, क्रोध करना और प्यार करना भी मीडिया ही बता रहा है। वहीं बच्चों के पालन पोषण की विधि भी समझाने लगा है। भूमंडलीकरण के दौर ने इन सबके भयंकर प्रतियोगिता शुरू कर दी है।

आज देश में सामाजिक-आर्थिक विषमता की खाई बढ़ती जा रही है। ऐसे में सम्पन्न और गरीब दोनों ही तरह के बच्चे अपना बचपन खोते जा रहे हैं। बच्चे ही हमारी आने वाली पीढ़ी हैं, जिनको हम भविष्य मानते हैं और उनका जीवन बाजार के दाँव पर लगा हुआ है। इस पूँजी की रक्षा करना आज बहुत ही आवश्यक है और इसके लिए केवल आर्थिक ही नहीं सांस्कृतिक और शैक्षिक निवेश की आवश्यकता है।

5.1.7. उत्तर-आधुनिकतावाद

आधुनिकता को सही अर्थों में परिभाषित कर पाना एक जटिल प्रक्रिया है, क्योंकि आधुनिकता की अवधारणा किसी एक तत्व पर आश्रित नहीं है। आधुनिकता जीवन की प्रगतिशील अवधारणा है, एक दृष्टिकोण है, एक बोध प्रक्रिया है, एक संस्कार प्रवाह है। इसी तरह आधुनिकता नवयुगीन, वर्तमान से सम्बद्ध रीति-रिवाज और व्यक्ति के अर्थ में प्रयुक्त होता है। आधुनिकता केवल नवीनता के अर्थ को व्यक्त नहीं करती, अपितु इसमें देशकाल की जीवन्तता के साथ विवेकयुक्त वैज्ञानिक दृष्टि भी जुड़ी हुई है। आधुनिकता एक सतत प्रक्रिया है। जिसमें निरन्तरता का गुण विद्यमान है। यह एक दृष्टि भी है, जिसे नपे-तुले शब्दों से नहीं बंधा जा सकता। इसको हम केवल

एक स्थिति और धारणा ही नहीं कह सकते, यह निरन्तर नए होते जाने की वृति और वर्तमान का बोध भी है।

आधुनिकता का संस्कार वैज्ञानिक सोच से हुआ है। विज्ञान ने हमें पुरातन मूल्यों को तर्क की कसौटी पर कसना सिखाया है। इसने मानव ज्ञान को निरन्तरता और चिर नूतनता के प्रति विश्वस्त किया है और यही अर्थ आधुनिकता के मूल में भी है। आधुनिकता संस्कृति को गतिशीलता देती है तथा उसके संरचण की दिशा भी निर्देशित करती है। सच तो यही है कि आधुनिकता ही सांस्कृतिक विकास की प्रेरक है। वर्तमान में आधुनिकता ने मानव को इतना आधुनिक कर दिया है कि व्यक्ति अपने स्वार्थ में सब कुछ भूल रहा है, जो आज हमारी सांस्कृतिक चेतना को प्रभावित कर रही है। आधुनिकता शब्द बुरा नहीं है, अगर इसका सही प्रयोग किया जाए तो यह हमारी संस्कृति को और अधिक पुष्पित करता है। लेकिन वर्तमान में मानव इतना आधुनिक होता गया ,प्रकृति के द्वारा दिए गए साधनों का दोहन करने लगा और अपने अस्तित्व को भूलता गया। वर्तमान मानव ने अपना ध्यान केवल अपनी सीमित स्व की मांगों तक ही संकुचित रखा है।

कैलाश वाजपेयी ने अपने निबंध संग्रह *शब्द संसार* में संकलित निबंध ‘आधुनिकता का उदभव’ में कहा है - स्थिति यहीं तक रहती तो ठीक था मगर इसी बीच पूरे कार्यव्यापार से ईश्वर गायब हो गया है और तेजी से भागती कामकाजी दुनिया को सायबेरिया में पड़े दास्तायवस्की ने एक चुनौती भेज दी। आधुनिकता की इस यात्रा में बिम्बवाद, प्रतीकवाद, प्रगति और प्रयोग आदि अनेक वाद आये। भौतिकी, भौतिकी न रही प्रमात्रा से चलकर कण भौतिकी की गहराइयों में खो गई। आधुनिकता बुरी नहीं है अगर पूरी नवीनता से इसका प्रयोग मानव विकास में किया जाए। (218)

इस तरह हम यही कह सकते हैं, वर्तमान में मानव ने केवल स्वार्थवश होकर इसका प्रयोग किया है। मानव आधुनिक होता गया, अपने जीवन में सुख-सुविधा के अनेक साधन पैदा करता गया, जो कुछ जगह पर गतल साबित हुए हैं, जिन्होंने मानव जीवन को आज क्षति पहुंचाई है। वर्तमान के निबंधकारों ने भी कहा है कि आधुनिक शब्द बुरा नहीं है, अगर इसका सही अर्थों में प्रयोग किया जाए।

5.1.8. प्रकृति और पर्यावरण

पर्यावरण का अर्थ हमारे चारों ओर के वातावरण और उसमें निहित तत्वों और उसमें रहने वाले प्राणियों से है। हम अपने चारों और उपस्थित वायु, जल, भूमि, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे आदि सभी को अपने पर्यावरण में शामिल करते हैं। जिस तरह से हम अपने पर्यावरण से प्रभावित होते हैं, उसी तरह से हमारा पर्यावरण हमारे द्वारा किये गए कृत्यों से प्रभावित होता है। आज हमारा पर्यावरण बहुत अधिक मात्रा में बिगड़ रहा है। जिसका प्रभाव हमारे स्वास्थ्य और समाज पर पड़ता है। आज की सबसे बड़ी समस्या पर्यावरण की है, वृक्ष की कटाई, अधिक मात्रा में कारखाने और उद्योग, जंगलों की कटाई, कीटनाशक की अधिक मात्रा, रेफ्रिजरेटर, आदि जो बहुत प्रदूषण फैला रहे हैं। जिससे हमारा स्वास्थ्य आज बहुत बिगड़ रहा है। पर्यावरण की चिंता आज एक प्रमुख चिंता है।

हमारा पर्यावरण इतना प्रदूषित हो चुका है कि हमारी सहज-चर्या पर विच्क्षेप पैदा हो गया है। हम पहाड़ों को तोड़-फोड़ रहे हैं और जल का बेतहाशा व्यर्थ का इस्तेमाल कर रहे हैं। आवश्यकता आज इस बात की है कि हम फिर से प्रकृति संरक्षण पर विचार करें। भारतीय दृष्टि में प्रकृति को देवता माना गया है, इस देवता को हम प्रसन्न रखें। डॉ. श्यामसुंदर दुबे के निबंध संग्रह *अलोक अनवरत* में कतिपय ऐसे निबंध हैं, जो इस ओर संकेत करते हैं। पर्यावरण-प्रदूषण की दुश्चिंताओं का इजहार

करते निबंधकार ने इस कृति के अंतरंग में अपनी आस्थावादी भविष्य-दृष्टि को भी समावेशित किया है। भारतीय जीवनमूल्यों की प्रतिष्ठा के लिए किए जा रहे तमाम प्रयासों के बीच सर्जना का यह उपक्रम एक समर्थ समारंभ है।

हम लोग यह जानते हैं कि प्रकृति के बिना मनुष्य एक खंडित मनुष्य है। प्रकृति निरंतर मानव की सुरक्षा की पहरेदार है। प्रकृति मनुष्य की माँ है, पत्नी है, वह मनुष्य को पोषित करती रही है, यही नहीं वह मनुष्य को आह्लादित करती रही है। हम इस कठोर समय में प्रकृति से दूर होते जा रहे हैं, हम प्रकृति को तहस-नहस भी कर रहे हैं, उसे अपने स्वार्थों के कारण नष्ट करने पर उतारू भी हैं। लेखक ने अपने निबंधों में प्रकृति के अनेक रूपों-रंगों को अपने लेखन में स्थान दिया है। ऋतुओं और प्रकृति का विकल्प हमारी टेक्नोलाजी के पास नहीं है। डॉ. दुबे के निबंध *अलोक अनवरत* में उनके अनुसार:

> अब बड़े नगरों में प्लास्टिक के पेड़ सड़कों पर लगाए जा रहे हैं, ये पेड़ एक ही दृश्य सज्जा में सदैव तैनात रहेंगे। न इन पर कोयल बोलेगी, और न इन पर भौरे डोलेंगे। ऋतु-परिवर्तन के बोधकारी पहचान चिह्नों से लोग अनभिज्ञ होते जाएँगे। वह लोग तो अनभिज्ञ हो ही जाएँगे, जो विशाल भवनों के संकुल में जन्म लेंगे और वह उन सड़कों पर तेज रफ़्तार वाहनों में सवार होकर बड़े होंगे, जिन सड़कों पर धरती का वानस्पतिक साहचर्य उन्हें उपलब्ध नहीं हो पाएगा। (54)

प्रकृति के निर्माण से ही मनुष्य और अन्य प्राणियों का प्रकृति के साथ गहरा संबंध रहा है। आधुनिकता के चलते हुए, आज मानव ने अपनी सुख सुविधा के लिए पर्यावरण का इस प्रकार संहार शुरू किया है कि जीव-जंतुओं का अस्तित्व खतरे में

पड़ गया है। प्रकृति पर विजय पाने के लिए मनुष्य के अहंकारपूर्ण अभियान ने मानव को विनाश के कगार पर लाकर खड़ा कर दिया है।

डॉ. श्यामसुंदर दुबे ने अपने निबंध संग्रह *अलोक अनवरत* में संकलित 'ऋतु पावस नियरानी' निबंध में ऋतुओं की महता को प्रतिपादित करते हुए, बारहमासा के सौन्दर्य को व्यक्त किया है। उनके अनुसार ऋतुएँ ही काल की ऊर्जा का आधार बनती है। काल या समय की भौतिक उपस्थिति प्रकृति की गतिशीलता के पहचान-चिह्नों से अभिव्यक्त होती है। धरती का समस्त ऋत इन्हीं ऋतुओं में समाया है। ऋतुओं की लीला तो ऋतुओं के अंतर्ध्वस छिपी है। ऋतुओं की सक्रियता जितनी बाह्य प्रकृति में सन्निविष्ट है, उतनी ही वह आंतरिक प्रकृति में भी समाविष्ट है। लेखक के अनुसार:

> वर्ष स्मृतियों की ऋतु है। लोक घरघुस्सू नहीं हैं, फिर भी वर्ष उसे घर में कैद कर देती है। किंतु जीवन व्यापार तो रुकता नहीं है। प्रिय को खेत-खलिहान, देह-परदेश की यात्रा तो करनी ही पड़ेगी, इसलिए स्मृति के साथ प्रिय की कुशल क्षेम का तीव्र अनुभव घरघुसी वर्ष चर्चा में केंद्रित है। (49)

इस तरह से आज के वातावरण का हमें वर्तमान के निबंधों से पता चलता है। जिसमें वृक्ष को काटने की समस्या, आज सबसे अधिक देखने को मिलती है। कोई समय था जब वृक्ष को पूजा जाता था, जैसे तुलसी, नीम और पीपल आदि। डॉ. दुबे अपने निबंध में पीपल को लेकर हमें परिचय कराते हैं कि कोई समय था पीपल के नीचे पंचायत बैठती थी, वहाँ सच बोला जाता था, लेकिन आज तो कहीं पीपल का वृक्ष देखने को नहीं मिलता। वृक्ष को काटने से आज हमारा पर्यावरण बहुत प्रदूषित हो रहा है। हमें सभी को मिलकर, इन बातों का ध्यान करना होगा और हमें भी चाहिए, वर्तमान में हम अधिकतर वृक्ष लगाएँ और इसके लिए लोगों में जागरूकता भी

फैलाएँ। पुरातन समय में तुलसी को बेटी की तरह मानकर, उसकी पूजा की जाती थी और हर घर में एक तुलसी का पौदा होता था।

पर्यावरण प्रदूषण के बहुत से कारण है, जिससे हमारा पर्यावरण बहुत प्रभावित होता है। मानव द्वारा निर्मित फैक्ट्री से निकलने वाले अवशेष हमारे वातावरण को बहुत प्रदूषित करते हैं। लेकिन ऐसा भी कदापि नहीं है कि इस विकास की दौड़ में हम अपने वातावरण को सुरक्षित रखने के लिए, अपने विकास को नजर अंदाज कर दें। आज हम कुछ बातों को ध्यान में रखकर अपने वातावरण को बचा सकते हैं। आज के समय में घर में इतने सदस्य नहीं होते, जितने एक घर में वाहन होते हैं। घर में छोटा सा बच्चा भी साइकिल की जगह गाड़ी चलाना पसंद करता है। मिलों, कारखानों तथा व्यावसायिक इलाकों से बाहर निकलने वाले धुएं तथा विषैली गैसों ने पर्यावरण की समस्या को उत्पन्न कर दिया है। आज हमारे जो साधन हैं बसों, कारों तथा ट्रकों से निकलने वाले अधिक विषैली गैंसों ने हमारे चारों तरफ प्रदूषण की समस्या को और गंभीर कर दिया है।

बहती नदियों में सीवरेज के गंदगी वाले पानी इस तरह से मिल जाते हैं, जिससे मानव और पशुओं का पीने का पानी बहुत गन्दा हो जाता है। जिसके परिणामस्वरूप दोनों निर्बलता, बीमारी तथा गंभीर रोगों के शिकार बन जाते हैं। बड़े-बड़े नगरों में गरीब लोग रहते हैं, जो इस पानी का बहुत अधिक मात्रा में उपयोग करते हैं। उनकी समस्या को बहुत गंभीर कर दिया है, आज के इस प्रदूषित माहौल ने, उनका जीवन आज खतरे में डाल दिया है। शहरीकरण और आधुनिकीकरण पर्यावरण प्रदूषण के प्रमुख कारण हैं। मानव द्वारा आज अपनी सुविधाओं के लिए पर्यावरण को नजर अंदाज करना स्वभाविक सा हो गया है। जिसका बुरा प्रभाव आज और आने वाले समय में और भी अधिक होगा। जब हमारी प्रकृति और पर्यावरण अच्छा नहीं होगा,

तो मानव का स्वास्थ्य कैसे अच्छा होगा और फिर मानव अगर स्वस्थ नहीं है, फिर हमारा समाज कहाँ जाएगा। अच्छा और प्रफुल्लत समाज तभी होगा, जब यहाँ रहने वाले मानव का स्वास्थ्य सही होगा, तभी वह समाज में अच्छे कार्य करेगा, जिससे हमारा समाज और भी पुष्पित और पल्लवित होगा। वर्तमान में मानव बिना कुछ सोचे-समझे पेड़ों को काटता जा रहा है, लेकिन आज वह यह बात नहीं सोचता कि हमें जीवन जीने के लिए वायु इन्हीं पेड़ों से प्राप्त होती है।

हम जिस पर्यावरण में रहते हैं, वह बहुत तेजी से प्रदूषित होता जा रहा है और हमें आवश्यकता है कि हम अपने पर्यावरण की देखरेख और संरक्षण अच्छे तरीके से करें। हमारे देश में पर्यावरण संरक्षण की परंपरा बहुत पहले से चली आ रही है। हमारे पूर्वजों ने विभिन्न पेड़ों को देवी-देवताओं की सवारी मानकर और विभिन्न वृक्षों में देवी-देवतों का निवास मानकर, उनका संरक्षण किया है। पर्यावरण संरक्षण और पर्यावरण के बीच संबंधों को सुधारने की एक प्रक्रिया होती है, जिसके दो उद्देश्य होते हैं। पहला उन क्रियाकलापों का प्रबंधन होता है, जिसकी वजह से पर्यावरण को हानि होती है। दूसरा मानव की जीवन शैली को पर्यावरण की प्राकृतिक व्यवस्था के अनुरूप आचरणपरक बनाना, जिससे पर्यावरण की गुणवता बनी रह सके। प्रदूषण और गंदगी का निदान बहुत आवश्यक है, जिससे हमारे पर्यावरण की सुरक्षा हो सके। कारखानों और मिलों से निकलने वाले धुएं एवं विषैली गैंसों का उचित प्रकार से निस्तारण किया जाना चाहिए और इसके लिए सफल कार्य किये जाने चाहिए। व्यावसायिक इलाकों में अभिलंब प्रदूषण नियंत्रण के लिए संयत्र लगाए जाने चाहिए।

कुछ राज्य सरकारों ने पर्यावरण की सुरक्षा के लिए, बहुत से कानून भी लागू किये हैं। केंद्रीय सरकार के अंतर्गत पर्यावरण की सुरक्षा के लिए एक मंत्रालय कार्यरत है। इस समस्या के समाधान के लिए जन साधारण का सहयोग बहुत ही सहायक एवं

उपयोगी सिद्ध होता है। हमें भी सरकार की तरह हमारे वातावरण को बचाने के लिए कुछ नियम बनाने आवश्यक हैं। विषैली गैंस निकालने वाले कम से कम साधनों का उपयोग हमें करना चाहिए। घर में कूड़ा आदि के लिए एक जगह निर्धारित करनी चाहिए, ऐसे खुले में नहीं फैंकना चाहिए, ऐसे ही हमारे वातावरण के लिए हमें भी सहयोग करना चाहिए।

5.2. राजनैतिक पक्ष

5.2.1. राजनीति का अर्थ स्वरूप और परिभाषा

राजनीति दो शब्दों का एक समूह है राज + नीति। राज का अर्थ होता है, शासन और नीति का अर्थ होता है, उचित समय और उचित स्थान पर उचित कार्य करने की कला। अर्थात नीति विशेष के द्वारा शासन करना या विशेष उद्देश्य को प्राप्त करना ही राजनीति कहलाती है। अगर हम दूसरे शब्दों में कहें तो जनता के सामाजिक एवं आर्थिक स्तर को ऊँचा करना ही राजनीति है। नागरिक स्तर पर या व्यक्तिगत स्तर पर कोई विशेष प्रकार का सिद्धान्त एवं व्यवहार ही राजनीति के अंतर्गत आता है। हमारे देश में अच्छे कार्य करना शासन के द्वारा, एक ईमानदार राजनेता के द्वारा लोगों के हितों के लिए किया गया कार्य राजनीति के अंतर्गत आता है। अगर एक धार्मिक राजनेता होगा वह गरीब लोगों को उनके सही बनते हक देगा और वह स्वार्थ के बारे कभी भी अपना दृष्टिकोण नहीं अपनाएगा, इसी को राजनीति से परिभाषित किया जाता है। शासन के द्वारा उचित समय पर उचित कार्य करने की कला सबसे अच्छी राजनीति है।

राजनीति में बहुत सारे रास्ते अपनाये जाते हैं, जैसे- राजनीतिक विचारों को आगे बढ़ाना, कानून बनाना, विरोधियों के विरुद्ध युद्ध आदि शक्तियों का प्रयोग करना। राजनीति विभिन्न प्रकार के स्तरों पर हो सकती है – गाँव की परम्परागत राजनीति से लेकर स्थानीय सरकार, सम्प्रभुत्वपूर्ण राज्य या अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर। राजनीति का इतिहास अति प्राचीन है, जिसका विवरण विश्व के सबसे प्राचीन सनातन धर्म ग्रंथों में देखने को मिलता है। इसकी शुरूआत की अगर हम बात करें, तो यह रामायण काल से भी अति प्राचीन है। महाभारत महाकाव्य में इसका सर्वाधिक विवरण देखने को मिलता है। कुछ लोगों का यह कहना है कि अरस्तु राजनीति के जनक हैं।

राजनीति समाज के संगठित जीवन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण क्रियाकलाप है। अगर यहाँ पर हम यह बात करें कि समग्रता के स्तर पर सामाजिक या राजनीतिक चिंतन के बिना जीवन कठिन है, तो हमें यही उतर मिलेगा कि आप गलत हैं। लोग अपने आर्थिक तथा राजनीतिक क्रियाकलाप में जैसा व्यवहार करते हैं, वैसा क्यों और कैसे करते हैं, इसी का व्यवस्थित अध्ययन करना आवश्यक बात होती है। राजनीतिक व्यवहार लगभग पूर्ण रूप से आर्थिक तथा सामाजिक व्यवहार से जुड़ा हुआ है और आर्थिक तथा सामाजिक व्यवहार राजनीति व्यवहार से जुड़ा हुआ है। समय के दौर में हमारी राजनीति आज सबसे बड़ी समस्या है। आज के राजनेता केवल मात्र स्वार्थ को लेकर चलते हैं। लोगों के हितों की किसी को कोई चिंता नहीं है। राजनीति केवल धन कमाने तक सीमित है। उधर गरीब लोग और आर्थिक स्थिति में कमज़ोर होते जा रहे हैं। इसलिए वर्तमान राजनीति में बहुत समस्याएँ घर कर चुकी हैं। इन दिनों अगर युवा लोगों की बात करें तो वह बहुधा गर्व की भावना से घोषित करके देखे जाते हैं कि राजनीति में मेरी कोई दिलचस्पी नहीं है। उनकी दृष्टि में आज राजनीति केवल दलगत लाभों के लिए राजसत्ता में स्थान प्राप्त करने की जोड़-तोड़ की अधम कला है। आज उन्हें अपना कार्य करना अच्छा लगता है और उनकी राजनीति में कोई चाहना नहीं है। वर्तमान में अगर इसके बचाव के लिए कार्यक्रम नहीं हुए तो यह शब्द गाली बनकर रह जाएगा।

राजनीति : अर्थ एवं परिभाषा

रामचन्द्र वर्मा ने राजनीति शब्द का अर्थ बताते हुए *प्रमाणिक हिन्दी शब्दकोश* में कहा है कि - राज्य की वह नीति जिसके अनुसार प्रजा का शासन और पालन तथा दूसरे राज्यों से व्यवहार होता है, उसे राजनीति कहा जाता है। अर्थात ऐसी नीति जिसके माध्यम से हमारे समाज के नागरिकों के साथ-साथ संसार के

अन्य राज्य के साथ भी हमारे व्यवहार का निर्धारण और निर्माण किया जाता है। (956)

नगेन्द्रनाथ बसु ने अपने ग्रन्थ *हिन्दी विश्वकोश* में राजनीति को इस तरह स्पष्ट किया है - वह नीति जिसका अवलम्बन कर राजा अपने राज्य की रक्षा और शासन दृढ़ करता है। इसके प्रधान दो भेद हैं- एक तंत्र और दूसरा आवाय। वह नीति जिसके द्वारा अपने राज्य में सुप्रबन्ध और शांति स्थापित की जाए, तंत्र नीति कहलाती है और जिसके द्वारा राष्ट्रों पर से सम्बन्ध दृढ़ किया जाएँ, वह आवाय कहलाती है। (321)

श्रीमती विनोद जैन अपनी पुस्तक *स्वातन्त्र्योत्र हिन्दी महिला नाटककारों के नाटकों में सामाजिक चेतना* में राजनीति को इस प्रकार प्रभाषित किया है - समाज को सुचारू रूप से चलाने के लिए सामाजिक नीति-नियमों को दृढ़ करने का कार्य राजनीति ही करती है। देश और काल के अनुसार राजनीति के नियमों तथा नीतियों में परिवर्तन होता रहता है। परन्तु फिर भी सामाजिक नियमों की उपेक्षा राजनीतिक नियम अधिक बंधनकारी होते हैं। किसी जाति या समाज का अपराध राजनीतिक दृष्टि से दण्डनीय है ही परन्तु सामाजिक व्यवस्था के नियामक उसे क्षम्य ठहरा सकते हैं। (13)

राजनीति और उसके सामाजिक सम्बन्ध के प्रति अपने विचार रखते हुए डॉ. नगेन्द्र ने अपनी *ग्रंथावली (खण्ड 4)* में कहा है – राजनीति का सामान्य अर्थ है, शासन तंत्र और उसकी प्रविधि। इस प्रकार राजनीति की प्रविधि में शासन तंत्र, उसके सिद्धान्त और उद्देश्य, पद्धति प्रक्रिया, रीति-नीति, संस्था संगठन आदि का विधान रहता है। फलत: शासन और शासित जनता परस्पर सम्बन्ध, सहयोग और संघर्ष तथा उनसे प्रेरित आन्दोलन आदि का अंतर्भाव भी

राजनीति में अनिवार्यत हो जाता है। शासन तंत्र की व्यवस्था मनुष्य के सामुदायिक जीवन में संरक्षण एवं नियंत्रण के लिए की जाती है। अत: समाज व्यवस्था और शासन व्यवस्था अंगांगी रूप से एक-दूसरे को प्रभावित करती रहती है। और इसी दृष्टि से राजनीति, सामाजिक परिवेश का महत्वपूर्ण घटक बन गई है। (277)

इस तरह हमें यह सभी अवधारणा को देखते हुए, यही निष्कर्ष प्राप्त होता है कि राजनीति शासन के द्वारा किया गया, उचित समय पर उचित कार्य है, जो जनता के हितों के लिए किया जाता है और अपना शासन भी व्यवस्थित होता है। उसको भी दृढ़ करने का काम राजनीति ही करती है। अच्छी राजनीति होगी तो हमारा समाज भी अच्छे से व्यवस्थित होगा और अपने हितों को लोग प्राप्त करके अच्छा जीवन बतीत करेंगे, तभी हमारा समाज सही दिशा की ओर बढ़ेगा। लेकिन वर्तमान समय स्वार्थ का समय है। यहाँ सभी को अपने धन और स्वार्थ से मतलब है। जिसके कारण आज हमारी राजनीति खण्डित हो रही है। जिससे आने वाली पीढ़ियों को खतरा बन सकता है। ऐसी राजनीति पर आज विचार-विमर्श करने की आवश्यकता है, तांकि हम इन बातों को अच्छे से समझ सकें और नई पीढ़ी को भी इसका ज्ञान दे सकें, तभी यह समस्या से छुटकारा पाया जा सकता है।

हम जो कुछ भी कहते हैं, या करते हैं, उसमें हम एक स्थिति अपना रहे होते हैं, हमें वह पसंद हो या ना हो, वह स्थिति राजनीतिक ही है। क्योंकि राजनीति का सम्बन्ध जीवन की हर बात से है। हमें क्या करना है, हमें क्या शिक्षा लेनी है, लेनी है या नहीं लेनी है, हमें कौन सा काम मिलेगा, वह मिलेगा या नहीं मिलेगा। अपने परिवार को चलाने के लिए कितने पैसों की जरूरत होगी, हम कितना पैसा कमा सकते हैं, या हमें कितना पैसा कमाना चाहिए और उसमें से हमें कितने की जरूरत है

और कितना राज्यों को करों के रूप में देना चाहिए। यह तमाम प्रश्न राजनीतिक प्रश्न ही तो हैं। इसीलिए जब हम यह कहते हैं कि हम राजनीति से दूर रहना चाहते हैं, और इसके सम्बन्ध में कुछ नहीं करना चाहते, तब भी वस्तुत: हम ऐसी राजनीतिक स्थिति अपना रहे होते हैं, जो मौजूदा राजनीतिक व्यवस्था के हक में है। तो यही कहा जाता है कि हम जो कुछ भी करते हैं, या नहीं करते हैं, वह किसी-न-किसी रूप में राजनीति है, चाहे हम उसे पसंद करे या न करें।

मानव चिंतन ने विकास का जो रास्ता अपनाया, वह मुख्य रूप से इतिहास के द्वारा निर्धारित किया गया। सामान्यत: राजनीति का सम्बन्ध राज्य और सरकार से रहा है। उसमें संसद, कार्यपालिका, न्यायपालिका, नौकरशाही आदि औपचारिक राजनीतिक संस्थाओं के अध्ययन का समावेश रहा है। इस प्रकार राजनीति शासन तथा बुनियादी राजनीतिक संबंधों राज्य और व्यक्ति के बीच के संबंधों का विज्ञान और कला है।

5.2.2. वर्तमान राजनीतिक दशा

हमारे भारत देश में अगर वर्तमान समय की बात की जाए, तो लोक अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो गए हैं, लेकिन संविधान ने देशवासियों को जो दायित्व दिए थे, उनके निर्वहन से उन्होंने अपने हाथ पीछे खीच लिए। आज भ्रष्टाचार, कालाबाजारी, स्वार्थ भावना, आदि जैसी अनेक समस्याओं से भारतीय लोग झेल रहे हैं। कोई नेता पहले की तरह भारत के लिए कुछ करने के लिए दिखाई नहीं दे रहा। वर्तमान राजनीतिक दशा बहुत बिगड़ चुकी है। जिसके चलते आज हमारा समाज बहुत सी कुप्रथाओं में घिरता हुआ नजर आ रहा है। जब देश के राजनेता स्वार्थी होंगे तो देश अनेक समस्याओं में फसा रहेगा। अनपढ़ नेता राजनीति में आज भी हैं, जिनके ऊपर कई आरोप लगे हुए हैं, ऐसे नेता को आज बाहर निकालने का समय है और उन

पर कारवाई करने का समय है। आज सभी नेता अपने स्वार्थ के लिए वोट के लिए, या चुनाव जीतने के लिए, कुछ भी करने को तैयार हैं। चाहे हमारी नई पीढ़ी इसमें कितनी बर्बाद क्यूँ न हो जाए, लेकिन राजनीतिक नेता लोगों को तो अपना स्वार्थ निकालना है।

सोने की चिड़िया कहे जाने वाला भारत आज कहाँ जा रहा है। कुछ स्वार्थी लोगों ने हमारे समाज और संस्कृति को दुविधा में डाल दिया है। आज समाज और देश को निजात दिलाने के लिए, न तो कोई राजनीतिक पार्टी अपने को आगे लाकर, समाज में व्याप्त समस्या के समाधान पर गौर करती हुई दिख रही है, और न ही समाज को आजादी के पहले देश और समाज के लिए, सबकुछ न्यौछावर कर देने को उतावला दिखाई पड़ता है, देश की आजादी के बाद में देश में रहने वाले नेताओं के सुर ही नहीं बदले, आज ऐसे दौर में समाज के वासियों का रहने का तरीका और सलीका बदल चुका है। हमारे देश के स्वार्थी नेताओं को समाज का सत्यनाश करके केवल अपने स्वहितों की पड़ी रहती है। हमारे आस-पास घटित हो रही समस्याओं और नेताओं की गंदी नीति को हम अक्सर देखते और सुनते हैं, कैसे वह अपने चुनाव जीतने के लिए हमारे समाज के अनपढ़ लोगों को कुछ पैसे और नशीली वस्तुओं देकर अपना स्वार्थ निकाल रहे हैं। उससे भी बड़ी दुख की बात यह है कि हमारे पढ़े लिखे लोग ऐसे नेताओं का साथ देते हैं। कुछ पैसों के लिए और अपना ईमान बेच रहे हैं। अपना हक बेच रहे हैं। हमारी आने वाली पीढ़ी को ऐसी स्थितियों से बचाना होगा, उनको यह ज्ञान देना आवश्यक है।

देश के संविधान निर्माण के समय संविधान में देश और समाज के प्रति समर्पण के लिए लोगों को जो उतरदायित्व दिए गए थे, आज इन सब का हनन होने के अतिरिक्त कुछ भी नहीं हो सका है। समय और परिस्थिति में बदलाव के साथ मानव जीवन के व्यवहार और उसके कार्य करने के तरीके में परिवर्तन होने चाहिए, लेकिन एक दायरे

में रहकर, लेकिन वर्तमान विकास की अंधी दौड़ में अपने हितों के पीछे समाज और राजनीतिक दलों की नीति पागलों की तरह होती जा रही है। देश में विकास की अंधी लीला, जिस तरह से अपना कारवां बाँधकर आगे बढ़ने को बेताब दिख रही है, उसमें संविधान में वर्णित समाज, देश और पर्यावरण व्यवस्था को चलाने के कुछ मुख्य संदर्भ काफी पीछे छूटते जा रहे हैं, जो हमारी आने वाली पीढ़ी के लिए खतरनाक घंटी मानी जा सकती है। लेकिन वर्तमान दौड़ में अपने को बनाए रखने के लिए, देश और समाज का प्रतिष्ठावान तबका गरीबों और दलितों को दबाने में ही अपना भला समझता है।

आज हमारे देश में बेरोजगारी और भुखमरी की समस्या व्याप्त है, लेकिन राजनीतिक दल अपने स्वार्थों को लेकर संसद को केवल अपने स्वार्थ के लिए, एक अड्डा मानकर चल रहे हैं। हजारों करोड़ों रूपए खर्च करके जिस प्रतिनिधि को संसद में भेजा जाता है, वह वहाँ पहुँचते ही अपने पूरे वादे और जिम्मेदारियों को भूलकर, अपने हितों के लिए राजनीति साधने में दिखाई देता है, यह बहुत बड़ा सच है। डॉ. कृष्णबिहारी मिश्र वर्तमान राजनीतिक नेताओं के बारे में बात करते हुए, हमें बताते हैं कि आज के राजनेता अपना कार्य भूल गये हैं। देश आजादी के समय जो कसमें खाई जाती हैं, वह आज नेता भूल चुके हैं। मिश्र अपने निबंध संग्रह *अराजक उल्लास* में कहते हैं:

> हमारे देश ने सैंकड़ों वर्ष पश्चात सन 1947 में अंग्रेजी दासत्व से आजादी पाई थी। आजादी के समय देश के समस्त नेताओं ने गाँधी के 'रामराज्य' के स्वप्न को साकार करने का संकल्प किया था, परन्तु वर्तमान में भारत की राजनीति का अपराधीकरण जिस तीव्र गति से बढ़ रहा है, इसे देखते हुए कोई भी कह सकता है कि हम अपने लक्ष्य से पूर्णतया भटक चुके हैं। (99)

देश की वर्तमान राजनीति का कटु सत्य यह है कि इस समय जितने राजनीतिक दल राजनीति के खेल में लगे हैं, उनका मुख्य उद्देश्य न धर्म को राजनीति से अलग करना है, न राजनीति को भ्रष्टाचार से मुक्त कराना है। उनका मूल उद्देश्य लोगों का वोट बटोरकर सत्तासीन होना है। राष्ट्रीय कांग्रेस, समाजवादी दल, जनता दल, सभी वामपंथी दल, इसी उद्देश्य से प्रेरित हैं। भारतीय जनता पार्टी भी जो देश की सबसे बड़ी सम्प्रदायवादी पार्टी कही जाती है, वह भी इसी उद्देश्य से प्रेरित लगती है। सभी दल अपने को राजनीति में धर्म-निरपेक्ष कहते हैं। यह भी उतना ही सत्य है कि व्यवहार में सभी दल, धर्म, सम्प्रदाय और जाति का सहारा लेते हैं। अपना निर्वाचन क्षेत्र चुनने के लिए, जहाँ उनके धर्म, जाति और सम्प्रदाय के लोग अधिक संख्या के हों। भारत की राजनीति का आज यह सबसे शर्मनाक पाखण्ड है। इसके बाद दूसरा पाखण्ड यह है कि अल्पसंख्यक होने के नाते, उसे ऐसा करने का अधिकार है। जब हिन्दू राजनीतिक मंच से भूले-भटके धर्म का नाम ले लेता है, तो उसे तुरंत सम्प्रदायवादी कह दिया जाता है। मानो अल्पसंख्यक प्रवृति केवल बहुसंख्यक हिन्दुओं के पल्ले पड़ी है। इस तरह वर्तमान राजनीतिक दल आज अपने ही स्वार्थ के लिए काम कर रहे हैं। उनको किसी के हितों की कोई चिंता नहीं है। संसद में पहुँचते ही बड़े-बड़े वादे करने वाले नेता, सब वादे और जिम्मेदारियां झट से भूल जाते हैं।

5.2.3. वैश्वीकरण

वैश्वीकरण का एक राजनीतिक पक्ष भी है। आज किसी देश में कोई बड़ी घटना घटती है, तो उसके पक्ष या विपक्ष में राजनीतिक प्रतिक्रियाएँ विभिन्न देशों से आने लगती हैं। बात वक्तव्यों पर समाप्त नहीं हो जाती, बल्कि विश्व शक्तियाँ छोटे देशों की राजनीति में हस्तक्षेप करने को व्यग्र दिखाई देती हैं और अनेक अवसरों पर, उन्होंने अनेक देशों की राजनीति में हस्तक्षेप भी किया है। अनेक ऐसी घटनाओं की लम्बी

सूची बनाई जा सकती है। विश्व शक्तियों का विश्व स्तर पर राजनीतिक हस्तक्षेप नव उपनिवेशवादियों की राजनीति का एक पैंतरा है, जिसकी आड़ में वह एक तरफ अपने अस्त्रों-शस्त्रों की बिक्री का नया बाजार ढूँढते हैं और दूसरी तरफ वे विश्व शान्ति की स्थापना का अभिनय भी करते दिखाई देते हैं। शायद उनकी गतिविधियों का निहितार्थ यह है कि हमसे अस्त्र-शस्त्र खरीदो और शान्तिपूर्वक रहो।

वैश्वीकरण के इस दौर में लगता है कि विश्व की राजनीति, आजकल तरह-तरह से अधिक मुनाफ़ाकमाने के लिए अर्थात आर्थिक लाभ के लिए चलाई जा रही है। जो देश अणुशस्त्रों का उत्पादन करते हैं, वे उन्हें खुलकर और कभी गुप्त रूप से दूसरे देशों को बेचते रहते हैं। वैसे तो हर युग में राजनीति आर्थिक हितों द्वारा अनुशासित होती रही, पर आजकल व्यापार और उद्योग धन्धों के भूमंडलीकरण के दौर में राजनीति का संचालन, नए बाजारों को ढूँढने और आर्थिक वर्चस्व स्थापित करने की महत्वाकांक्षा के वशीभूत होकर किया जा रहा है। आधुनिकता की चकाचौंध, स्वतन्त्रता के मधुर संगीत, प्रजातन्त्र की धूम के कारण दूसरे देशों में अपना शासनतन्त्र स्थापित करना जब सम्भव नहीं रहा, तो यह सोचा गया कि दुनिया के कोने-कोने में अपना आर्थिक वर्चस्व स्थापित करो। वैश्वीकरण का आज इस आधार पर समर्थन किया जा सकता है कि इसके माध्यम से नए विचारों, नई तकनीकों, नई वैज्ञानिक उपलब्धियों से भारत का परिचय होगा और रोजगार के अवसरों में वृद्धि होगी और अर्थव्यवस्था में कुछ सुधार हो सकता है। पर इसके लिए हमें अन्धाधुन्ध उदारीकरण के बजाये सशर्त उदारीकरण से काम लेना होगा।

डॉ. सुधेश ने अपने निबंध संग्रह *चिन्तन अनुचिन्तन* में संकलित निबंध 'वैश्वीकरण के प्रभाव' में कहा है – वैश्वीकरण या भूमंडलीकरण के आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पक्षों पर ध्यान देकर भारत को अर्थनीति, राजनीति और समतामयी समाज नीति और सांस्कृतिक नीति

बनानी होगी। पश्चिमी माडल का अंधानुकरण हमारे देश के हित में नहीं होगा। वैश्वीकरण और स्वदेशी में एक स्वस्थ सन्तुलन स्थापित करना होगा। (96)

5.2.4. भ्रष्टाचार

भ्रष्टाचार का अर्थ है 'भ्रष्ट आचरण' या पतित व्यवहार। स्वार्थ में लिप्त होकर कोई भी किया गया गलत काम भ्रष्टाचार होता है। जब कोई व्यक्ति न्याय व्यवस्था के मान्य नियमों के विरूद्ध जाकर, अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए गलत आचरण करने लगता है, तो वह व्यक्ति भ्रष्टाचारी व्यक्ति कहलाता है। वर्तमान समय में बहुत भ्रष्टाचार बढ़ चुका है। आज लाखों करोड़ों के घोटाले होने आम बात हो गई है। भ्रष्टाचार के बहुत रंग रूप हैं जैसे- रिश्वत, काला बाजारी, जान भूझकर दाम बढ़ाना, पैसा लेकर काम करना, चुनाव में धांधली, ब्लैकमेल करना, झूठी गवाही, परीक्षा में नकल, परीक्षार्थी का गलत मूल्याँकन, पैसे लेकर वोट देना, और जो भी कार्य जो अपने स्वार्थ के लिए, हमारी न्याय व्यवस्था के विरूद्ध हो सभी काम में भ्रष्टाचार है।

भ्रष्टाचार के कारण

वर्तमान में राजनीतिक दल सबसे अधिक भ्रष्टाचार को बढ़ावा दे रहे हैं। आज सभी राजनेता अपने स्वार्थ के लिए काम कर रहे हैं। किसी को अपने किये गये वादे और जिम्मेदारियाँ याद नहीं है। हर समस्या के पीछे कोई न कोई कारण अवश्य होता है। इसी तरह से भ्रष्टाचार के पीछे बहुत कारण है। भ्रष्टाचार के मूल में मानव का कुंठित अहंभाव, स्वार्थपरता, भौतिकता के प्रति आकर्षण, कुकर्म और अर्थ की प्राप्ति का लालच छुपा हुआ होता है। आज के समय में अपनों का पक्ष लेना या भाई-भतीजावाद भी भ्रष्टाचार का प्रमुख कारण है। जब किसी को अभाव के कारण कष्ट होता है, वह भ्रष्ट आचरण करने के लिए विवश हो जाता है। असमानता, आर्थिक, सामाजिक या सम्मान, पद-प्रतिष्ठा के कारण भी व्यक्ति अपने आपको भ्रष्ट बना लेता

है। भ्रष्टाचार आज एक बीमारी की तरह है। आज भ्रष्टाचार भारत देश में तेजी से बढ़ रहा है। आज जीवन का कोई भी क्षेत्र इससे बचा नहीं है, आज देखें तो नौकरी के लिए पैसा, किसी का आपसी मामला हो तो सभी सरकारी कर्मचारी पैसा वसूलते हैं, तभी उनका काम होता है।

मनुष्य का आचरण, जल्दी बडने की चाह, आर्थिक परिस्थिति, महत्वकांक्षा, लालच, दबाव वश भ्रष्टाचार, और कठोर कानून का न होना भी आज भ्रष्टाचार के प्रमुख कारण माने जाते हैं। आज के समय में तो पुजारी भी भक्तों की स्थिति देखकर ही फूल डालता है। किसी भी धार्मिक स्थल पर जाकर देखा जा सकता है कि जो लोग धर्मात्मा कहलाते हैं, वही लोग भ्रष्टाचार की गंगा में डुबकियाँ लगाते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में भी भ्रष्टाचार दिख रहा है, एडमिशन से लेकर समस्त प्रकार की शिक्षा प्रक्रिया तथा नौकरी पाने, ट्रांसफर करवाने और प्रमोशन तक भ्रष्टाचार दिखाई देता है। हमारे अपने अधिकारों के लिए हमें पैसा देना पड़ता है। आज बैंकों से लोन लेना हो, पटवारी से जमीन का लेखा-जोखा, किसी भी प्रकार का प्रमाण पत्र बनवाना हो, तो रिश्वत दिए बिना हमारा काम नहीं होता है।

वर्तमान में निबंधकारों ने भ्रष्टाचार के कारणों और उसके उपाय बताए हैं, आज व्यक्ति क्या कर रहा है और भ्रष्टाचार कम नहीं हो रहा, जिसकी चिंता निबंधों में व्यक्त हो रही है। कोई भी लेखक रचना अपने समय की समस्याओं को लेकर करता है। वैसे ही वर्तमान निबंधों में लेखकों ने आज की समस्याओं पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। भ्रष्टाचार को लेकर डॉ. श्रीराम परिहार अपने निबंध संग्रह *परम्परा का पुनराख्यान* में कहते हैं:

> अगर भ्रष्टाचार को रोकना है, तो फिर से समाज में नैतिक मूल्यों की स्थापना करनी होगी, जब तक हमारे जीवन में नैतिकता नहीं आएगी तब तक हमारा

भौतिकवादी दृष्टिकोण नहीं बदल सकता। जब तक हमारे जीवन में नैतिकता नहीं आएगी तब तक हमारे जीवन की सभी बातें केवल मात्र कल्पना बनकर रह जाएँगी। (90)

भ्रष्टाचार से बचने के उपाय

आज हमारी राजनीति में ऐसे राजनीतिक नेताओं की आवश्यकता है, जो स्वार्थ से रहत हो निर्मल भावना वाले हों और हमारे समाज के लिए लोगों के हितों के लिए काम करें। भ्रष्टाचार तभी रुक सकता है। सही समय पर वेतन बढ़ावा होना चाहिए और अधिकारी काम के पूरे होने चाहिए, जब किसी अधिकारी की कमी होती है, तब दूसरों को वहाँ अधिक कार्य करना पढता है। जो भ्रष्टाचार को बढ़ावा देता है। प्रशासनिक मामलों में जनता को भी शामिल किया जाना चाहिए, और बहुत अच्छे से लोकपाल कानून होने चाहिए। भ्रष्टाचार को रोकने के लिए सख्ती के कानूनों और दंडों की व्यवस्था की जानी चाहिए। आज के समय में दंड व्यवस्था इतनी कमजोर हो गई है कि अगर कोई व्यक्ति रिश्वत लेता पकड़ा जाता है, तो वह दंड से बचने के लिए रिश्वत देकर बच जाता है। ऐसी स्थिति में भ्रष्टाचार को बहुत बढ़ावा मिलता है।

कृष्ण बिहारी मिश्र ने अपने निबंध *अराजक उल्लास* में कहा है- भ्रष्टाचार को खत्म करना केवल सरकार का कर्तव्य नहीं है। हम सबको भी आज के समय में साथ मिलकर भ्रष्टाचार को समाप्त करने के लिए, अपना साथ देना चाहिए और प्रयास करने चाहिए, इसके लिए अधिकतर जागरूकता फैलानी चाहिए। हमें केवल अपने स्वार्थों तक सीमित नहीं रहना चाहिए, बल्कि दूसरों के सुख को अपना सिद्धान्त बनाकर चलना चाहिए, तभी हम इस समस्या से छुटकारा पा सकते हैं।(33)

भ्रष्टाचार हमारे नैतिक जीवन में बहुत अधिक प्रभाव डाल रहा है, इसके लिए इंसान को जब वह बच्चा होता है, तब से ही नैतिकता के आचरण का पाठ पढ़ाना जरूरी है। हमें हमारी आने वाली पीढ़ी को अभी बचपन से ऐसी शिक्षा देनी चाहिए। पढ़े लिखे लोगों की आज के समय में कमी नहीं है, लेकिन उनको आगे नहीं आने दिया जाता, हमारी राजनीति अच्छे लोगों को आगे नहीं आने देती। आज हमारे भारत देश में इतने नौजवान पढ़े लिखे हैं और फिर भी राजनेता और अधिकारी अनपढ़ हैं, या वह लोग हैं, जिनके ऊपर बहुत से आरोप लगे हुए हैं। इससे बड़ी दुर्भाग्य की बात हमारे लिए और क्या हो सकती है कि जिन लोगों के लिए हजारों करोड़ों रूपए खर्च किये जाते हैं, संसद में लाने के लिए, वह लोग आरोपी हैं और अनपढ़। इस तरह आज पढ़े लिखे लोगों को आगे आने की आवश्यकता है, तभी हमारा समाज, संस्कृति, हमारे संस्कार और हमारी राजनीती, अच्छी तरह से चलेगी। जो समस्याओं का हम आज सामना कर रहे हैं, इनसे छुटकारा तभी मिलेगा और हमारी नई पीढ़ी जो हमारे भारत का भविष्य हैं, वह इन समस्याओं से रहत होगी।

5.2.5. स्वार्थ-भावना

स्वार्थ शब्द पर बात करें तो नाम से ही पता चलता है 'स्व' अपने को कहते हैं और 'अर्थ' के अनेक अर्थ हो सकते हैं जिनमें, धन, सम्पति व अन्य प्रयोजन की सिद्धि भी मानी जा सकती है। स्वार्थ शब्द बुरा नहीं है, या स्वार्थी होना बुरा नहीं है, लेकिन जब मानव अपने प्रयोजन की सिद्धि के लिए अनेक बार दूसरों के हितों को हानि पहुँचा कर अपना स्वार्थ निकालता है, यह बुरा होता है। आज के वर्तमान समय में हर व्यक्ति स्वार्थी होता चला जा रहा है, स्वार्थी भी ऐसा कि दूसरों के प्रति घृणा, आज व्यक्ति में अधिक देखने को मिलती है। आज व्यक्ति अपने सुख से उतना सुखी नहीं है, जितना दूसरों के सुखी होने पर चिंतत है। दूसरों के प्रति बुरी भावना और अगर दूसरे

हम से अधिक पैसा कमाते हैं, तो भी उसके प्रति घृणा आज देखने को मिल रही है। आज कोई अच्छा काम करने की बात नहीं करता, क्योंकि सभी के पास इतना समय नहीं है। केवल अपने लिए समय है और धन के लिए और मोह माया के लिए, आज व्यक्ति अस्त-व्यस्त है, जिसके कारण अधिक स्वार्थी होता जा रहा है।

इसी तरह आज हमारे देश की राजनीति भी स्वार्थ के लिए हो रही है। हमारे राजनेता केवल धन के लिए राजनीति करते हैं, उनको अपने हितों को देखना है, जनता के हितों की चिंता आज के नेताओं को नहीं है। राजनीतिक नेता अपनी वोट के लिए लोगों को पैसा देते हैं और साथ ही नशीली वस्तुओं देकर अपना स्वार्थ निकाल रहे हैं। उनको केवल चुनाव जीतना है, उसके बाद जनता से कुछ लेना देना नहीं है। चुनाव के दौरान नेता हर किसी के घर जाते हैं, बड़े-बड़े वादे करते हैं और जब वह चुनाव में सफल हो जाते हैं, तब उनको कोई जनता नहीं दिखती और उनके हित नहीं दिखते। राजनीति हमारे शासन को चलाने के लिए और हमारे अधिकारों को सुरक्षित रखने के लिए होती है। सही समय पर लोगों को उनके हक मिलने चाहिए, तभी एक अच्छी व्यवस्था है।

आज हमें चाहिए कि हम अच्छी भावना और निर्मल व्यक्तित्व वाले नेताओं को चुनें, तांकि हमारी सामाजिकता बनी रहे। अगर ऐसा नहीं हुआ तो हमारा समाज और भी अधिक समस्याओं से घिर जाएगा। कुछ स्वार्थी लोगों ने अपने हितों के लिए पैसे और राजनीति का गलत प्रयोग किया है, जिससे आज हमारा समाज बहुत सी समस्याओं से लड़ रहा है। जिसमें हमारी युवा पीढ़ी आज बर्बाद हो रही है। लेकिन आज समय है, हमें इन सब से छुटकारा पाना है। आज हमारे समाज में बहुत लोग पढ़े लिखे हैं, जो हमारी व्यवस्था को बहुत अच्छे तरीके से चला सकते हैं। हमें इन बातों को समझना और हमारी युवा पीढ़ी को साहित्य के द्वारा, इन बातों को समझाना है।

बचपन से ही बच्चों को ऐसी शिक्षा देनी होगी, तभी जाकर हमारा समाज प्रचलित समस्याओं से छुटकारा पा सकता है।

आज किसी भी क्षेत्र की हम बात करें तो वहाँ हमें स्वार्थी लोग दिखाई देते हैं। केवल राजनीति नहीं कोई भी कर्मचारी है, वह अपने वेतन से अधिक जनता से कमा लेता है। ऐसे लोगों के लिए सख्त नजर रखनी चाहिए और सख्त कानून होना चाहिए। स्वार्थ की भावना को मिटाने के लिए हमें आगे आना होगा सभी लोगों को एक साथ मिलकर कार्य करना होगा, कोई भी एक व्यक्ति कुछ नहीं कर सकता। हमें सरकार के साथ मिलकर उसको योगदान देना चाहिए, तांकि हमें सफलता हासिल हो। जब हमारी नई पीढ़ी को इन बातों का ज्ञान होगा, तो आने वाले समय में अच्छे लोग आगे आएंगे और राजनेता भी स्वार्थी नहीं होंगे, तभी हमें अपने हक मिलेंगे। जनता के अधिकार जनता को मिल जाएँ तो उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी होगी और स्वार्थ भावना खत्म हो जाएगी।

5.2.6. देश-भक्ति

देश भक्ति को अपने देश के प्रति प्रेम और वफादारी के द्वारा परिभाषित किया जा सकता है। जो लोग अपने देश की सेवा के लिए अपना जीवन समर्पित कर देते हैं, ऐसे लोगों को देश भक्त कहा जाता है। देश भक्ति की भावना हमें एक-दूसरे के करीब लाती है। हमें देश के साथ-साथ वहां रहने वाले लोगों के विकास के लिए भी बढ़ावा देना चाहिए। किसी भी व्यक्ति का देश के प्रति अमूल्य प्रेम और भक्ति, देशभक्ति की भावना को परिभाषित करती है। जो लोग सच्चे देशभक्त होते हैं, वह अपने देश के निर्माण और देश के प्रति कुछ भी कर सकते हैं। देशभक्ति का अर्थ यही होता है कि अपने देश के प्रति प्रेम, देश के प्रति हित होना, उसके विकास के लिए पूर्ण योगदान देना, और जरूरत पड़ने पर देश के लिए बलिदान देना। बहुत से लोग यह सोचते हैं, देश के प्रति

अपने प्राण त्यागना ही देश भक्ति है, लेकिन इसका अर्थ यह कदापि नहीं है, बल्कि इसका अर्थ यह है कि हर संभव तरीके से देश के विकास के लिए एवं सुधार के प्रति अपना योगदान देना तथा आवश्यकता पड़ने पर देश के लिए अपने प्राणों का बलिदान देना।

देशभक्ति देश के प्रति प्यार और सम्मान की भावना है। देशभक्त अपने देश के प्रति नि:स्वार्थ प्रेम तथा उसपे गर्व करने के लिए जाने जाते हैं। अनगिनत लोगों ने अतीत में अपने देश के लिए और उसके विकास के लिए, अपने प्राणों को निछावर किया है। बहुत से लोग आज भी अपने अन्दर देशभक्ति की भावना जगाये रखे हैं। यहाँ ब्रिटिश शासनकाल के दौरान कुछ सच्चे देशभक्त हुए हैं, जिनमें शहीद भगत सिंह, सुभाष चंद्र बोस, बाल गंगाधर तिलक, सरोजनी नायडू आदि। इस तरह इन सच्चे वीर भक्तों ने देश के लिए बलिदान दिया है। बजुर्गों को अपने बच्चों के भीतर देशभक्ति की भावना को जगाये रखने का प्रयास करना चाहिए। स्कूलों और कालेजों जैसे स्थानों को भी देशभक्ति के लिए बढ़ावा देना चाहिए। अतीत में कई लोग अपने देशवासियों के अन्दर देशभक्ति की भावना को पैदा करने के लिए आये, उन्होंने बैठकों का आयोजन किया तथा उनके आस-पास के लोगों को प्रेरित करने के लिए भाषण देते हुए, कई उदाहरणों का प्रयोग किया। इस लिए बच्चों के अन्दर जब वह छोटे हों, तभी से देशभक्ति की भावना को जागृत करना चाहिए। वह देश निश्चित रूप से बेहतर हो जाता है, यहाँ के लोग अपने देश से प्यार करते हैं तथा उस देश की सामाजिक और आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए कार्य करते हैं। डॉ. द्वारिकाप्रसाद सक्सेना अपनी पुस्तक *साकेत के काव्य : संस्कृति और दर्शन* में कहते हैं:

> राष्ट्र के प्रति सेवा-भाव रखना ही देशभक्ति है। आधुनिक युग मानवता की पूजा एवं आराधना का युग है। आज विश्व में सर्वत्र मानवता प्रेम की धूम मची है और

इसीलिए विश्व का बड़े से बड़ा विचारक, मनीषी, दार्शनिक मानवता की पूजा को ही ईश्वर पूजा मानता है। उसकी सेवा को 'ईश्वर' भक्ति माना है और उसके हित साधना में ही जीवन का सौभाग्य समझता है। (329)

वर्तमान देशभक्ति

समय के साथ देशभक्ति की भावना लुप्त हो रही है। इन दिनों युवा पीढ़ी में यह भावना बहुत कम देखने को मिलती है। ऐसा इसलिए है, क्योंकि आजकल लोग अपने जीवन में ही अस्त-व्यस्त रहते हैं, अपने स्वार्थ के कामों पर ही युवा पीढ़ी या वर्तमान समय के लोगो का ध्यान रहता है। स्वार्थी व्यक्ति वह होते हैं, जो सदैव अपने बारे ही सोचते हैं, और अपने स्वार्थ के आगे सभ कुछ भूल जाते हैं, अपने स्वार्थ को हर चीज और हर किसी के ऊपर रखते हैं। जो व्यक्ति खुद ही परेशान रहता है, खुद को ही अधिक महत्व देता है, वह कभी भी देशभक्त नहीं हो सकता। प्रत्येक व्यक्ति पैसे कमाने में व्यस्त है, तांकि वह अपने जीवन को और आरामदायक तथा अपने आस-पास के लोगों से अपने जीवन को अधिक बेहतर बना सके। ऐसी स्थिति में और चीजों के बारे सोचने के लिए शायद ही किसी के पास समय हो, लोगों ने देश के प्रति प्रेम और उसकी सेवा के प्रति जैसी भावना को लगभग भूल ही गये हैं। देश के सुधार और विकास की दिशा में योगदान देने की बजाये, युवा पीढ़ी अब अपने बेहतर जीवन की तलाश में अन्य देशों में प्रवास कर रहे हैं। अगर लगभग सौ वर्ष पहले लोगों की मानसिकता ऐसी होती, तो वह कभी भी एकजुट नहीं होते और देश की आजादी के लिए नहीं लड़ते।

कई लोगों ने ब्रिटिश काल के दौरान देशभक्त होने का दावा किया, परन्तु उनमें से कुछ झूठे देशभक्त थे, जिन्होंने अपना स्वार्थ पूरा करने के लिए, उस स्थिति का लाभ उठाया। आज भी ऐसे कई लोग हैं, जो वास्तव में अपने देश से प्यार करते हैं, वहीं

कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो केवल नाटक करते हैं। एक सच्चा देशभक्त वह है, जो अपने देश के लिए हर स्थिति में समर्पित होता है। वह पहले अपने देश और देशवासियों के बारे में सोचता है और फिर अपने देश के सुधार और विकास के लिए सब कुछ बलिदान करने के लिए तैयार हो जाता है। दूसरी तरफ, झूठा देशभक्त वह है, जो अपने देश के प्रति प्यार करने का दावा करता है और देशभक्त होने का दिखावा करता है।

राष्ट्रवाद और देशभक्ति शब्द अक्सर एक-दूसरे के लिए प्रयोग किये जाते हैं, परन्तु दोनों में अंतर है। देशभक्ति का मतलब देश के सकारात्मक बिन्दुओं पर गर्व करना तथा उसके सुधार के लिए योगदान देना। दूसरी ओर राष्ट्रवाद का अर्थ है, किसी भी देश पर उसके सकारात्मक और नकारात्मक बिन्दुओं के बावजूद भी उस पर गौरव करना। वर्तमान में इन बातों पर विचार-विमर्श करने की बहुत आवश्यकता है, तांकि आने वाले समय में इन समस्याओं से बचा जा सके। साहित्य बहुत बड़ा उपादान है, जो इन समस्याओं का निराकरण करने में सहायक होता है। वर्तमान के हिन्दी निबंधों में भी ऐसी समस्याओं को निबंधकारों ने प्रस्तुत किया है। जिससे हमें वर्तमान स्थिति का पता चलता है। डॉ. श्रीराम परिहार के निबंध संग्रह *परंपरा का पुनराख्यान* में संकलित निबंध 'राष्ट्रीय एकता और ललित निबंध' के अनुसार:

> आज यह परस्पर मेहंदीभाव समाप्त हो गया है। लोक से गाँव से जो भारतीय जीवन-दृष्टि को स्त्रोत मिला था, वह सूखता जा रहा है। आज गाँव बदल गये हैं। भारतीय जीवन में यथार्थवादी सोच और अर्थ लोलुपता ने सर्वनाश के द्वार खोल दिए हैं। इसके चलते व्यक्ति का पूरा चिंत्तन और कर्मशास्त्र ही बदल गया है। पश्चात्य जीवन-दृष्टि का प्रभाव गहराता जा रहा है। इन परिस्थितियों में भारतीय जीवन-दृष्टि को क्षय होने से बचाने के लिए ललित निबंध अपने भीतर

संपूर्ण मानवीय कल्याण की अवधारणा मानवीय मूल्यों की पीठिका पर कर रहा है और मानव को उसके वास्तव से बार-बार रूबरू कराने की कोशिश कर रहा है। (40)

कोई भी साहित्कार जो रचता है, वह अपने समय और अपने आस-पास घटित हो रही घटनाओं को अपनी लेखनी में व्यक्त करता है, वैसे ही वर्तमान के निबंधों में भी निबंधकारों ने अपने समय की स्थितियों को अपने निबंधों में प्रस्तुत किया है। वर्तमान समय की एक-एक समस्या, इन निबंधों का अध्ययन करने पर हमारे समक्ष जीवंत हो जाती है। हमारे देश को हमारी मात्रभूमि के रूप में जाना जाता है और हमें अपने देश से वैसे ही प्यार करना चाहिए जैसे हम अपनी माँ से करते हैं, सच्चे लोग अपने देश के लिए वही प्रेम और भक्ति महसूस करते हैं, जो वह अपनी माँ और परिवार के लिए करते हैं। देशभक्ति एक गुण है, जिसे प्रत्येक व्यक्ति में होना चाहिए। देशभक्तों से भरा देश निश्चित रूप से उस स्थान की तुलना में रहने योग्य एक बेहतर जगह बन जाता है, जहाँ लोग धर्म, जाति, पंथ और अन्य मुद्दों के नाम पर सदैव एक दूसरे से लड़ा करते हैं। जहाँ पर लोगों में कम स्वार्थ होंगे वहां पर कम संघर्ष करना पड़ता है और उनके अंदर देशभक्ति के गुण विकसित होंगे।

वर्तमान में देशभक्ति के आवश्यक गुण

राष्ट्र निर्माण का गुण सबसे पहले और आवश्यक है, जो हर व्यक्ति में होना चाहिए। जब हर कोई राष्ट्र को हर पहलू से मजबूत बनाने की दिशा में समर्पित करता है, तो ऐसा कोई रास्ता नहीं है, जो देश को आगे बढ़ने और विकसित होने से रोक पाये। देशभक्तों ने राष्ट्र के हित को सबसे पहले रखा और इसके सुधार के लिए सदैव समर्पित रहे तांकि एक अच्छे राष्ट्र का निर्माण हो सके।

श्रीराम परिहार के निबंध *धुप का अवसाद* के अनुसार- एक अच्छा राष्ट्र वह है, जहां हर समय शांति और सद्भाव बनाये रखा जाता है। जहां लोगों के अंदर भाईचारे की भावना होती है, तथा वह दूसरे की मदद और समर्थन करने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। देशभक्ति की भावना देशवासियों के बीच भाईचारे की भावना को बढ़ावा देने के लिए जानी जाती है। (65)

देशभक्त, देश के लक्ष्य तथा उसके सुधार के लिए काम करते हैं। जब हर किसी को एक ही लक्ष्य या मिशन की तरफ आकर्षित किया जाता है, तो ऐसा कोई रास्ता नहीं होता, जो उन्हें अपने लक्ष्य को हासिल करने से रोक सके।

देशभक्त बिना किसी व्यक्तिगत रुचि के अपने देश के लिए नि: स्वार्थ रूप से काम करते हैं। अगर हर किसी में देशभक्ति की भावना है और वह अपने व्यक्तिगत हित को संतुष्ट करने के बारे में नहीं सोचता है, तो निश्चित रूप से इससे देश को लाभ होता है।

यदि राजनीतिक नेताओं के अंदर देशभक्ति की भावना है, तो वह वर्तमान परिस्थिति के अनुरूप देश के लिए काम करेंगे तथा सता में लोग देश के उत्थान के लिए काम करने की बजाये, खुद के लिए पैसे कमाने में व्यस्त रहते हैं। इसी तरह, यदि देश के सरकारी अधिकारी और अन्य नागरिक देश की सेवा की दिशा में दृढ़ रहेंगे तथा स्वयं के लिए स्वार्थी बनकर धन कमाने से दूर रहेंगे, तो निश्चित रूप से भृष्टाचार का स्तर कम हो जायेगा।

इस तरह देशभक्त होना एक महान गुण है, हमें अपने देश से प्यार और सम्मान करना चाहिए और जितना भी हम कर सकते हैं, देश के प्रति उतना ही अधिक करना चाहिए। देशभक्ति की भावना रखना सकारात्मक बिन्दुओं को दर्शाते हैं कि यह कैसे देश को समृद्ध और बढ़ने में मदद कर सकता है। इस तरह सभी मानव का यह कर्तव्य है कि देश के प्रति प्रेम की भावना बनाये रखें। एक अच्छे देश और राष्ट्र के लिए हमारी

एकता और प्रेम की भावना आवश्यक तत्व है। वर्तमान में हमारी दिशा और दशा में जो अंतर आ रहा है, वह हमारी नकारात्मक सोच है, हम स्वार्थी होते जा रहे हैं। लेकिन अब इन बातों को समझने-समझाने की जरूरत है, तांकि आने वाले समय में हम इन समस्याओं से बच सकें और एक अच्छा जीवन बिता सकते हैं। एक अच्छा देशभक्त न केवल वह है, जो अपने देश के निर्माण के लिए काम करता है, बल्कि अपने आस-पास के लोगों को भी ऐसा करने के लिए प्रेरित करता है। भारत के नागरिकों को जितना हो सके देश की सेवा के लिए प्रेरित करना चाहिए। नागरिकों के बीच देशभक्ति की भावना उत्पन्न करने के लिए सरकार को स्कूलों, और अन्य संस्थानों में पहल करनी चाहिए। देशभक्ति कुछ लोगों में स्वयं उत्पन्न होती है और कुछ में उत्पन्न की जाती है। देश के सुधार और विकास के लिए यह आवश्यक तत्व है, तभी हम पहले की तरह अपनी संस्कृति, देशभक्ति और एकता पर गर्व कर सकते हैं।

निष्कर्ष

आज सभी ओर समाज में कलुषित प्रवृतियों के कारण मानव में ईर्ष्या, द्वेष, मोह, मद की प्रवृतियाँ विकराल रूप धारण करती जा रही हैं। दूसरी ओर विज्ञान के बढ़ते प्रभाव के कारण, मानव आज उन्मनिया विकास के शिखर पर विराजमान होता जा रहा है। आज के उपभोक्तावाद या यांत्रिकीकरण के प्रभाव से इतनी बुरी तरह जकड़ा जा रहा है कि वह संवेदनशून्य होता जा रहा है। परिणामत: हमारे समाज में अनेक भयानक और विकराल परिस्थितियां जन्म लेने लगी। ऐसे भयानक परिवेश में व्यक्ति को संवेदनशील बनाने के लिए, तथ्य स्वस्थ और सुंदर समाज का निर्माण करने के लिए, भारतीय जीवनमूल्य या मानवमूल्यों की नितांत आवश्यकता है।

21वीं सदी के निबंधों की सबसे उल्लेखनीय विशेषता, उनमें अंतर्निहित मानवी मूल्य हैं। हिन्दी निबंधों में ऐसे ही मानवीय मूल्यों के दर्शन होते हैं, जो समाज को एक

नई दिशा दिखाने के लिए सार्थक सिद्ध होते हैं। मौलिक उन्नति और उपलब्धि के इस युग में मनुष्य की भौतिक सुखों के प्रति चेतना प्रबल हुई है। अधिकाधिक सुख की इच्छा, धन व पद की लिप्सा, दूसरों से आगे जाने की स्पर्धा, दूसरों से अधिक धनवान बनने की प्रबल इच्छा, सम्पन्न दिखाने की प्रबल इच्छा ने धीरे-धीरे मनुष्य को मनुष्य से दूर कर दिया। एक समय था जब मानव उत्सव प्रेमी था और अब उत्सवों में डूबकर भी वह आनंद नहीं ले पा रहा है। परिणामस्वरूप मानवमूल्यों का क्षरण हुआ है। आज चारों ओर कटुता, वैमनस्य, शत्रुता, हिंसा, बदले की भावना, दूसरों के प्रति बुरे विचार आने लगे हैं। जिसके चलते आज संपूर्णविश्व में मानव त्रस्त है।

इस अध्याय में समाज और राजनीति को लेकर आज जो कारक प्रभावित कर रहे हैं, उनके ऊपर विस्तार से चर्चा की गई है, जो 21वीं सदी के निबंधों में प्रस्तुत है। सांस्कृतिक समन्वय के क्षेत्र में हिन्दी निबंधकारों द्वारा किये गए प्रयासों की पहचान करते हुए, इसमें बदलते जीवन मूल्यों के सन्दर्भ में सांस्कृतिक चेतना और उसके महत्व को रेखांकित किया गया है। जिसका उपयोग साहित्य के द्वारा हमारे समाज में किया जा सकता है, जो हमारे इस शोध का उद्देश्य है।

षष्ठ अध्याय

21वीं सदी के हिन्दी निबंधों में सांस्कृतिक चेतना : लोक जीवन एवं सांस्कृतिक पक्ष

6.1. लोक जीवन पक्ष

6.1.1. लोक संस्कृति

6.1.2. लोकजीवन

6.1.3. लोकगीत और लोकपरंपराएँ

6.1.4. ग्रामीण एवं शहरी संस्कृति

6.2. सांस्कृतिक पक्ष

6.2.1. वर्तमान सांस्कृतिक जीवन

6.2.2. संस्कार और संस्कृति

6.2.3. कला और विरासत

6.2.4. रीति-रिवाज

6.2.5. शैक्षिक स्थिति

6.2.6. राष्ट्रीय एकता

निष्कर्ष

6.1. लोक जीवन पक्ष

6.1.1. लोक संस्कृति

किसी क्षेत्र विशेष में निवास करने वाले लोगों के पारस्परिक धर्म, त्यौहार, पर्व, रीति-रिवाज, मान्यताओं, कला आदि को लोक संस्कृति का नाम दिया जाता है। लोक संस्कृति किसी क्षेत्र विशेष को अन्य क्षेत्रों से स्वतन्त्र पहचान प्रदान करती है। लोक न केवल मनुष्य या ग्रामीण परिवेश की प्रतीति करता है, बल्कि मनुष्य समाज के सांस्कृतिक रूप से विकसित होते समय को पहचानने, मानव वह उसके परिवेश, उसके तनाव व द्वंद्वों का एहसास कराने वाली मूर्त अवधारणा भी है। वामन शिवराम आप्टे के *संस्कृत हिन्दी कोश* के अनुसार लोक का अर्थ इस प्रकार है- “1. संसार विश्व का एक भाग 2. पृथ्वी, भूलोक 3. मनुष्य जाति 4. प्रजा 5. समूह 6. क्षेत्र 7. दृष्टि 8. वास्तविक स्थिति, प्रकाश आदि अर्थ किये हैं।”(1327) रामचन्द्र वर्मा के *मानक हिन्दी कोश* के अनुसार – “लोक संस्कृति का सामान्य अर्थ है, साधारण मानव समाज में प्रचलित वे सब बातें हैं, जो सिद्धान्त: संस्कृति के क्षेत्र में सम्बद्ध हो।” (598)

> डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी अपने *जनपद वर्ष, अंक-1* में लोक को गाँव और नगर की अशिक्षित, अनपढ़ गँवार जनता से जोड़ते हुए अपना मत प्रकट करते हुए कहते हैं कि - लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं है, बल्कि नगरों और ग्रामों में फैली हुई वह समूची जनता है, जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पौथियाँ नहीं है। ये लोग नगर में परिष्कृत, रुचि सम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएँ आवश्यक होती हैं, उनको उत्पन्न करते हैं। (65)

लोक साहित्य विज्ञान पुस्तक में डॉ. सत्येन्द्र की मान्यता है कि - लोक संस्कृति में समस्त समाज का रूप बनता है। इसमें विस्तार व्यापी दृष्टि से वैविध्य और वैषम्य के साथ जुड़ी हुई वह सभी बातें आ जाती हैं जो पहाड़ों, ग्रामीणों और सुसंस्कृत नगरों में भी है। इस कारण लोक संस्कृति वैविध्य भावों को संजोय हुए मानवीय चेतना को परिचालित करती है। (11)

श्याम परमार ने अपनी पुस्तक *भारतीय लोक साहित्य* में लोक संस्कृति को गतिशील विज्ञान मानते हुए स्पष्ट करते हैं कि इसमें लोक की परम्परागत मान्यताएँ एवं चेतनागत अभिव्यक्तियां सन्निहित होती हैं। यह केवल प्राचीन अवशेषों की रूढ़ियाँ ही नहीं वरन जीवित लोकभावों में अभिव्यक्त और प्रवाहमान होती हैं। (47)

यदि लोक की धरोहर हमारे पास नहीं होती, तो हम जो कुछ आज जिस रूप में हैं, उस रूप में आज नहीं होते। हम सब गाँव के नहीं होते तो आज लोक साहित्य पर चर्चा करने लायक नहीं रहते। इसलिए 21वीं सदी में लोक को समझना और लोक को पकड़ना है, लोक को जाने नहीं देना है, आज लोक जा रहा है। जहाँ तक हमारी दृष्टि में जो संसार है, वह सब लोक है। जो लोचनों के आगे है, वह सब लोक है। अगर हम बात करें अंग्रेजी या पश्चिम से हमारा लोक बिलकुल भिन्न है, लोक यानि जो सतर्क रहता है, जो निरन्तर रहता है, जो निरन्तर गतिशील है, जो हमारी आँखों के सामने है, वह लोक है। जो वर्तमान में है, जो हमें दिखाई दे रहा है, जो अभी बीता नहीं है। डॉ. श्रीराम परिहार ने अपनी पुस्तक *लोक की ज्ञान परम्परा* में लोक के बारे में कहा है कि- "हमारे यहाँ 'लोक' का अर्थ बीता हुआ, पिछड़ा हुआ नहीं है, जो निरन्तर अपनी परम्परा को नवीनीकृत करते हुए, अपने अनुभव से एक नया मूल्य देता हुआ, हर समय जोड़ता हुआ, जीवन को आगे बढ़ाता है, वह 'लोक' है।"(14)

सारी की सारी जो समग्रता है, वह साझेदारी से आई है। इस साझेदारी से हमारे भारतीय जीवन में अनुष्ठान परिपूर्णता पाते हैं, अर्थात लोक खंडित जीवन दृष्टि को लेकर नहीं चलता है। वह समग्र जीवन दृष्टि को लेकर चलता है। इसी समग्रता में मनुष्य जीवन है। जिन वनवासियों को हम बहुत अन्धविश्वासी और पिछड़ा हुआ मानते हैं, वह पहाड़ को देवता मानते हैं, नदी को देवी मानते हैं, आकाश को देवता मानते हैं, अग्नि को देवता मानते हैं, वायु को देवता मानते हैं। यह पंचतत्व ही तो हैं; जिनमें समस्त सृष्टि रची गई है, हम बिना सोचे समझे अपने निर्णय बना लेते हैं। इसलिए लोक की पहली विशेषता यह है कि वह निरन्तर है। बीते हुए को लोक नहीं कहेंगे, पिछड़े हुए को लोक नहीं कहेंगे, गाँव में रहने वाले को लोक नहीं कहेंगे, जो एलीट वर्ग से अन्य तरह का श्रेष्ठी है, उसको लोक नहीं कहेंगे, समग्रता में हम लोक कहेंगे जो निरंतर चलता है, जो निरन्तर अपनी परम्परा को नवीनीकृत करते हुए, अपने अनुभव से एक नया मूल्य देता हुआ, हर समय जोड़ता हुआ, जीवन को आगे बढ़ाता है, उसे हम लोक कहेंगे।

वर्तमान समय बदलाव का समय है, जिसमें हम सब कुछ भूल रहे हैं, अपनी अस्मिता को खो रहे हैं। लोक संस्कृति, लोक गीत, हमारी लोक परम्पराएँ आज बदल रही हैं, जिसकी चिंता वर्तमान निबंधों में है। डॉ. श्रीराम परिहार वर्तमान में बदलते लोक को लेकर हमें अपने निबंधों में परिचित करवाते हैं। जिससे हमें एक नई चेतना मिलती है, लोक को समझने की, और लोक के प्रति सुचेत रहने की, जिससे लोक को जाने नहीं दिया जाए, क्योंकि आज लोक जा रहा है। उनके निबंध *परम्परा का पुनराख्यान* में लोक के वर्तमान समय का एक उदाहरन है:

> हमारा आचरण नकली हो गया है। कृत्रिम हो गया है, हमारे आचरण को मौलिकता देने के लिए मनुष्य स्तर पर मनुष्यता को स्थापित करने के स्तर पर

लोक अभी हमारे पास है। प्रकृति का जो दोहन हो रहा है, वह आज चिन्तनीय है। लोकगीत में आता है, देवर जी गाय दुहो, लेकिन बछड़े के हिस्से का भी दूध मत निकाल लेना। आज इंजेक्शन लगाकर भैंस का दूध निकालते हैं, गाय का दूध निकाला जाता है। वह इंजेक्शन का विष भी हम उस दूध के साथ ले रहे हैं। अपने शरीर में। हमने सोच लिया कि मनुष्य ज्ञानवान है, और ये जो पशु-पक्षी है, ज्ञानवान नहीं हैं। (20)

लोक संस्कृति का मुख्य उद्देश्य है, सामाजिक सन्दर्भ में अर्थात वास्तविक जीवन में उसका सन्निवेश है। लोक संस्कृति किसी देश की सभ्यता का दर्पण है। अर्थात किसी देश के निवासियों की लोक संस्कृति सभी भली-भांति जानी जा सकती है। जब उनकी सभ्यता का पूरा ज्ञान हो, सभ्यता के माध्यम से लोक संस्कृति का पूर्व ज्ञान हो सकता है। इस प्रकार लोक संस्कृति और सभ्यता में अन्योंन्याश्रय सम्बन्ध है। एक की पूर्ण जानकारी के लिए, दूसरे का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। इसी तरह लोक संस्कृति का दूसरा कार्य समाज में प्रचलित सभ्यता का पुष्टिकरण तथा इसके विभिन्न विधि विधानों एवं संस्थाओं को औचित्य प्रदान करना है। समाज में रहने वाले मनुष्य अनेक प्रकार का धार्मिक कार्य करते हैं, तथा अनेक संस्थाओं की स्थापना करके, उसके नियमों तथा विधि विधानों का पालन करते हैं। किसी देश के मिथक उस देश की सांस्कृतिक परम्परा को बल प्रदान करते हैं।

लोक संस्कृति का तीसरा उद्देश्य है, शिक्षा का माध्यम होना। उन असभ्य तथा अर्ध सभ्य समाज में यहाँ सभ्यता का प्रचार-प्रसार नहीं हुआ है। यह शिक्षा का प्रमुख माध्यम है। शिक्षाप्रद कथाओं के सुनने से चरित्र का निर्माण होता है। लोक संस्कृति का चौथा तथा अंतिम उद्देश्य है, समाज में प्रचलित आचार या लोक व्यवहार की स्वीकृत

शैली या रीति की एकरूपता को स्थिर तथा दृढ़ बनाये रखना। इसके द्वारा सामाजिक नियंत्रण भी किया जाता है तथा सामाजिक दबाव भी डाला जाता है। यदि कोई व्यक्ति समाज के विरुद्ध कोई कार्य करता है, तब उसे कोई उपदेशप्रद कहानी सुनाकर, उसे कुमार्ग से विरत किया जा सकता है। इस तरह वर्तमान में लोक संस्कृति के बदलते स्वरूप के बारे में निबंधकारों ने अपने विचार प्रस्तुत किये हैं, जिनका अध्ययन करने पर आज हमारे लोकजीवन और लोकपरम्पराओं के बारे में पता चलता है।

6.1.2. लोकजीवन

साहित्य और लोक का एक-दूसरे के साथ घनिष्ठ संबंध रहा है। साहित्य बिना लोक की उपस्थिति के रचा नहीं जाता, यदि रचा भी जाता है, तो उसका जीवन की चेतना से कोई संबंध नहीं होगा। लोकचेतना लोक की चेतना है। उस लोक की, जो ग्रामीण अंचल में निवास करता है और जीवन के विविध क्रिया कलापों में संलग्न रहता है। वर्तमान में डॉ. श्यामसुंदर दुबे ने लोक संस्कृति लोकजीवन पर, अपने निबंधों में अपने विचार प्रस्तुत किये हैं, जिसमें लोक की परम्परा का हमें पता चलता है। उनके निबंधों में लोक के द्वारा किये जाने वाले क्रिया-कलापों में लोक जीवन का स्वरूप दिखाई देता है। लोकजीवन की संरचना में जो क्रिया-कलाप परंपरा या आधुनिकता से चले आ रहे हैं, उनमें लोकोत्सव, लोकरूढ़ियाँ, लोकविश्वास, व्यक्ति की जिजीविषा को पोषित करनेवाले विचार, आस्थाएँ, अनास्थाएँ, अभिरुचियाँ तथा लोक की जीवन शैली का प्रमुख रूप से योग रहता है। लोकचेतना का निर्माण करने में लोकोत्सवों की भूमिका प्रमुख रही है।

दुबे ने अपने निबंधों में आज बढ़ती नगरीकरण की प्रवृति के कारण लोकोत्सवों की महत्वपूर्ण झाँकियाँ प्रस्तुत की हैं। आपने प्रमुख रूप से बुंदेलखंड के लोकोत्सव का

स्मरण किया है। बुंदेलखंड के इन लोकोत्सवों के द्वारा लोकचेतना को जगाने का प्रमुख रूप से काम किया है। आपने शरद ऋतु में मनाए जाने वाले उत्सव शरद पूर्णिमा, वसंत तथा होली पर होने वाले उत्सवों के बारे में गीतों तथा आलेखों के रूप में विस्तार से लिखा है। फागुनी संध्या का राधा-भाव, फागुन की एक शाम, वसंत की एक नई भंगिमा, फागुन के रंग और मेरा गाँव, फगुनौरी हवा के दिन, वसंत जब पिघलता है, होली की आंच में, मेरा कवि मन, वसंत कहीं खो गया है, आदि निबंध वसंत के लोकोत्सव से संबंधित हैं। उसी प्रकार शरद कुबेर स्मरण और पितृपूजन, शरद पूर्णिमा : महारास की रसनिष्पति तथा शरद आचरण का विशद भाव, जैसे निबंध शरद ऋतु में होने वाले उत्सवों के वर्णन में डॉ. श्यामसुंदर दुबे ने लोकचेतना को दर्शाया है।

कालमृगया निबंध संग्रह में संकलित निबंध ऋतु पावस नियरानी में डॉ. दुबे ने वसंत ऋतु का आख्यान अनेक निबंधों में विस्तार से बनाकर उस पर प्रकाश डाला है - नीली अलसी, पीली सरसों, लाल गुलमोहर, हरा गेहूँ न जाने ऐसे कितने रंगों में यह विहँसता है। झाबुआ के झील जैसी पाग बाँध पलाश, डाल-डाल में रोमांच भरे आम्रवृक्ष और पात-पात हो नई तराश देता यह वसंत न जाने कितने रूपों में सँवरता है। झीने दुपट्टे सी सरसराती गंधवती हवा के ताजे झोंके सा स्पर्श, अशोक को पादप्रहार से धन्य करती कामनियों के नुपुर और चंचरीकों की मंगल-ध्वनियों की धमार का यह संगीत पर्व है। (24)

ऋतुओं और मानव-जीवन का एक-दूसरे के साथ गहरा संबंध रहा है। इस देश में ऋतुओं का महत्व बहुत ही प्राचीनकाल से रहा है। लोकजीवन ऋतुओं के अनुसार अपनी रुचियाँ, अपनी जीवन शैली और व्यवहार आदि में बदलाव करता रहता है। यह परिवर्तन लोकजीवन का द्योतक है। दुबे ने ऋतुओं की भावना में लोकजीवन की

आंतरिक छवि निरूपित की है। लोकजीवन में ऋतुएँ जीवनचक्र का ही एक हिस्सा हैं। लोक का खुलापन पाकर और ऋतुओं से साझेदारी करके ही जीवन का विस्तार और निस्तार संभव होता है। यह वजह है कि लोक का ऋतु चिंतन जड़ प्रकृति चितधर्मिता से अधिक मानवीय चेतना के गतिशील जीवंत बिंबों की कैमिस्ट्री में ही सम्पन्न है। इस तरह यहाँ स्पष्ट होता है, वसंत ऋतु की मादकता के चित्रण में लोकजीवन की सहज छवि देखने योग्य है। लोक जीवन में ही हमारी लोक संस्कृति और लोक के प्रति चेतना का पता चलता है, लोक को आज जाने नहीं देना है। आज लोक अलोप हो रहा है, लोक तो निरंतर चलने का नाम है, जो सदैव चलता है। ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों की भावनाएँ इसी लोक में समाई हुई हैं।

6.1.3. लोकगीत और लोकपरंपराएँ

यह बात सही है कि हमारे अतीत की संस्कृति और परम्परा का परिचय कराने में लोकगीतों का विशेष योगदान रहा है। आदिम संस्कृति में वे उत्सव पर्वों, तीज-त्यौहारों एवं विविध संस्कारों के अवसर पर गाए जाते हैं। उनका प्रचलन परंपरा से चलता आया है और उसके आधार पर कुछ हद तक उस संदर्भ की जानकारी प्राप्त हुई है। मानव के जन्म से पहले ही गीत उसके साथ जुड़े रहते हैं, वह उसकी मृत्यु के पश्चात ही खंडित होते हैं। भारतीय संस्कृति और परंपरा में लोकगीतों का अनन्य महत्व रहा है। देहात में लोक सहज एवं स्वभाविक ढंग से गीत गाते हैं, उनमें आत्मा की अभिव्यक्ति प्रकट होती है। वे अपने हर्ष, उल्लास, मनोरंजन थकान के साथ-साथ दुःख-दर्द, मिल्न-विरह, व्यथा और पीड़ा, अभावों को प्रकृति के साथ जोड़कर गीतों के माध्यम से प्रकट करते हैं। भारतीय संस्कृति और परंपरा के सभी आयामों के दर्शन लोकगीतों में होते हैं। हमारी ग्रामीण संस्कृति में जो भी तत्व अभी तक सुरक्षित रहे

हैं, इनसे उसकी पहचान रही है। उसे बहते रखने में ग्रामीण संस्कृति का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है।

वर्तमान में ललित निबंधकार डॉ. श्यामसुंदर दुबे, लोकजीवन से जुड़े हुए रचनाकार हैं। लोकगीतों, लोकपरंपराओं और लोकसंस्कृति के विविधवर्णी रंगों में रंगा हुआ, लोक उनके पद्य और गद्य साहित्य में चित्रित हुआ है। डॉ. दुबे ने लोकपरंपराओं और उसकी पहचान को निर्धारित करने के लिए समीक्षात्मक कृतियाँ भी लिखी हैं। उन्होंने लोकगीतों को लोकजीवन का अभिन्न अंग माना है। यही कारण है कि डॉ. दुबे ने चाहे गद्य लिखा हो, चाहे पद्य लिखा हो, लोक अपनी सम्पूर्ण अभिव्यक्ति के साथ चित्रित है। उनके ललित निबंधों में लोकगीतों और लोकप्रकृति की भागीदारी पर्याप्त मात्रा में रही है। ललित निबंधों की वस्तु को सौन्दर्य देने, कथ्य को संप्रेषणीय बनाने के लिए उन्होंने लोकगीतों के प्रसंग को यथास्थान जोड़ा है। डॉ. श्यामसुंदर दुबे के निबंध संग्रह *अलोक अनवरत* में संकलित निबंध 'पुरवइया के बादल घिर आए' में वर्षा में स्मृतियाँ जागती हैं:

बादर बरस रहे हैं भारी
कारी रेन झुकी अन्धयारी
चलें झकोरे नींद न आवै
मदन आपनो जोर जनावे!
अंसुअन की धारन से भींजी हरे रंग की सारी!
तज गए कृष्णमुरारी। (83)

वर्षा आते ही खेतों में किसानों का काम शुरू हो जाता है। किसान नखत विचार करने लगते हैं। उनकी आँखें आकाश में टंग जाती हैं। उस समय लोग अधिक पढ़े लिखे नहीं थे, लेकिन उनको वर्षा आने का पता चल जाता था। हमारे यहाँ किस महीने में

वर्षा खुलती है, तभी से वह इस बात का अनुभव कर लेते थे। लेकिन समय के साथ मानव आधुनिक होता चला गया और परमात्मा को ही भूलने लगा, तभी से परमात्मा भी वैसा ही होता चला गया और वर्तमान समय में पहले जैसा अनुभव नहीं है और ना ही पहले जैसा प्यार है। लेखक यहाँ बुंदेलखंड के किसान की बात अपने निबंधों में प्रस्तुत कर रहा है। भारतीय संस्कृति में यह मान्यता रही है कि यदि आषाढ़ की पूर्णिमा को बादल गरजते हैं, बिजली चमकती है, वर्षा होती है, तो चौमासे भर खूब पानी बरसेगा। ऐसा सगुन होते ही बुंदेलखंड का किसान हालाफूला नहीं समाता। वह वर्षा को जीवन का प्राण मानता है। बुंदेलखंड संभाग आकाशीय वर्षा पर निर्भर है, यदि मेघ भरपूर वर्षा कर गए तो बुंदेलखंड का जीवन खुशहाली में पेंग मारने लगता है, आमों की डालों पर झूले पड़ जाते हैं। नई नवेलियाँ पेंगे भरते हुए गाने लगती हैं:

झूला झूलें नंदकिशोर
आम की डारन कोयल कूक रही
चलो अपन सोई चलें सखी री
उन कुंजन जहाँ राधे झूल रहीं। (84)

'नीम स्तवन' ललित निबंध में घर में लगाए हुए नीम को देखकर चिरवियोगिनी बहू अपनी सास से पूछती है, सास और बहू के मध्य के संवेदनशील वार्तालाप को लोकगीतों के माध्यम से बहुत ही सुंदर ढंग से व्यक्त किया गया है। इसी तरह उनके निबंध संग्रह 'विषाद बाँसुरी की टेर' में अनेक स्थानों पर लोकगीतों और लोकसंस्कृति के चित्रण का वैभव दिखाई देता है। इस प्रकार उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि डॉ. दुबे प्रयोगधर्मी रचनाकार हैं। आपने काव्य की भांति ही ललित निबंध रचना में नए आयाम रचे हैं। इनके निबंधों के स्वरूप अपने आपमें अनूठे और अद्वितीय हैं। इसका महवपूर्ण कारण देखने से यह लगता है कि डॉ. दुबे ने जीवन को जैसा देखा,

सुना, समझा और अनुभव किया है, विशेष रूप से लोकजीवन के विविध पहलुओं को उन्होंने वैसा ही लिखा। उनके निबंधों में कोई कृत्रिमता दिखाई नहीं देती, सर्वत्र मौलिकता ही मौलिकता है। यहाँ तक की उन्होंने शब्दों का प्रयोग भी अपने ढंग से किया है।

डॉ. दुबे के ललित निबंधों के बारे में हम यह कह सकते हैं कि लोकगीत, लोकपरंपराओं और लोकसंस्कृति की विभिन्न छवियाँ प्रतिबिंबित हुई हैं। निबंधों के केंद्र में ग्रामीण जीवन की अतीत की स्मृतियाँ हैं, जिसे लेकर यह कहा जा सकता है कि लोक से लगाव तथा चेतना से जुड़ते ही एक रचनाकार किस कदर अपनी सघन परंपराओं की उर्वरा भूमि से जुड़कर लोक-स्मृतियाँ, लोकचरित्रों और लोकसंस्कारों को शास्त्र और लोक से समन्वित करते हुए किस तरह की सर्जना कर सकता है। इस तरह हमें इनके निबंधों से यह पता चलता है कि लोकसंस्कृति और लोकगीतों का समन्वय इनके निबंधों में है। आपने अपने समग्र साहित्य के द्वारा ग्राम्य जीवन की संवेदनाओं तथा काल चेतना के प्रवाह को शब्दों के द्वारा समेटकर हमारे रोजमर्रा के जीवन में घटित होने वाली छोटी-बड़ी घटनाओं को, मानव जीवन की सच्चाइयों और गहराइयों को हमारे सामने प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। जिसका अध्ययन करते हुए हम अपने जीवन में इसे अपना कर आने वाले समय में ऐसी समस्याओं से छुटकारा पा सकते हैं।

लोकगीत शब्द का अर्थ है, लोक में प्रचलित गीत, लोक निर्मित गीत, लोकविषयक गीत। लोक में प्रचलित गीत ही लोकगीत कहलाते हैं। लोकगीत और लोक परम्पराएँ भारतीय संस्कृति के परिचायक रहे हैं। वे आत्मा से फूट पड़ने वाले हर्ष, उल्लास, सुख-दुःख, व्यथा-पीड़ा आदि के स्त्रोत हैं, जो यथासमय गाए जाते हैं। 21वीं सदी के निबंधों में भी लोकगीतों और लोक परम्पराओं के बारे में अपने विचार निबंधकारों ने प्रस्तुत किये हैं। डॉ. रामदरश मिश्र, डॉ. श्यामसुंदर दुबे, कैलाश

वाजपेयी और डॉ. श्रीराम परिहार ने ग्रामीण संस्कृति और लोक संस्कृति को लेकर अपने विचार व्यक्त किये हैं। डॉ. रामदरश मिश्र ने अपने निबंध संग्रह *छोटे-छोटे सुख* में लोकगीतों के संदर्भ में लिखा है:

> लोकगीतों में लोकजीवन स्पंदित होता है। उसका समूचा वैभव इन गीतों के रूप में प्रस्फुटित होता है। परंपरा के रूप में गाए जाने वाले ये गीत जिनके रचयिताओं का कोई उल्लेख नहीं है, कभी-कभी इनके गायकों के व्यक्तित्व के साथ घुल-मिलकर एकमेव हो जाते हैं। (68)

लोकगीतों से भौगोलिक सामग्री का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। लोक इन्हें गाकर भी मनोरंजन करते हैं। मनोरंजन तथा भाव भरे गीतों से धर्म और संस्कृति, परंपरा के विविध आयाम खुल जाते हैं। लोकगीत बच्चे, युवक-युवतियाँ और नर-नारी गाते हैं। बच्चों के लोकगीतों में कल्पना शक्ति के दर्शन होते हैं। लोकगीतों को विविध प्रकार के अनुष्ठानों, उत्सवों, पर्वों या संस्कारों के अवसर पर गाकर, अपनी परम्परागत रूढ़ि या मान्यताओं को प्रदर्शित किया जाता है। बदलती हुई ऋतुओं के साथ गीत गाए जाते हैं, जिनमें प्रकृति की बदलती हुई छटाओं को सामाजिक जीवन के साथ जोड़ा जाता है। इसमें मनुष्य कर्म और गतियों का संबंध जुड़ा हुआ रहता है। ऐसे गीत खेतों में परिश्रम करते समय गाए जाते हैं। यह बात सही है कि हमारे अतीत की संस्कृति और परम्परा का परिचय कराने में लोकगीतों का विशेष योगदान रहा है। आदिम संस्कृति में वे उत्सव-पर्वों, तीज-त्यौहारों एवं विविध संस्कारों के अवसर पर गाए जाते हैं। उनका प्रचलन परंपरा से चलता आया है और उसके आधार पर कुछ हद तक उस संदर्भ की जानकारी प्राप्त हुई है। मानव के जन्म से पहले ही गीत उसके साथ जुड़े रहते हैं, वह उसकी मृत्यु के पश्चात ही खंडित होते हैं। भारतीय संस्कृति और परंपरा में लोकगीतों का अनन्य महत्व रहा है। देहांत में लोक सहज एवं स्वभाविक ढंग से

गीत गाते हैं, उनमें आत्मा की अभिव्यक्ति प्रकट होती है। वे अपने हर्ष, उल्लास, मनोरंजन थकान के साथ-साथ दुःख-दर्द, मिल्न-विरह, व्यथा और पीड़ा, अभावों को प्रकृति के साथ जोड़कर गीतों के माध्यम से प्रकट करते हैं। भारतीय संस्कृति और परंपरा के सभी आयामों के दर्शन लोकगीतों में होते हैं। हमारी ग्रामीण संस्कृति में जो भी तत्व अभी तक सुरक्षित रहे हैं, इनसे उसकी पहचान रही है। उसे बहते रखने में ग्रामीण संस्कृति का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है।

आंचलिक परिवेश को व्यक्त करने के लिए लोकगीतों के संयोजन और प्रकृति के निरूपण से बड़ी सहायता मिलती है। साथ ही जहाँ प्रकृति निरूपण अंचल विशेष के भौगोलिक परिवेश को यथार्थ अभिव्यक्ति मिली है, वहीं लोकगीतों में उस अंचल का जनजीवन झलकता है। अंचल के लोक व्यवहार, उत्सव-पर्व, संस्कृति, सामाजिक संदर्भ, राष्ट्रीयता और मानवीय संबंधों की झांकी लोकगीतों के माध्यम से जितनी प्रभावात्मकता के साथ व्यक्त होती है, उतनी संभवत भाषा शैली के अतिरिक्त अन्य किसी माध्यम से नहीं। इसी प्रकार किसी भी देश की लोकसंस्कृति, वहाँ के लोकगीतों में आभाषित होती है और लोकगीतकार वहाँ की संस्कृति, सभ्यता, आचार-विचार, खान-पान, रहन-सहन, तीज-त्यौहार संबंधी विविधताओं का प्रत्यक्ष दिग्दर्शक बनकर, उन्हें लोकगीतों में अपने लोकगीतों के माध्यम से संस्कृति प्रस्तुत करने में सफल दिखाई देता है। दुबे के निबंध संग्रह *अलोक अनवरत* के अनुसार-

कवनी उमरिया सासु निबिया लगायेन,
कवनी उमरिया विदेसवा गए हो रामा।
खेलत कूदत बहुवरि निबिया लगाए
रेखीय भिनन गे विदेसवा हो राम।
फरिगे निबिया लहसि गए डरिया
तबहूँ न जाए तोर विदेसवा हो राम। (62)

इसी तरह उनके निबंध संग्रह *विषाद बाँसुरी की टेर* में अनेक स्थानों पर लोकगीतों और लोकसंस्कृति के चित्रण का वैभव दिखाई देता है। इस प्रकार उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि डॉ. दुबे प्रयोगधर्मी रचनाकार हैं। आपने काव्य की भांति ही ललित निबंध रचना में नए आयाम रचे हैं। इनके निबंधों के स्वरूप अपने आपमें अनूठे और अद्बितीय हैं। इसका महत्वपूर्ण कारण देखने से यह लगता है कि डॉ. दुबे ने जीवन को जैसा देखा, सुना, समझा और अनुभव किया है, विशेष रूप से लोकजीवन के विविध पहलुओं को उन्होंने वैसा ही लिखा। उनके निबंधों में कोई कृत्रिमता दिखाई नहीं देती, सर्वत्र मौलिकता ही मौलिकता है। यहाँ तक उन्होंने शब्दों का प्रयोग भी अपने ढंग से किया है।

इसी तरह श्रीराम परिहार ने अपने निबंध संग्रह 'धूप का अवसाद' में लोक संस्कारों और लोक संस्कृति के स्वरूप के चित्रण में लोकगीत के अंश प्रयुक्त हैं। बेटी की विदा के समय परिवार के सदस्यों की मनोदशा को चित्रित करने वाला लोकगीत इस प्रकार दिया है:

माई के रोरा से नदिया बहत है,
बाबुल के शेरा बेला लाल मेरे लाल।
वीरन के शेरा छतिया फटत है
भौजी के जियरा कठोर मोरे लाल।(65)

21वीं सदी के निबंधों में हम यह कह सकते हैं कि लोकगीत, लोकपरंपराओं और लोकसंस्कृति की विभिन्न छवियाँ प्रतिबिंबित हुई हैं। निबंधों के केंद्र में ग्रामीण जीवन की अतीत की स्मृतियाँ हैं, जिसे लेकर यह कहा जा सकता है कि लोक से लगाव तथा चेतना से जुड़ते ही एक रचनाकार किस कदर अपनी सघन परंपराओं की उर्वरा भूमि से जुड़कर लोक-स्मृतियाँ, लोकचरित्रों और लोकसंस्कारों को शास्त्र और लोक से

समन्वित करते हुए, किस तरह की सर्जना कर सकता है। इस तरह हमें वर्तमान निबंधों से यह पता चलता है कि लोकसंस्कृति और लोकगीतों का समन्वय इन निबंधों में है। वर्तमान निबंधकारों ने निबंध साहित्य के द्वारा ग्राम्य जीवन की संवेदनाओं तथा काल चेतना के प्रवाह को शब्दों के द्वारा समेटकर, हमारे रोजमर्रा के जीवन में घटित होने वाली छोटी-बड़ी घटनाओं को, मानव जीवन की सच्चाइयों और गहराइयों को हमारे सामने प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। जिसका अध्ययन करते हुए, हम अपने जीवन में इसे अपना कर आने वाले समय में ऐसी समस्याओं से छुटकारा पा सकते हैं।

6.1.4. ग्रामीण एवं शहरी संस्कृति

गाँव हमारे देश की रीड है ,जो देश की आधारशिला रखते हैं। जैसे किसी मजबूत ईमारत को बनाने की बात करें तो सर्वप्रथम उसकी बुनियाद मजबूत बनाई जाती है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है, देश की बुनियाद कठोर करने के लिए तथा उसका सम्पूर्ण विकास करने के लिए ग्रामीण संरचना को प्राथमिकता देनी चाहिए। अर्थात ग्रामीण क्षेत्रों को विकास की लहर में जोड़ना चाहिए। दूसरी और यदि वर्तमान परिप्रेक्ष्य की बात करें तो पिछले दशकों से ग्रामीण क्षेत्रों से हो रहे प्रवास में अधिकता पाई गई है, जो समय के साथ-साथ पूर्ण प्रवास अर्थात पलायन में तब्दील हो रही है। परिणामस्वरूप कई नकारात्मक तथ्य वर्तमान में हमारे समक्ष आ रहे हैं। जिसमें गाँव का लुप्त होना मुख्य पाया गया है। हालाँकि ग्रामीण क्षेत्रों में प्रवास और पलायन बड रहा है। इस बात का हमें ग्रामीण क्षेत्रों से प्राप्त आंकड़ों से पता चलता है।

गाँव के लोग अपने जीवन यापन के लिए कृषि या अन्य पारंपरिक उद्योगों पर निर्भर करते हैं। गाँवों में शहरों की अपेक्षा कम सुविधाएँ एवं संसाधन उपलब्ध होते हैं। भारतीय ग्रामीण जीवन कृषि पर आधारित है, कृषि ही लोगों का प्रमुख व्यवसाय

है। गाँवों में संयुक्त परिवार अधिक देखने को मिलते हैं, यहाँ शहरों में लोग जाति भेद-भाव को छोड़कर बहुत आगे बड चुके हैं, वहीं ग्रामीण लोग आज भी इन बातों को महत्व देते हैं, जो बहुत गलत है। कुछ पहलू ऐसे आज हैं, जो गाँव में अपनी संस्कृति को बनाये रखे हैं, जो शहरों में नहीं मिलते, लेकिन कुछ ऐसे अन्धविश्वास भी हैं, जो आज भी उन्हें आगे नहीं आने देते। अगर देखा जाये तो गाँव में जो किसान काम करता है, हमारे लिए भोजन उगाता है, वह अपने लिए ढंग से दो वक्त की रोटी नहीं जुटा पाता। आजकल समय के साथ लोगों की धारणा बदल रही है, लोग गाँवों से शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं। गाँव के लोग ग्रामीण असुविधा से तंग आकर शहरी सुविधा से आकर्षित हो रहे हैं। पहले जमाने में गाँव के लोग आपस में काफी मिलजुल कर रहा करते थे।

लेकिन अब समय बदल चुका है, अब गाँव में आत्मनिर्भरता की कमी होती जा रही है, गाँवों में गरीबी बढ़ती जा रही है, किसानी का काम करने के लिए मजदूर कम पड़ते जा रहे हैं, किसानों का कर्ज बढ़ता जा रहा है। इसलिए आज गाँवों की संस्कृति में बदलाव आ रहा है, गाँव के लोगों को खेती का सही मूल्य नहीं मिलने के कारण आज वह अपने बच्चों को पढ़ा-लिखा कर गाँवों से दूर करना चाहते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में कम सुविधाओं के कारण अधिक लोग शिक्षित नहीं हैं। इसलिए गाँव में भी आज सुविधाओं का होना आवश्यक है, तांकि लोग पढ़े लिखे हों और गाँव के विकास में अपना योगदान करें। आज हर व्यक्ति सुविधा चाहता है, और यह सत्य है कि गाँवों में शहरों की अपेक्षा सुविधाएँ नाम मात्र ही हैं। शिक्षा विकास का एकमात्र साधन है, जो की गाँवों में अधिक मौजूद नहीं है। आज भी गाँवों में कई जगह पर अच्छे स्कूल नहीं है, जो है भी उनमें शिक्षा का स्तर अच्छा नहीं है।

गाँव के लोगों को परिवहन के लिए भी समस्याओं से जूझना पड़ता है। गाँवों में शहरों की तरह परिवहन की सुविधाएँ नहीं है। वर्तमान में बहुत से बदलाव आ चुके हैं, जो ग्रामीण सभ्यता को प्रभावित कर रहे हैं। पहले समय में लोग एक साथ मिलजुल कर रहते थे, सभी तीज त्यौहार एक साथ गाँव में मिलकर मनाए जाते थे, लेकिन आज तो गाँव से पलायन हो रहा है, लोग आज गाँवों से बहुत प्रवास कर रहे हैं और गाँव की संस्कृति जिससे प्रभावित हो रही है।

अब बात करेंगे पुरातन समय में ग्रामीण जीवन के कुछ लाभ की उस समय में ग्रामीण क्षेत्रों का वातावरण शहरों की अपेक्षा शुद्ध था, वहाँ पर शहरी प्रदूषण से मुक्त शुद्ध हवा पानी उपलब्ध था। उस समय ग्रामीण क्षेत्रों में शहरों की अपेक्षा वाहनों से निकलने वाला धुआं नहीं था और ना ही डीजे का शोर, लेकिन आज यह संदर्भ बहुत बदल चुका है। आज यह सब कुछ हो रहा है। उस समय के लोग कूलर पंखे के बिना ताज़ी हवा लेना पसंद करते थे और विदेशी पेय से दूर शुद्ध पेय जैसे- लस्सी, दहीं, शिकंजी और घरेलू वस्तुएँ पसंद करते थे। इसी तरह गाँव के लोग खुद खेती करते थे, गाय भैस पालते थे तो वह अपने लिए बिना रसायन के उपयोग किये अनाज, सब्जी आदि का प्रयोग करते थे। यहाँ पर शहरों के लोग पैक्ट के दूध का इस्तेमाल करते थे, वहीं गाँव के लोग गाय भैस का शुद्ध दूध पीते थे और घर पर ही खाने के अन्य पदार्थ दूध से बनाते थे।

इसी तरह अगर हम त्यौहारों की बात यहाँ पर करें, तो शहरों के लोग दिनभर की दौड़ धूप से तंग आकर त्यौहारों का सही आनंद नहीं ले पाते, वहीं गाँवों के लोग हर एक त्यौहार को पूरे उत्साह के साथ एकजुट होकर मनाते थे। पहले कहा करते थे कि त्यौहार केवल अब गाँव तक ही सीमित रह गये हैं, लेकिन अब तो गाँव में भी लोगों में आधुनिकता आ चुकी है। पहले की तरह लोक एकजुट नहीं है, त्यौहारों का महत्व घटता जा रहा है। पहले गाँव के लोगों में भाईचारे की भावना मौजूद थी, वहाँ

लोग एक दूसरे के साथ परिवार की तरह रहते थे। वह लोग सदैव एक दूसरे की सहायता के लिए तत्पर रहते थे, लेकिन वर्तमान में ऐसी भावना बहुत कम देखने को मिलती है। निश्चित रूप में गाँवों और शहरों के लोगों की जीवन शैली में बहुत बड़ा अंतर है। आज समय है कि दोनों की जीवन शैलियों में एक दूसरे के अच्छे पहलुओं को शामिल करके संतुलन स्थापित किये जाने की आज आवश्यकता है। भारत की अधिकतर जनसंख्या गाँव में रहती है, लेकिन समय के साथ-साथ लोग शहरों की तरफ आकर्षित हुए हैं। अपना जीवन अधिक पुष्पित और पल्लवित बनाने के लिए।

इसी तरह की चिंता को लेकर डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र ने अपने निबंध संग्रह *अराजक उल्लास* में संकलित निबंध 'मकान उठ रहे हैं' में कहा है- जैसे जैसे गाँव में भोग सुविधाएँ बढ़ रही हैं, गांववालों का गाँव से मन उचट रहा है। यह दुर्भाग्य की हद है कि गाँव की संतान का अपनी जन्मभूमि से मन फट रहा है। क्या कारण है कि शहरी सुविधा से सम्पन्न होते अपने गाँव से नाता तोड़कर लोग शहरों की ओर भाग रहे हैं? मुझे लगता है और मेरे गाँव के रामनरेश भी बताते हैं कि गाँव की रहनी बहुत बिगड़ गई है, वह शहर का नकलची बन गया है। आदमी और आदमी को माँ की तरह एक संवेदना सूत्र में बाँधे रहनेवाले गाँव में दोगली बयार बहने लगी है। सुरक्षा और भाव-पोषण का आश्वासन कमजोर हो गया है। धरती, माँ, और अपने टोल-पड़ोस, घर-आँगन के लोगों से कृत्रिम, सुचिक्कन, किन्तु निहायत अनात्मीय मुद्रा में व्यवहार करना गँवई संस्कार के प्रतिकूल है। मगर यही प्रतिकूल व्यवहार शैली आज गाँवों में क्रियाशील है। (53)

मिश्र के इन निबंधों में भाषा का लालित्य नहीं, आंचलिक जीवन से रागात्मक सम्बन्ध की समृद्धता ही उनका असल स्त्रोत हैं। उनके इस राग-बन्ध में कहीं भावुकता नहीं है। ग्रामांचल के प्रति कृष्ण बिहारी मिश का जो ममत्व है, वह उन्हें उस जीवन

की वर्तमान कमियों और कमजोरियों को अनदेखा करने की छूट नहीं देता। बल्कि समग्रता का जो सूत्र ग्राम समाज के जीवन को अर्थवता देता था, उसे वह टूटता हुआ देख रहे हैं ओर उससे दुखी हैं। इसका दर्द बार बार उनके ललित निबंधों में मिलता है। मिश्र ने ग्राम में रहते हुए ग्रामीण जीवन का अच्छे से अनुभव किया है और उनके निबंध ग्रामीण जीवन की ही दिशा और दशा को प्रस्तुत करते हैं। उन्होंने अपने जीवन की कुछ अनुभवी घटनाओं को लेकर भी अपने संग्रह में निबंधों की रचना की है, जो ग्रामीण और शहरों के जीवन को प्रस्तुत करती हैं।

> मिश्र ने अपने निबंध संग्रह *अराजक उल्लास* में कहा है- आज के गाँव ने अपना मूल धरातल छोड़ दिया है। इसलिए तमस अपने डरावने रूप में खेत-खलिहान, आँगन-बगीचे और राह-घाट में हर क्षण चीत्कार करता रहता है। आज अपने ही गाँव को पहचानना कठिन काम हो गया है। आज अपनी ही माटी परायी लगती है। भारत के गाँवों में ग्राम्य संस्कृति संवेदना जैसे सदा के लिए मर गई है और गाँव के आँगन खेत बगीचे में व्यवसाय सभ्यता अपनी सबसे अन्तरंग बान्धवी उपभोक्ता सभ्यता को साथ लेकर उद्दाम अश्लील मुद्रा में नाचने लगी है। आज का गाँव सूचना सभ्यता के प्रति बेहद सतृष्ण हो गया है। (15)

गाँव भारतीय संस्कृति और विरासत का दर्पण हैं, वहाँ भारत की सदियों पुरानी परम्पराएँ कहीं आज भी जीवित हैं और कई जगह पर आज आधुनिकता के दौर में बदलाव भी आ रहे हैं। गाँव के लोगों का व्यवहार बहुत अच्छा होता था, वह अपने अतिथियों का बहुत गर्मजोशी से स्वागत करते थे, लेकिन समय के चलते आज सभी लोग बाजारवाद की लपेट में आ रहे हैं। जो लोग गाँव में विकसित हो चुके हैं, वह गाँव में रहना पसंद नहीं करते, वह प्रवास कर रहे हैं, जिनको अपने गाँवों का विकास करना चाहिए, जिनसे हमारी ऐसी अपेक्षा थी, इसलिए गाँव का दौर बदल रहा है।

जो लोग भारत के गाँवों में अशिक्षित हैं, वह आज भी बहुत से अन्धविश्वास पर अपना जीवन बिता रहे हैं। इसलिए ग्रामीण संस्कृति और सभ्यता और हमारे संस्कार आज खंडित हो रहे हैं, पहले जैसा गर्व आज संस्कृति या हमारे संस्कारों पर नहीं है। वहीं दूसरी ओर शहरों में लोग वक्त की कमी से सदैव जूझते हैं, यहाँ पर कार्य काफी तेजी से करना होता है। उनके जीवन में कोई उत्साह नहीं होता है। शहरी निवासियों को अपने मित्रों, पड़ोसियों, रिश्तेदारों यहाँ तक कि अपने परिवार के सदस्य के लिए भी काफी समय नहीं होता है। गाँवों और शहरों के जीवन में अपनी-अपनी समस्याएँ हैं। कई गाँवों में भी शिक्षा, रोजगार, स्वस्थ्य, परिवहन और बिजली जैसे बुनियादी सुविधाओं का भी अभाव है। आज जो स्थिति गाँव और शहर में देखने को मिलती है, उसके आधार पर हम यही कहना चाहते हैं कि हम चाहे गाँव में रहें या शहर में, हमें अपने जीवन में सही संतुलन और उद्देश्य को स्थापित करने की आज आवश्यकता है, जो यहाँ पर हमारा ग्रामीण और शहरी संस्कृति को लेकर हमारा उद्देश्य है।

गाँवों में ज्यादातर लोगों की जिंदगी कृषि पर निर्भर रहती है। ज्यादातर ग्रामीण किसान ही होते हैं। किसान जब सुबह-सुबह उगते हुए सूरज के साथ अपने खेतों में हल चलाते हैं, पक्षियों और बैलों की आवाज के साथ जुड़कर कड़ी मेहनत का राग गुनगुनाता हुआ महसूस होता है। आर्थिक असमानता, प्रदूषण और कचरे के ढेर शहरी जीवन के अभिशाप हैं, फिर भी लोग शहरों में रहते हैं, क्योंकि वहाँ उन्हें अच्छी शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवहन और आराम एवं मनोरंजन के साधन उपलब्ध होते हैं। लाभप्रद रोजगार के अच्छे अवसर भी लोगों को गाँवों की अपेक्षा शहरों में अधिक प्राप्त होते हैं। इस प्रकार गाँवों और शहरों का जीवन दो परस्पर विरोधी चित्रों को प्रस्तुत करता है। दोनों के ही सकारात्मक एवं नकारात्मक पहलू हैं और यह व्यक्ति विशेष पर निर्भर करता है कि वह ग्रामीण या शहरी किसी भी जीवन की स्थिति में

रहते हुए, नकारात्मक पहलुओं की प्रवाह किये बिना उपलब्ध अवसरों का अधिक से अधिक लाभ कैसे उठाएं।

वर्तमान के निबंधकारों में डॉ. रामदरश मिश्र ने भी अपने निबंधों में ग्रामीण संस्कृति और शहरी संस्कृति को लेकर अपने भाव और विचार व्यक्त किये हैं। मिश्र के निबंधों में व्यक्त होने वाले संवेदन या चिन्तन का महत्व इस बात में है कि वह उनके निजी अनुभवों का निचोड़ है। वह उनके व्यक्तित्व की निजता को लेकर प्रकट हुआ है। हर जगह अपनी रुचि-अरुचि, इच्छा-अनिच्छा, स्वीकृति-अस्वीकृति के साथ लेखक मिलता है। उनके ललित निबंधों में समय के साथ जुड़े विषयों और संवेदनाओं की यात्रा करते हैं। वह चाहे किसी विषय पर लिखे गये हों, अपनी जमीन से जुडी हुई सोच और संवेदना के साथ चलते रहते हैं। गाँव से लेकर शहर तक की इस यात्रा में सामान्य जीवन की छवियाँ और प्रश्न लेखक को प्रभावित तो करते ही हैं, साथ ही वहाँ के छोटे-छोटे सुख ही उन्हें वास्तविक सुख प्रतीत होते हैं। अपने गाँव की स्मृतियों, पर्व-त्यौहारों, ऋतुओं आम जन के जीवन व्यवहारों के बीच वह अपने-आप को पाना चाहते हैं। यहाँ कहीं वह विविध प्रसंगों के चित्रण की प्रक्रिया में राष्ट्र और समाज के अनेक प्रश्नों से गुजरते हैं, तो उनकी प्रगतिशील दृष्टि सहज रूप से ही सड़े-गले मूल्यों का निषेध करती है और उनमें नये मनुष्य को प्रस्तावित करने वाले मूल्यों की पक्षधरता दिखाई देती है। डॉ. रामदरश मिश्र ने अपने निबंध संग्रह *छोटे-छोटे सुख* में संकलित निबंध 'मेरे जाने के बाद' में अपने शहर जाने के बाद गाँव की स्मृति को याद किया और उसका अनुभव करते हुए वह कहते हैं:

> गाँव की यह गलियाँ, ताल पोखरे, रस्ते, कच्ची सडकें, बाग बगीचे, खेत-खलिहान सभी तो दीख रहे हैं, उदास-उदास से। मेरे होने में इनका होना कितनी गहराई से धँसा हुआ है। कितने-कितने अनुभवों की स्मृतियाँ जुड़ी हैं।

इतने लम्बे अरसे तक इनसे दूर रहने पर भी क्या यह दूर हुए, यह तो और भी भीतर धँसते चले गए। लगता रहा है कि मैं अभी भी उनके बीच हूँ, उसी तरह गलियों में गोली खेलता हुआ ताल पोखरों में मस्त नहाता हुआ, पानी के खेल खेलता हुआ, रास्तों और कच्ची सडकों की धूल में पाँव धंसाकर चलता हुआ, और उनसे होकर कहाँ-कहाँ जाता हुआ, तमाम मौसमों में तरह-तरह के खेतों के साथ होता हुआ, खलिहानों में अनाज दांता हुआ आसपास के लोगों को गीत सुनाता हुआ। और बाग़-बगीचों के ये पेड़ सभी तो दोस्त थे। (122)

इस तरह हमने देखा है कि वर्तमान के निबंधकारों ने भी अपनी लेखनी में ग्रामीण संस्कृति और शहरी संस्कृति को लेकर हमें आज परिचित करवाया है, जिनमें ग्रामीण और शहरी लोगों के जीवन के सकारात्मक पक्ष खुलते से प्रतीत होते हैं। जिनका उपयोग आज हम समझकर समाज के विकास के लिए कर सकते हैं। वर्तमान निबंधों में नवीन मार्ग खुल रहे हैं, जिसको हमें समझना और समझाना है तांकि आने वाले समय में लोग इन सभी बातों से अच्छे से परिचित हों और अपने विकास के लिए, इसका प्रयोग करके वह एक अच्छा जीवन बतीत करें वह चाहे ग्राम में रहें या फिर शहर में रहें। ग्रामीण और शहरी जीवन में बहुत सी असमानता है, जो ऊपर हमने विचार किया उससे यह साफ़ पता चलता है। इसलिए सभी को अपना-अपना सकारात्मक पक्ष लेकर आज शिक्षित होना है, इन समस्याओं को दूर करना है, तभी इनसे छुटकारा मिल सकता है।

6.2. सांस्कृतिक पक्ष

6.2.1. वर्तमान सांस्कृतिक जीवन

भारतीय संस्कृति अपनी विशाल भौगोलिक स्थिति के समान अलग-अलग है। यहाँ के लोग अलग-अलग भाषाएँ बोलते हैं, विभिन्न प्रकार के कपड़े पहनते हैं,

विभिन्न धर्मों का पालन करते हैं, अलग अलग प्रकार से भोजन करते हैं, किन्तु उनका स्वभाव एक जैसा होता है। चाहे कोई खुशी का अवसर हो, चाहे कोई भी दुख का क्षण, सभी एक साथ पूरे दिल से भाग लेते हैं, एक साथ खुशी या दर्द का अनुभव करते हैं। हमें अपनी भारतीय संस्कृति पर गर्व है, यहाँ लोग एक साथ मिलजुल कर त्यौहार मनाते हैं, भारतीय विवाह मेलजोल का आयोजन हैं। भारत की वैश्विक छवि एक उभरते हुए और प्रगतिशील राष्ट्र की है। सच ही है, भारत में सभी क्षेत्रों में कई सीमाओं को हाल के वर्षों में पार किया है, जैसे कि वाणिज्य, प्रौद्योगिकी और विकास आदि और इसके साथ ही उसने अपनी अन्य रचनात्मक बौद्धिकता को उपेक्षित भी नहीं किया है।

आज के समय में व्यक्ति के जीवन की बढ़ती जटिलताओं के साथ लोग निरंतर ऐसे माध्यम की खोज कर रहे हैं, जिसके जरिए वह मन की कुछ शांति पा सकें। यहाँ एक और विज्ञान है, जिसे हम ध्यान के नाम से जानते हैं, तथा इसके साथ जुड़ी है, आध्यात्मिकता। ध्यान और योग भारत तथा भारतीय आध्यात्मिकता के समानार्थी हैं। ध्यान लगाना योग का सबसे महत्वपूर्ण घटक है, जो व्यायामों की एक श्रंखला सहित मन और शरीर का उपचार है। इसी तरह भारत और विदेश के कई लोग तनाव से छुटकारा पाने के लिए और मन को ताजा बनाने के लिए योग तथा ध्यान का आश्रय लेते हैं।

भारत का इतिहास पांच हजार से अधिक वर्षों को अपने सांस्कृतिक खंड में समेटे हुए, अनेक सभ्यताओं के पोषक के रूप में विश्व के अध्ययन के लिए उपस्थित है। यहाँ के निवासी एवं उनकी जीवनशैलियां, उनके नृत्य और संगीत शैलियां, कला और हस्तकला जैसे अनेक तत्व भारतीय संस्कृति और विरासत के विभिन्न वर्ण हैं, जो देश की राष्ट्रीयता का सच्चा चित्र प्रस्तुत करते हैं। हमारी संस्कृति का अर्थ भी उतम या सुधरी हुई स्थिति ही है। मनुष्य एक प्रगतिशील प्राणी है, जो सदैव अपने जीवन को

आगे बढ़ाता हुआ बुद्धि के प्रयोग से अपने चारों ओर की परिस्थिति को सुधारता और उन्नत करता रहता है। ऐसे ही प्रत्येक जीवन पद्धति, रीति-रिवाज, रहन-सहन, आचार-विचार, नवीन अनुसंधान और आविष्कार, जिससे मनुष्य पशुओं और जंगलियों के दर्जे से ऊँचा उठता है, तथा सभ्य बनता है, यह सभ्यता और संस्कृति का अंग है। सभ्यता वह है जो हमारे पास है, या जो वस्तु हमारे पास है, इसी तरह संस्कृति वह है, जिसे महसूस किया जा सकता है, जैसे फूलों में सुगंध, संस्कृति आत्मा है।

इन सभी गुणों के बावजूद वर्तमान में भारत में अपनी ही संस्कृति को विखंडित और विलोपित करने की कवायदें आरंभ हो चुकी हैं, जिसके दुष्परिणामस्वरूप भारत केवल भूमि का एक ऐसा टुकड़ा बच जाएगा, जिसके सतही तल पर तो अधिकार हमारा होगा, किन्तु मानसिक स्तर पर उस पर आधिपत्य पाश्चात्य के राष्ट्रों का होगा। इसलिए आज हमारे पास समय है, हमारी सांस्कृतिक अखंडता को बनाये रखने के लिए प्राथमिक तौर पर हर भारतवंशी और हमारी नई पीढ़ी जो हमारे भारत का आने वाला भविष्य हैं; में राष्ट्र प्रेम की भावना लानी होगी। इसी के साथ हमें सांप्रदायिक सौहार्द की स्थापना करनी होगी, क्योंकि भारत में धर्म और जाति के नाम पर झगड़े तो उन हथियारों के व्यापारियों की कारस्तानी और मंशा है, जिनका व्यापार ही हथियार बेचना है। इस तरह आज हमारा विचार हमारी वर्तमान सांस्कृतिक एकता पर है, हमारा वर्तमान सांस्कृतिक जीवन आज खंडित होता जा रहा है। आधुनिकता और बाजारवाद के दौर में 21वीं सदी के भारत में बदलाव आ रहे हैं। आज हमारे भारत में संस्कृति, संस्कार, हमारी एकता, हमारी देश प्रेम भावना, हमारी भक्ति, हमारे त्यौहार, रीति-रिवाज, रहन-सहन, आचार-विचार में बदलाव आ चुका है, जो हम सभी अपने आस-पास घटित अनुभव से कह सकते हैं, यह आज सच है। आज हर व्यक्ति की सोच को नकारात्मक बिन्दुओं ने अधिक

प्रभावित किया है। जीवन को अच्छा या और सुंदर बनाना या अपनी जीवनशैली में दूसरों से आगे जाना बुरी बात नहीं है, लेकिन दूसरों के प्रति बुरा सोचकर या हीन भावना लेकर आगे जाना बुरा है। अपने जीवन को इतना आधुनिक बनाना जिससे हमारी संस्कृति और समाज को क्षति पहुँचती है, यह सही नहीं है। जब हमारे पास कोई भी समस्या उत्पन्न होती है, तो वह हमारे समाज को प्रभावित करती है। ऐसे समय में अगर हमारा समाज पुष्पित नहीं होगा, तो हमारा जीवन भी अधिक समय अच्छा नहीं रह सकता। आज समय है हमें अपनी सोच को बदलना है, अपने समाज और संस्कृति के प्रति सुचेत होना है और जागरूकता फैलानी है, तांकि हमारी नई पीढ़ी इससे छुटकारा पा सके जो हमारे भारत का भविष्य हैं।

हमारे इस शोध का भी यही उद्देश्य है, जिससे हम वर्तमान निबंधों का अध्ययन करके, आज प्रचलित समस्याओं और हमारे बदलते सांस्कृतिक जीवन को प्रस्तुत कर रहें हैं और इसके आवश्यक गुण भी चर्चित किये गए हैं, जिनका अध्ययन करके इसे समाज के विकास के लिए उपयोग किया जा सकता है। 21वीं सदी के हिन्दी निबंधकारों ने अपने समय में जो-जो देखा, अनुभव किया, उसको अपने निबंधों में प्रस्तुत किया, जिससे हमें एक नया रास्ता प्राप्त होता है, समाज के विकास का। शोध प्रविधियों की सहायता लेते हुए, हम अपने उद्देश्य को पूरा कर रहे हैं। वर्तमान समय की एक-एक समस्या पर हमने सन्दर्भों सहित अपने विचार प्रस्तुत किये हैं, जो आने वाले समय के लिए सहायक सिद्ध होंगे। इस तरह हमारे सांस्कृतिक जीवन की बदलती शैली के बारे में डॉ. श्रीराम परिहार अपने निबंध संग्रह *धूप का अवसाद* में संकलित निबंध 'आदमी समय की नाक का बाल नहीं है' में कहते हैं:

> आज के साथ चलना आसान नहीं है। अपने समय में चलते हुए भी आदमी कहाँ होश में रह पाता है। आज आदमी अपने क्रूर समय में जी रहा है, बड़ा कठिन

समय है, फिर भी जी रहा है, यह क्या कम है। आदमी समय की नाक का बाल बिलकुल नहीं है, फिर भी समय को नाम से पुकार लगाने वाला आदमी ही है। यह आदमी अपने समय में तमाम आगा-पीछा सोचता रहता है। आज के साथ रहते हुए भी वह बीते हुए कल को ढोता रहता है और आने वाले कल के सपने देखता रहता है। (40)

आज जो संसार हमारे पल्ले में है, उसमें रहते हुए भी हम कल के लिए बहुत चिंतत नहीं हैं। केवल आज की बात करते हुए और आज ही को भोगते हुए भी हम बहुत देर तक नहीं चल सकते। इससे स्पष्ट होता है कि आज समय है, हमें भविष्य के बारे में सोचकर चलना होगा केवल मात्र आज तक सीमित नहीं रहना है। वर्तमान में जो हमारे समक्ष बदलाव आ रहे हैं, उनके ऊपर आज विचार विमर्श करने की आवश्यकता है। आज हमारे पास जागरूकता फ़ैलाने का सही समय है, जो आगे हमारे समाज के विकास के लिए सिद्ध साबित हो।

6.2.2. संस्कार और संस्कृति

संस्कार शब्द का अर्थ है परिष्कार, शुद्धता, पवित्रता। संस्कारों का विधान व्यक्ति के शरीर को परिष्कृत अथवा पवित्र बनाने के उद्देश्य से किया गया है, तांकि वह वैयक्तिक एवं सामाजिक विकास के लिए उपयुक्त बन सके। शुद्धता, पवित्रता, धार्मिकता एवं आस्तिकता संस्कार की प्रमुख विशेषताएँ हैं। मनुष्य अपने संस्कारों के माध्यम से ही सुसंस्कृत हो जाता है। संस्कारों से ही मानव की अंतर्निहित शक्तियों का विकास हो पाता है, तथा वह अपने लक्ष्य की प्राप्ति कर लेता है।

हमारी संस्कृति और संस्कार अच्छे होंगे तो हमारा सांस्कृतिक जीवन बहुत सुंदर होगा, हमारे संस्कार और संस्कृति ही तो है, जो हमें अन्य क्षेत्रों से अलग करती है,

अन्य संस्कृतियों से अलग करती है। हमें अपनी भारतीय संस्कृति और संस्कार पर गर्व है। हमारे अच्छे संस्कारों को देखकर अन्य लोग कहते हैं कि भारतीय संस्कृति बहुत अच्छी है, यहाँ के लोगों के संस्कार, चाहे वह बड़ों के प्रति हों, चाहे वह अपने देश प्रेम के प्रति हों बहुत अच्छे हैं। संस्कारों से ही तो हमारे भारतीय होने की अलग पहचान होती हैं। जब बड़े खड़े हों तो उनके सामने न बैठना, बड़ों को खाना पहले परोसना, एक छात्र के गुरु के प्रति संस्कार, ऐसे ही संस्कार हमारे जीवन को और सुंदर बनाते हैं।

वर्तमान समय में हमारे संस्कारों में भी पहले जैसी भावना देखने को नहीं मिलती है। पहले समय में जो संबंध थे, वह आज बहुत कम देखने को मिलते हैं, आज शिक्षक के प्रति भी एक छात्र के पहले जैसे संस्कार नहीं है। घर परिवार में माता-पिता के प्रति आज बच्चों के संस्कार पहले जैसे नहीं हैं, हर एक रिश्ते में आज बदलाव आ रहा है। आज कई जगह पर सुनने को मिलता है कि राष्ट्र गान के समय राजनेताओं का खड़े न होना, जबकि ऐसे लोगों के लिए कानून का प्रावधान है, जो कागज तक ही सीमित रहता है। हमारे राष्ट्र ध्वज को कई जगह पर फाड़ने और जलाने की खबरें आम सुनने को मिलती हैं। जिसका कारण हमारे भृष्ट राजनेता हैं, जो लोगों के प्रति लगाव नहीं रखते केवल मात्र अपना स्वार्थ निकालते हैं। ऐसी ही बहुत घटनाएँ, हमें आज सुनने को मिलती हैं, जो हमारी संस्कृति और समाज को प्रभावित कर रही हैं।

वर्तमान में निबंधकारों ने अपने निबंधों में संस्कार और संस्कृति को लेकर भी अपने विचार प्रस्तुत किये हैं, जिनसे हमारे समाज के विकास के नवीन मार्ग खुलते प्रतीत हो रहे हैं, जिन पर आज विचार करके हमारे समाज का विकास किया जा सकता है। डॉ. सुधेश ने अपने निबंध संग्रह *चिन्तन अनुचिन्तन* में हमारे संस्कारों के उद्देश्य को लेकर कहा है:

जीवन में अशुभ एवं आसुरी शक्तियों का प्रभाव होता है, जो अच्छा एवं बुरा दोनों प्रकार का फल देती हैं। संस्कारों के माध्यम से मानव के अच्छे प्रभावों को आकर्षित करने तथा बुरे प्रभावों को हटाने का प्रयास किया जाता है, जिससे मनुष्य का स्वास्थ्य एवं उसका निर्विघ्न विकास हो सकें। संस्कारों का विधान भौतिक समृद्धि यथा पशुधन, पुत्र, दीर्घायु, शक्ति, बुद्धि, सम्पति आदि की प्राप्ति के उद्देश्य से भी किया गया था। (51)

आज एक बात का हमें अच्छे से अनुभव हो रहा है कि वर्तमान पीढ़ी में संस्कारों का चलन कम होता जा रहा है। अगर हम कहें आज की पीढ़ी संस्कारी नहीं है, या इनमें संस्कारों का ज्ञान नहीं है, तो इसमें कोई संदेह नहीं है। संस्कार हमारे मानवीय जीवन को विकसित करते हैं और हमें अपने जीवन के सही मूल्यों की शिक्षा भी दिलाते हैं। इसलिए यह बात स्पष्ट है कि संस्कार हमारे जीवन में बहुत महत्वपूर्ण हैं, इनके हनन होने से हमारे पूर्वजों या हमारे बड़ों को बहुत तकलीफ़ होती है। उनकी यह चिंता बहुत हद तक बिलकुल सही है, क्योंकि भारतीय संस्कृति में मानव का सम्पूर्ण जीवन धर्म से संबंधित है और इन्ही अच्छे संस्कारों से मानव का जीवन सुंदर और सफ़ल बनता है। संस्कार तो प्राचीन काल से ही मनुष्य जीवन का आवश्यक अंग हैं। संस्कार मानव के जीवन के प्रथम चरण से आरंभ होते हैं और यह उसमे अंतिम चरण तक रहते हैं।

प्रत्येक मनुष्य का जीवन तथा व्यवहार उसके सामाजिक परिवेश तथा उनसे प्राप्त नैतिक, भावात्मक, परम्परागत संस्कारों पर आधारित रहता है। यह आदान-प्रदान एक पक्षीय नहीं है। प्रत्येक मानव का जीवन यहाँ समाज में प्रचलित मान्यताओं, विश्वासों, त्यौहारों एवं जीवन दर्शन से नियंत्रित होता है, वहाँ साथ ही प्रत्येक अपने व्यक्तित्व व्यवहार एवं सहानुभूति से उन परम्परागत संस्कारों को चालित तथा परिवर्तित करता हुआ, समाज के लिए नए तथा उन्नत आदर्शों को प्रतिष्ठापित करता

है। अक्सर कहा जाता है, संस्कार वह है, जो किसी दोष को दूर करके उसे विभूषित करता है, इस तरह हम यह कह सकते हैं कि संस्कार हमारे जीवन के बुरे दोषों को दूर करने में सहायक हैं। हमारे अंदर अच्छे गुण डालता है। अच्छे गुणों से ही हमारा सामाजिक जीवन और भी पल्लवित होता है और हमारे संस्कार और भी विकसित होते हैं। इस तरह अच्छे संस्कार हमें बुरे दोषों से छुटकारा दिलाते हैं, जो हमारे जीवन में बाधा डालते हैं।

21वीं सदी के निबंधकारों में डॉ. श्यामसुंदर दुबे ने संस्कारों के प्रति अपने विचार हमारे समक्ष प्रस्तुत किये हैं। उन्होंने अपने निबंध संग्रह *अलोक अनवरत* में हमें पिता और पुत्र के बीच के सम्बन्ध और संस्कार को हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है, जिसमें पिता सदैव अपने पुत्र के साथ भोजन करते हुए दुःख और सुख की बात करता है, लेकिन आज पुत्र बदल रहा है, उसको तो पिता को साथ बैठाकर खाना खिलाना भी अच्छा नहीं लगता है। उनके इसी संग्रह में संकलित निबंध 'पिता आखिर पिता ही है' में कहा है:

> गाँव से पिता अक्सर अपने नौकरी-पेशा शहर बसे लडके के पास आते रहते हैं। वे शाम को जब भोजन करने बैठते हैं, तब अपने नौकरी पेशा लडके को सुनाते रहते हैं, कि गाँव में छुटका की खेती को फिर इल्ली खा गई या पाले में सारी फसल सूख गई। लड़का अपनी घरवाली को बार-बार देखता है और पिता की चिंता में घुली बेबसी को अपने मौन में पी जाता है। अब हाल यह है कि पिता उसके घर में पाँव रखते हैं, और वह उनके भोजन प्रसंग से अपने आपको अलग करने की योजना बनाने लगता है। बूढ़े पिता फिर भी छुटका की परेशानियों को झेलते हैं, जैसे वह उन्हें सुनकर मुक्त हो रहे हों। (34)

यहाँ से हमें स्पष्ट हो रहा है कि आज हमारे जीवन के संस्कारित संदर्भ बदल रहे हैं। पहले की तरह आज किसी को अपने माता-पिता, भाई-बहन या किसी भी अन्य सदस्य के प्रति लगाव नहीं है। बच्चे चाहे कितने भी बड़े क्यूँ न हो जाएँ, पिता तो पिता ही रहता है, उसके लिए वह सदैव बच्चे ही रहते हैं, लेकिन ऐसा आज कोई मानने को तैयार नहीं है। आज आधुनिकतावाद, संप्रदायिकता, बाजारवाद और हमारे बदलते जीवन मूल्यों ने मानवीय जीवन को बहुत प्रभावित किया है। जिसकी एक-एक समस्या आज वर्तमान के निबंधों में प्रस्तुत हैं। इन्हीं समस्याओं को आधार बनाकर ही हमने वर्तमान में एक उद्देश्य को लेकर अपना कार्य किया है, जो वर्तमान निबंधों के द्वारा हमारे समाज के विकास के लिए एक बहुत ही सफल निर्देश है।

6.2.3. कला और विरासत

भारतीय देश एक समृद्ध विरासत और कला का देश है, जो अपने गौरवशाली अतीत के बारे में बताता है। हमारे पूर्वजों ने सदियों से हमारी सांस्कृतिक और स्मारकीय विरासत और कला को संरक्षित किया है, तो हमारा भी आज कर्तव्य है कि हमें अपनी इस परम्परा को बनाये रखना चाहिए। हमारी विरासत और कला हमें अपने अतीत से जोडती हैं और बताती हैं कि हम वास्तव में कहाँ हैं। हमारी भारतीय विरासत कई शताब्दियों पहले की है, यह विरासत और कला बहुत ही विशाल और जीवंत है। हमारे पूर्वजों ने हमारी सांस्कृतिक विरासत और कला को शुरू से ही अत्यंत महत्व दिया है और अपनी आने वाली पीढ़ियों के लिए इसे संरक्षित किया है, वैसे ही आज हमारा भी प्रमुख कर्तव्य है कि हम भी अपनी सांस्कृतिक कला और विरासत को आने वाले समय में सुरक्षित और संरक्षित करें। लेकिन आज ऐसा नहीं है, किसी को अपनी विरासत से कुछ इतना मतलब नहीं है, जितना अपने स्व के हितों का है, यही कारण है कि आज हमारी सांस्कृतिक विरासत अलोप होती जा रही है।

हमारी सांस्कृतिक विरासत हमारे लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। हमारे यहाँ विभिन्न जाति, धर्मों और पंथों के लोग रहते हैं, सभी के अपने अपने रीति-रिवाज और परम्पराएँ हैं। हम अपनी सांस्कृतिक विरासत और परम्पराओं को कभी भूल नहीं सकते हैं, क्योंकि वे हम में अंतर्निहित हैं, हमारे जीवन का अनिवार्य हिस्सा है। सभी जाति और धर्मों के लोगों के त्यौहार, नृत्य रूपों, संगीत और अन्य कला रूपों का अपना सेट है और सभी का विभिन्न आकर्षण है। हमारी संस्कृति की सुंदरता इसी में निहित है कि हम अपनी विरासत के प्रति सम्मान रखते हैं और अन्य धर्मों और जातियों के प्रति भी सम्मान रखते हैं। इसी तरह अन्य लोग हमारी विरासत को देखकर ही हमारी भारतीय संस्कृति को पहचानते हैं और यही बातें हमें अन्य देशों की संस्कृति से हमारी अलग पहचान बनाती है। लेकिन आज वर्तमान समय में सभी अपने अच्छे जीवन की भाग-दौड़ में लगे हुए हैं और दूसरों से आगे निकलने की इच्छा आज अधिक देखने को मिलती है। इसी को स्वार्थ भी कहा जाता है, अपने जीवन को और अच्छा बनाना बुरी बात कदापि नहीं है, लेकिन दूसरों के प्रति बुरा सोचकर और अपनी सांस्कृतिक विरासत को भूलकर आगे जाना बुरा है। हमारे पूर्वज जिस संस्कृति पर गर्व करते थे और हमारे लिए बहुत कुछ पीछे छोड़ कर गए हैं। उनको आज हमारी नई पीढ़ी भूल रही है।

हमारे भारतीय रीति-रिवाज और हमारी परम्पराएँ, हमें विनम्र बने रहने, दूसरों का सम्मान करने और एकता से रहने के लिए प्रोत्साहित करती हैं। हम प्राचीन काल से ही अपने रीति-रिवाज और अपनी परम्पराओं को बहुत महत्व देते आये हैं। इन सभी को पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे पारित किया जाता रहा है, तो आज हमें भी इन बातों का ध्यान रखना चाहिए। प्राचीन काल से ही हमारे भारत में त्यौहार प्रमुख रूप से मनाये जाते हैं, जो देश की संस्कृति और परम्परा का प्रतिबिंब हैं। यह सभी हमारी समृद्ध विरासत का हिस्सा हैं। इसी तरह हमारे विभिन्न प्रकार के शास्त्रीय नृत्य,

संगीत, कला और पेंटिंग जैसे अनेक रूप भी हमारी भारतीय विरासत का ही प्रमुख हिस्सा हैं। इसी तरह हमारे भारतीय स्मारक भी हमें अपनी विरासत और संस्कृति की प्रचुरता से ही जोड़ते हैं। ताजमहल, कुतुब मीनार, हवा महल और खजुराहों समूह के स्मारक सूर्य कोणार्क मन्दिर आदि हमारे देश के विरासत स्मारक हैं। हमारी भारतीय सांस्कृतिक विरासत अपनी विशालता के लिए जानी जाती है, इसमें हमारी स्मारक विरासत, हमारा साहित्य और कला के विभिन्न कार्य भी शामिल हैं।

समय के साथ आज हमारे दोनों मूर्त और अमूर्त विरासत दूर होते जा रहे हैं। आज हमारे पास समय है कि हमें अपनी समृद्ध विरासत को संरक्षित करने और इसे अपनी भावी पीढ़ियों के लिए पारित करने की हमारी जिम्मेदारी के रूप में लेने की आवश्यकता है, तभी जो हमारे पूर्वजों को हमारी संस्कृति पर गर्व था ऐसा ही वर्तमान पीढ़ी में भी हो पाएगा। अगर आज हम सभी लोग मिलकर ऐसी जागरूकता नहीं फैलाएँगे तो हमारी सांस्कृतिक विरासत खंडित होती रहेगी। जैसे हमें बचपन से ही एक निश्चित कार्य सिखाया जाता है, वैसे ही आज कार्य करने की आवश्यकता है और कुछ प्रथाओं में लिप्त होने से बचना चाहिए, तांकि हमारी संस्कृति के प्रति सहजता वैसे ही बनी रहे। हमें अपने रीति-रिवाजों और परम्पराओं को सुरक्षित करना चाहिए और अपने आने वाली पीढ़ियों के लिए उतनी ही वृद्धि करनी चाहिए जितनी एक अच्छे और पुष्पित समाज के निर्माण में योगदान दें।

आज हमारे साहित्य का भी संरक्षण किया जाना बहुत आवश्यक है, हमारा भारतीय साहित्य अपनी संस्कृति जितना ही समृद्ध हैं। प्राचीन काल में हमारे यहाँ बहुत सी किताबों की रचना हुई है, जो हमें अपने समय का ज्ञान देती हैं। किताबें आज भी सकारात्मक प्रभाव पैदा करने की शक्ति प्रदान करती है, हमें जो ज्ञान मिलता है, वह हमें किताबों से ही मिलता है। बहुत सी किताबों का अन्य भाषाओं में अनुवाद किया गया हैं, तांकि अधिक से अधिक लोग लेखकों के द्वारा साझा किए गए ज्ञान का

लाभ उठा सकें। साहित्य बहुत बड़ा साधन है, जो हमें अपने समय का ज्ञान देता है, इसी तरह वर्तमान में शोध कार्य भी हो रहे हैं। हमारे इस शोध का भी इसी तरह का उद्देश्य है, जो समाज के विकास में योगदान देगा, हमारे समय की स्थितियों को पेश करेगा और प्रचलित समस्याओं का समाधान करेगा।

आज हम वस्तुओं के दबाव में हैं, वर्तमान में भूमंडलीय व्यवस्था में भोगवादी और वस्तुवादी धारणाओं ने हमारा ध्यान आकर्षित किया है, जिसके कारण हम अपनी सांस्कृतिक विरासत को भूल रहे हैं। डॉ. श्रीराम परिहार अपने निबंध संग्रह *धूप का अवसाद* में संकलित निबंध 'देश ही हमारी पहचान हैं' में कहते हैं:

> आज भारत ने इस व्यवस्था का अन्धानुकरण किया है, आज हम पर वस्तुओं का जबर्दस्त दबाव है। आज हमारे स्वाधीनता पाशविकता या क्रूरता से नहीं, बल्कि वस्तुओं से ज्यादा प्रभावित हो रहे हैं। वस्तुएँ हमारी स्वाधीनता को अपाहिज कर रही हैं। आत्मबल और स्वानुशासन के स्थान पर एक प्रकार का शून्य पसर गया है। प्रश्न विकास के उतरों के लिए नहीं हो रहे हैं, प्रश्न और नीचे गिरते जाने के पक्ष में किये जा रहे हैं। वस्तुएँ एक कमरा भर सकती हैं, वस्तुएँ शरीर को सुख दे सकती हैं, पर घर तो वस्तुओं से नहीं, भावों से बनता है। मन का सुख आत्मबल है, चेतना का सुख संन्यासी बनकर नहीं, कर्मयोगी बनकर पाया जाता है। (107)

इस तरह यहाँ परिहार ने बताया है कि सुख वस्तुओं से नहीं मिलता, जिनके पीछे आज हम दौड़ रहे हैं। हमें अपनी नियति को बदलना होगा, तभी स्थिति बदली जा सकती है।

वनस्पति और जीव

भारत एक बड़े विविध राष्ट्र के रूप में जाना जाता है। हमारे भारत में बहुत सी वस्तुएँ ऐसी हैं, जो हमारी विरासत के रूप में जानी जाती हैं, हमारे भारत में हमारे पास विभिन्न प्रकार के पौधे हैं, हम इस पर गर्व करते हैं कि दुनिया के दो जैव विविधता हॉटस्पॉट हमारे देश में मौजूद हैं। पश्चिमी घाट और पूर्वी हिमालय। हमारे लिए यह बहुत गर्व की बात है कि हमारे भारत में पौधों की 45500 से अधिक प्रजातियाँ हैं, इनमें से बहुत सी हमारे भारत देश में पाई जाती हैं। हमारे पास बहुत से ऐसे फूल और पौधे हैं, जो अन्य देशों में कहीं नहीं पाए जाते हैं और हम भारत में कई तरह की खेती करते हैं। इसी तरह भारत में जीवों की भी बहुत सी प्रजातियाँ हैं, जो भारत के विभिन्न क्षेत्रों में निवास करती हैं। हमारे देश की जैव विविधता में हमारे पास सुंदर और रंगीन पक्षियों की लगभग 1200 प्रजातियाँ है, यह हमारे लिए बहुत ही ख़ुशी की बात है और गर्व की बात है। इन्हीं बातों से हमारी भारतीय सांस्कृतिक विरासत अन्य देशों से विभिन्न है।

भूवैज्ञानिक संरचनाएँ

इस तरह बहुत सी वस्तुएं ऐसी हैं, जो हमारी सांस्कृतिक विरासत को और भी पुष्पित और पल्लवित बनाती हैं। जिनसे हमारी भारतीय संस्कृति का पता चलता है। प्राचीन समय हमारे पूर्वजों ने इसे संभाल कर रखा है। वैसे ही आज इन पर हमें भी विचार करना चाहिए, इसको जीवित रखना चाहिए और अपनी संस्कृति पर पहले की तरह गर्व करना चाहिए। हमारे भारत देश में कुछ भूवैज्ञानिक संरचनाओं का भी घर है, जो भारत के विभिन्न हिस्सों में पाई जाती हैं। हमारे देश का प्रमुख हिस्सा बनने वाली बहुत सी भूवैज्ञानिक संरचनाएँ हैं, जिनमे प्रमुख हैं अंडमान, लेह, चुंबकीय हिल, तमिलनाडु, बंजर द्वीप, जम्मू और कश्मीर, सियाचिन ग्लेशियर, आदि

हैं। ये सभी पृथ्वी के सच्चे चमत्कार हैं, भगवान की इन अद्भुत कृतियों की झलक पाने के लिए दुनिया भर के लोग विशेष रूप में इन स्थानों पर जाते हैं। इन सब से हमारी संस्कृति और भी प्रफुल्लत होती है। प्रत्येक भारतीय के लिए यह बहुत ही गर्व की बात है कि हमारे कुछ भूवैज्ञानिक स्थानों को यूनेस्को की विश्व प्राकृतिक धरोहर स्थलों में शामिल किया गया है।

काजीरंगा राष्ट्रीय उद्यान : यह 1985 में विश्व विरासत स्थल घोषित किया गया है और सुंदर पक्षियों की कई प्रजातियों के लिए, 1985 में विश्व विरासत स्थल भी घोषित किया गया है।

ग्रेट हिमालयन नैशनल पार्क : इस खूबसूरत जगह को वर्ष 2014 में यूनेस्को ने विश्व धरोहर स्थल घोषित किया है।

नंदा देवी और फूलों की घाटी राष्ट्रीय उद्यान : यह सुंदर और शांत प्राकृतिक आसपास 2004 में विश्व धरोहर स्थल के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है।

पश्चिमी घाट : यह हमारे देश के सबसे सुंदर स्थानों में से एक है, यह 2012 में विश्व विरासत स्थल घोषित किया गया है।

इसके अतिरिक्त हमारी आश्चर्यजनक स्मारक विरासत दुनिया के विभिन्न हिस्सों के लोगों को आकर्षित करती है। हमारे पूर्वजों ने हमारी सांस्कृतिक विरासत को सदियों से संरक्षित किया है और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पारित किया है। कुछ बातें हमारी पुरानी पीढ़ियों को परेशान करती हैं, क्योंकि वह चाहते हैं कि हमारी सांस्कृतिक विरासत बनी रहे वह इसे खोना नही चाहते, जो वर्तमान पीढ़ी में कमजोर नजर आती है। नई तकनीक से संचालित पीढ़ी भारतीय विरासत को पहले की तरह महत्व नहीं देती और इसे संरक्षित करने और आगे बढ़ाने में कमजोर नजर आती है।

नई पीढ़ी को उपहार

हमारी विरासत विशद और विशाल है, हमारे देश में बड़ी संख्या में धार्मिक समूह रहते हैं, प्रत्येक का अपना रीति-रिवाज और परम्परा है। जिसे वह अपनी नई पीढ़ी को सौंपता है। जबकि हमारे बहुत से रीति-रिवाज और परम्पराएँ पूरे भारत में एक सम्मान हैं। इसी तरह हमारी परम्परा में हमारे बजुर्गों का सम्मान करना, जरूरतमंदों की मदद करना, मेहमानों का अच्छे से स्वागत करना और सच बोलना शामिल है, जो हमें अन्य देशों से अलग करती है। इससे यह साफ़ पता चलता है कि हमारी परम्परा हमें अच्छे गुण सिखाती है और हमारे अंदर अच्छी आदतें डालती हैं और हमें अच्छा इंसान बनाती है। इसी तरह हमारा भी इस शोध में हमारे सांस्कृतिक जीवन को लेकर यही उद्देश्य है कि इन बातों को अच्छे से विश्लेषित किया जाए, तांकि हमारी वर्तमान पीढ़ी इसको समझ सके और अपना विकास कर सके।

वर्तमान पीढ़ी के लिए विरासत का महत्व

हमारी सांस्कृतिक विरासत सदियों से बरकरार है, लेकिन वर्तमान समय में इसका कमजोर पड़ना आज बहुत से कारणों से है। आज ऐसा आवश्य हमें लगता है कि हमारी वर्तमान पीढ़ी सांस्कृतिक विरासत को बहुत कम महत्व देती है। हमने समाज में पिछले कुछ दशकों में बहुत बदलाव देखे हैं, आज सदियों पुरानी हमारी परम्पराएँ बदलने लगी हैं। आज हमरी संयुक्त परिवार प्रणाली नई परमाणु परिवार प्रणाली को जन्म दे रही है, आज स्मार्ट फ़ोन और इंटरनेट के आगमन ने हमें अपनी सांस्कृतिक विरासत से दूर कर दिया है। युवा पीढ़ी अपने स्वार्थ में इतनी तल्लीन हो गई है और इतनी आत्म केन्द्रित हो गई है, अपने बड़ों द्वारा दिए गए सांस्कृतिक मूल्यों पर अधिक ध्यान नहीं देती है। यही कारण है कि हम अपनी विरासत को भूल रहे हैं, केवल अपने स्व के लिए आज दौड़ रहे हैं।

आज हमारे पास समय है, अपनी युवा पीढ़ी को अपने गौरवशाली इतिहास से परिचित करवाया जाए, जिससे उनके अंदर गर्व की भावना पैदा हो सके और वह परम्परा को बनाए रखने के लिए प्रेरित होंगे और नई पीढ़ी के लिए इसे पारित करेंगे। स्कूलों में भी ऐसी शिक्षा की आज जरूरत है, जो जागरूकता का काम करेगी। युवा पीढ़ी को हमारी सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करना चाहिए और हमारे देश की स्मारक प्राकृतिक विरासत को संरक्षित करने में प्रगतिशील होना चाहिए।

6.2.4. रीति-रिवाज

हमारे रीति-रिवाज ऐसी परम्पराएँ एवं संस्कार हैं, जो पीढ़ी दर पीढ़ी मानव जातियों में चले आते हैं। कभी-कभी यह धर्म और त्यौहार का भी हिस्सा होते हैं। हमारी भारतीय संस्कृति में रीति-रिवाजों और परम्पराओं का वैज्ञानिक महत्व है। अगर यहाँ पर हम अपने पूर्वजों की बात करें, तो वह सुबह-सुबह उठकर दोनों हाथ जोड़कर अपने गुरु का नाम लेते हैं और धरती माँ को पहले प्रणाम करते हैं। कोई भी कार्य करने से पहले हमारे यहाँ सतगुरु को याद किया जाता है। यह हमारा सांस्कृतिक जीवन है, जो हमने अपने पूर्वजों और समाज से सीखा है। इसी तरह बहुत से रीति-रिवाज हैं, जो हमें अपनी संस्कृति से जोड़ते हैं और हमें एक संस्कृत मानव तैयार करते हैं।

हमारे यहाँ अक्सर कहा जाता है कि सूर्य की किरणें जो सुबह सुबह होती हैं, तभी हमें उनसे विटामिन डी मिलता है। इस तरह हमें सूर्योदय से पहले उठना चाहिए। दूसरी तरफ सूर्य ग्रहण के समय घर से बाहर न निकलने के पीछे वैज्ञानिक तथ्य छिपा हुआ है, सूर्य ग्रहण के समय सूर्य से हानिकारक किरणें निकलती हैं, जो हमें नुकसान पहुंचाती हैं। इसी तरह प्रकृति की माता और इसके हर रूप को देवी देवता का रूप दिया गया है, जिनमें कुछ पेड़ हैं- पीपल, तुलसी और नदियां को देवी रूप दिया गया

है। हमारे यहाँ घूमने की परम्परा भी है, जो हमें देश के भूगोल का ज्ञान देती हैं और इससे पर्यावरण का बोध भी होता है और साथ ही यह यात्राएँ, हमारे स्वास्थ्य के लिए भी लाभकारी हैं। जिससे हमारा मन प्रसन्न रहता है। इसी तरह हमारे रीति-रिवाज और त्यौहार भी हमारे संबंधों को मजबूत करते हैं।

हमारे रीति-रिवाज, संस्कारों और संस्कृति को देखकर ही विदेशी लोगों को यह परम्परा अच्छी लगती है और हमारी अन्य देशों से अलग पहचान बनाती है। त्यौहार हमें परस्पर एकता, एकरसता, एकरूपता का पाठ पढ़ाते हैं। सभी जाति के लोग एक साथ मिलकर अपना मनोरंजन करते हैं और एकता से त्यौहारों को मनाते हैं। हमारे देश के त्यौहारों का महत्व धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, आध्यात्मिक दृष्टि से बहुत अधिक है। राष्ट्रीय दृष्टि से 15 अगस्त, 26 जनवरी, 2 अक्टूबर और 14 नवम्बर का महत्व अधिक है। हम यह कह सकते हैं, हमारे देश के त्यौहार विशुद्ध प्रेम, भेदभाव और सहानुभूति का संदेश हैं।

हमारे रीति-रिवाज हमें एकता और प्रेम और जीवन में अच्छे गुण प्रदान करते हैं और हमें संस्कृत प्राणी बनाते हैं। लेकिन वर्तमान में हमें आधुनिकता और बाजारवाद ने इनसे दूर किया है और हो भी रहे हैं, आज स्मार्ट फ़ोन में सभी चाहे वह पुरुष है या नारी, उसमें व्यस्त रहते हैं। यह भी आज बहुत बड़ा कारण है। हमें अपने सांस्कृतिक रीति-रिवाजों से दूर लेता चला जा रहा है। इस तरह आज समय है, इन सब पर विचार किया जाए और नई पीढ़ी के अंदर ऐसी भावना पैदा की जाए, तभी हमारी नई पीढ़ी सुचेत होगी और प्रगतिशील होगी। वर्तमान में निबंधकारों ने हमारे जीवन के तहस-नहस होते जीवन मूल्यों पर चर्चा करते हुए, आज की समस्याओं को अपने निबंधों में हमारे सम्मुख पेश किया है। इन्हीं से हमें आज नई चेतना और भावना की

प्रेरणा भी मिलती है। जिसको हम समाज के विकास में उपयोग कर सकते हैं और अपना बौद्धिक विकास भी कर सकते हैं।

डॉ. श्यामसुंदर दुबे अपने निबंध *कालमृगया* में आज हमारे बदलते रीति-रिवाज और परम्पराओं को लेकर कहते हैं - हम जिस ग्लोबल समय में रह रहे हैं, उसमे हमारी पहचान पर और हमारे रीति-रिवाज, परम्पराओं पर अनेक आघात हो रहे हैं। और यहाँ तक हम आ गए हैं कि हमारी भारतीयता का स्वरूप उसके अभिलक्षण, उसके मूल्य तिरोहित से हो रहे हैं। अब यह जरूरत है कि हम अपने आपको प्रमाणित करें। हमारी भारतीय पहचान हो, जिसने हमें विश्व में समादृत होने का अवसर दिया है। 'सारे जहाँ से अच्छा हिंदुस्तान हमारा' यदि है तो अपनी भारतीयता के कारण ही है। भारतीयता हमारे साहित्य में सुरक्षित है। भाव और चिंतन के आधार पर भारतीयता की मूल चेतना इन दोनों स्तरों पर साहित्य में ही उपलब्ध हो सकती है। (12)

इस तरह हम कह सकते हैं कि डॉ. दुबे के साहित्य में प्राप्त भारतीयता वह सनातन प्रवाह है, जिसमें अनेक सभ्यता, संस्कार, रीति-रिवाज, सांस्कृतिक जीवन की धाराएँ मिलती हैं और वह भारतीयता में परिवर्तित होकर ही अंततोगत्वा हमारी चेतना का हिस्सा बन गई है। कुछ समय के लिए कहा जाता था कि ग्रामीण क्षेत्रों में बहुत सी परम्पराओं और रीति-रिवाज, त्यौहार आज भी जिन्दा हैं, लेकिन वर्तमान समय में गाँवों से पलायन हो रहा है, सांस्कृतिक जीवन का आज गाँवों में भी पलायन हो रहा है। डॉ. श्यामसुंदर दुबे ने अपने निबंध *जहां देवता सोते हैं* में कहा है:

गाँवों से अब थोक पलायन हो रहा है, मजदूर और मेहनतकश लोग जन ने गाँव छोड़ दिए हैं। पहले जैसी एकता गाँवों में संभव नहीं है वहाँ से पिछले दशकों में लोगों ने प्रवास किया है। यांत्रिकीकरण की चपेट का जबर्दस्त प्रभाव इस वर्ग

पर पड़ना ही था। मेरे देखते-देखते गाँवों में रीति रिवाज और किसानी के तौर तरीके ही बदल गए और बदल रहे भी हैं। जहाँ गुजारे के लाले पड़ने लगे हैं, वहाँ अब मोह-छोह कैसा, पलायन की पीड़ा अब नहीं सहता गाँव। गाँवों का सांस्कृतिक जीवन आज इसी तरह प्रभावित हो रहा है। (23)

6.2.5. शैक्षिक स्थिति

शिक्षा का कार्य है, बच्चे का विकास करना। शिक्षा सभी मनुष्यों का सबसे पहला और आवश्यक अधिकार है। बिना शिक्षा के हम अधूरे हैं, और हमारा जीवन शिक्षा के बिना बेकार है। शिक्षा हमें अपने जीवन में एक लक्ष्य निर्धारित करने और आगे बड़ने के लिए प्रेरित करती है। यह हमारे ज्ञान, कुशलता, आत्मविश्वास और व्यक्तित्व में सुधार करती है। शिक्षा ही हमें दूसरों से बात करने की कला बताती है। हमारी बौद्धिक क्षमता को बढ़ाती है। शिक्षा हमें समाज के बदलते परिवेश में रहना सिखाती है, और शिक्षा ही हमारे सामाजिक विकास, आर्थिक वृद्धि तकनीकी उन्नति का रास्ता है। प्राचीन काल में शिक्षा का बहुत महत्व था। सभ्यता, संस्कृति और शिक्षा का उदय सबसे पहले भारत में माना जाता है। इसी तरह अच्छी शिक्षा के लिए, उस समय बहुत से प्रयास किये गए थे। शिक्षा के क्षेत्र में परिवर्तन लाने के लिए कोठारी आयोग की स्थापना की गई। इस आयोग ने राष्ट्रीय स्तर पर नई योजना लागू करने की सिफारिश की। इस तरह बाद में नवीन शिक्षा प्रणाली को रोजगार को सामने रखकर बनाया गया, जिसके कारण हम लोग अक्सर देखते हैं कि लोग विश्वविद्यालय और महाविद्यालय में भाग तो लेते हैं, लेकिन उनकी पड़ने की रुचि नहीं होती। ऐसे लोग समाज में अनुशासनहीनता और अराजकता पैदा करते हैं। शिक्षा किसी राष्ट्र अथवा समाज की प्रगति का मापदंड है। जो राष्ट्र शिक्षा को अधिक प्रोत्साहन देता है, वह

उतना ही अधिक विकसित होता है। शिक्षा का हमारे जीवन में सबसे प्रमुख महत्व है, हमें पूरा ज्ञान शिक्षा से ही मिलता है।

हमारे यहाँ वर्तमान में शिक्षा का स्वरूप बदल रहा है, जिसने स्कूल में जाकर अपने अध्यापक से किताबें पड़ ली उसको यहाँ शिक्षित समझा जाता है। इसी तरह जिसने स्कूल से आगे कालेज जाकर और अधिक शिक्षा ले ली, वह उतना ही अधिक शिक्षित समझा जाता है। आजकल लोगों का यही मानना है, या कहें किताबी शिक्षित होना, हमारे देश में अधिक आवश्यक माना जाता है। आजकल शिक्षा का अर्थ केवल अच्छी सी नौकरी करना है। प्राचीन काल की शिक्षा आज की शिक्षा से भिन्न थी, आज शिक्षा केवल किताबों तक सीमित है, लेकिन प्राचीन काल में शिक्षा व्यावहारिक थी। गुरुकुल की मर्यादा का पालन किया जाता था, वहाँ रहकर घर छोड़कर ही पहले शिक्षा प्राप्त की जाती थी और गुरु जी तब व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करते थे, लेकिन वर्तमान में ऐसा नहीं है। आज के छात्र के सम्बन्ध पहले जैसे नहीं है। आज गुरु का उतना महत्व नहीं है, जितना पहले समय में होता था। आजकल स्कूलों में बच्चे पहले जैसा अध्यापक से प्रेम नहीं करते हैं।

शिक्षा एक सर्वश्रेष्ठ धन है, जिसे कोई चुरा नहीं सकता यह तो दूसरों को देने से बढ़ता है। इसी तरह आज वर्तमान में भी इसका बहुत महत्व है, आज हमारे समाज में बहुत सी समस्याएँ प्रचलित हैं, जिनका निराकरण केवल शिक्षा और साहित्य ही कर सकता है। जब हमें ज्ञान होगा हमारी आने वाली पीढ़ी को ज्ञान होगा, तो अवश्य ही आज समाज में प्रचलित समस्याओं से छुटकारा पा सकते हैं। शिक्षा को लेकर आज और भी अच्छे कनून बनने चाहिए, तांकि शिक्षा के क्षेत्र में कोई भी गलत कार्य न हो सके, इसका गलत उपयोग न हो। कुछ लोगों ने अपने स्वार्थ के लिए शिक्षा को लिया है, जिससे हमारे समाज में हमें परेशानियों का सामना करना पड़ता है। आज शिक्षा के

क्षेत्र में गुणवता की आवश्यकता है, तांकि इसका सही उपयोग हो सके और हमारा समाज सही दिशा की ओर अग्रसर रहे।

वर्तमान में छात्र के व्यावहारिक अनुभव वह ज्ञान को आधार बनाया जाए। कुछ समय पहले बहुत से लोगों ने शिक्षा को व्यावहारिक रूप देने के लिए, अपनी आवाज उठाई थी, लेकिन इसका असर बहुत कम देखने को मिलता है। लेकिन आज व्यावहारिक शिक्षा की आवश्यकता है, तभी हमारे समाज में प्रचलित समस्याएँ और आने वाली पीढ़ी को व्यावहारिक ज्ञान होगा। इस तरह अच्छे और अनुभवी लोग शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षण कार्य करेंगे, जिससे शिक्षा की गुणवता में सुधार आयेगा। कुछ राजनीतिक नेताओं ने शिक्षा के क्षेत्र में भाई-भतीजावाद को पैदा किया है, जिसका आज बुरा प्रभाव मिलता है। जिन लोगों के पास अनुभव नहीं है, वह अच्छे-अच्छे कर्मचारी हैं और जो लोग अधिक पढ़े-लिखे हैं, वह आज बेरोजगार हैं। शिक्षा ही किसी देश की जागृति का मूल आधार है, शिक्षा का उद्देश्य साक्षरता के साथ-साथ जीवनोपयोगिता भी होना चाहिए।

डॉ. कैलाश वाजपेयी ने अपने निबंध *शब्द संसार* में हमारी शिक्षा नीति को लेकर कहा है - भारतीय शिक्षा प्रणाली हम अच्छी तरह जानते हैं, मुख्य रूप से कागज-कलम ज्ञान उन्मुख हैं। शिक्षित लोगों को हमारे देश के मानव संसाधन के रूप में पैदा करने की प्रक्रिया में शिक्षा का असली अर्थ निश्चित रूप से आज खो गया है। आज भारतीय शिक्षा प्रणाली में व्यावहारिकता और रचनात्मकता की कमी है। जब राजनीति स्कूल में सिखाए गए पाठयक्रम को प्रभावित करती है, तो तब व्यावहारिकता और रचनात्मकता इन दोनों को हासिल करना बहुत ही कठिन कार्य होता है। आज हमारी शिक्षा प्रणाली परम्परागत शैक्षणिक तरीकों में फस गई है, जिसके लिए हमें आज व्यावहारिक होने की आवश्यकता है। (61)

इस तरह हम कह सकते हैं कि वर्तमान निबंधकारों ने हमें ऐसी स्थितियों से निकलने की प्रेरणा दी है, जिसका अध्ययन करके हमें इसको समाज के विकास के लिए उपयोग करना चाहिए। साहित्य और शिक्षा दोनों हमें अपने समय का ज्ञान देते हैं, जिससे हम अपने समाज में अच्छे गुण पैदा कर सकते हैं और अपने जीवन को और भी सुंदर बना सकते हैं। आज वर्तमान दौर में हमें इन बातो को समझना और समझाना है, तांकि हमारी नई पीढ़ी ऐसी समस्याओं से छुटकारा पा सके। जब तक हमारे समाज में समस्याएँ प्रचलित रहेगी तब तक हमारा समाज आगे और पुष्पित और पल्लवित नहीं हो पायेगा, इसलिए हमें एकता के साथ आज कार्य करने की आवश्यकता है। तभी हम अपने समाज को समस्याओं से रहत बना सकते हैं और नई पीढ़ी इसके प्रति प्रगतिशील होगी।

6.2.6. राष्ट्रीय-एकता

राष्ट्रीय एकता एक भावना है, जो किसी राष्ट्र अथवा देश के लोगों में भाई-चारा अथवा राष्ट्र के प्रति प्रेम एवं अपनत्व का भाव प्रदर्शित करती है। राष्ट्रीय एकता राष्ट्र को सशक्त एवं संगठित बनाती है। राष्ट्रीय एकता ही वह भावना है, जो सभी धर्मों, सम्प्रदायों, जाति, वेश-भूषा, सभ्यता एवं संस्कृति के लोगों को एक सूत्र में पिरोए रखती है। समय-समय पर अनेक विभिन्नताओं के चलते हुए भी सभी को परस्पर मेल-जोल में रहना चाहिए, यही राष्ट्रीय एकता है।

इस तरह समय के चलते हुए वर्तमान में बदलाव हुआ है, पहले भक्ति केवल भजन करना ही माना जाता था लेकिन आज आदमी कहता है, हमारे लिए सभ कुछ हमारा देश ही है, राष्ट्र ही है। राष्ट्रीय एकता बनाए रखने के लिए मानव सभी कुछ करना चाहता है कि सभी भाई मिल-जुल कर रहें, हमें अपनी एकता पर गर्व होना चाहिए। हमारा भारतीय देश राष्ट्रीय एकता की एक मिशाल है। जितनी विभिन्नताएं हमारे

देश में उपलब्ध हैं, उतनी शायद ही विश्व के किसी अन्य देश में देखने को मिलें। यहाँ अनेक जातियों एवं सम्प्रदायों के लोग, जिनका रहन-सहन, खान-पान और वेश-भूषा पूर्णतया भिन्न हैं, एक साथ निवास करते हैं। सभी राष्ट्रीय एकता के सूत्र में इसी तरह पिरोए रहें और हमारी यह एकता इसी तरह बनी रहे। समय के साथ बदलाव आ रहा है, जिसमें हमें इस बात का पूर्ण ध्यान रखना होगा और इन बातों को आज समझने-समझाने की आवश्यकता है। वर्तमान के हिन्दी निबंधों में भी राष्ट्रीय एकता की ओर संकेत किया गया है, हम इन निबंधों का अध्ययन करके अपने जीवन में इसी तरह एकता बनाए रखें और हमें अपने भारत पर गर्व होना चाहिए। डॉ. रामदरश मिश्र के निबंधों में राष्ट्रीय एकता हमें देखने को मिलती है। जहाँ कहीं वह विविध प्रसंगों के चित्रण की प्रक्रिया में राष्ट्र और समाज के अनेक प्रश्नों से गुजरते हैं, तो उनकी प्रगतिशील दृष्टि सहज रूप में ही सड़े-गले मूल्यों का निषेध करती है और उनमें नये मनुष्य को प्रस्तावित करने वाले मूल्यों की पक्षधरता दिखाई देती है।

मिश्र ने राष्ट्रीय एकता को नदियाँ के साथ जोड़ कर हमें यह बताया है कि हमें एकता के साथ रहना चाहिए। नदियाँ जब पानी देती हैं तो सभी को देती है, जब सूखा पड़ जाता है, तो सभी को एक समान ही पड़ता है। डॉ. रामदरश मिश्र ने अपने निबंध संग्रह *छोटे छोटे सुख* में संकलित निबंध 'नदियाँ और राष्ट्रीय एकता' में कहा है:

> वह स्थान के साथ-साथ समय की कितनी दूरियों में फैल जाती हैं और तब भविष्य की यह कल्पना करना स्वभाविक हो जाता है कि इस नदी को राष्ट्रीय एकता के अनेक माध्यमों में से एक विशिष्ट माध्यम बनाया जा सकता है। देश के सभी दिशान्तों में तीर्थस्थानों की स्थापना की गई थी, इसलिए की देश के सभी स्थानों के लोगों का संगम होता रहे, उन्हें एक-दूसरे से मिलते-जुलने, समझने-

बूझने का अवसर मिलता रहे और उन्हें यह अनुभव होता रहे कि भाषाओं, रहन-सहन के तरीकों, वेश-भूषा, खान-पान की अनेकता के बावजूद वे सभी एक हैं, पूरा देश एक है। (58)

जब तक किसी राष्ट्र की एकता सशक्त है, तब तक वह राष्ट्र भी सशक्त है। जब राष्ट्रीय एकता खंडित होती है, तब उसे अनेक कठिनाइयों से जूझना पड़ता है। यदि हम अपने ही इतिहास को पलट कर देखें तो यह पाते हैं कि जब-जब हमारी राष्ट्रीय एकता कमजोर पड़ी है, तब-तब विरोधी शक्तियों ने उसका लाभ उठाया है और हमें अनेक अधीन रहना पड़ा है। किसी भी राष्ट्र की एकता, अखंडता वह सर्वभौमिकता बनाए रखने के लिए राष्ट्रीय एकता का होना अनिवार्य है। भारत जैसे विकासशील देश के लिए जो वर्षों तक दासत्व का शिकार रहा है। वहाँ राष्ट्रीय एकता की संपूर्ण कड़ी का मजबूत होना अति आवश्यक है, तांकि भविष्य में ऐसा कभी न हो सके।

हमारे देश की कुछ ऐसी महान नदियाँ हैं, जो युगों से राष्ट्रीय एकता की सृष्टि करती आ रही हैं। गंगा, यमुना, सरयू, नर्मदा, गोदावरी, कावेरी आदि को रेखांकित किया जा सकता है। इनमें गंगा का तो विशेष महत्व है। हमारे पूर्वजों ने प्रयत्न किया है कि देश के विविध क्षेत्र में बहती नदियों को विशेष धार्मिक सम्मान देकर उनके माध्यम से देश की सभी दिशाओं की जनता को जोड़ा जाए। उतर वाले दक्षिण जाएँ, दक्षिण वाले उतर जाएँ, पूरब वाले पश्चिम जाएँ, पश्चिम वाले पूरब जाएँ। यहाँ यह काम नदियों से संभव नहीं हो सका है, वहाँ अन्य तीर्थ माध्यमों से संभव करने का प्रयत्न किया गया है। नदियों का महत्व यातायात के लिए भी रहा है और व्यापार के लिए भी। व्यापारिक सुविधा के कारण ही बड़े-बड़े शहर नदियों के किनारे बसे और विकसित हुए, किन्तु इससे भी बड़ी बात यह है कि हमारे कृषि प्रधान देशों में नदियाँ गाँवों के जीवनोत्कर्ष में बहुत बड़ी भूमिका निभाती हैं। वह तरह-तरह की फसलों में,

नहाने-धोने में, पर्व-त्यौहारों में, गीतों में समाई रहती हैं। इस तरह हम यह कह सकते हैं कि भारतीय नदियाँ एकता का महत्वपूर्ण प्रतीक हैं। हमें इनसे यह आज्ञा लेनी चाहिए कि हमें ऐसे ही एकता बनाये रखनी चाहिए, तांकि आने वाले समय में भी हमारी पहचान इसी तरह बनी रहे।

जनसंख्या की दृष्टि से भारत का संसार में दूसरा स्थान है। भारत में हिन्दू, सिक्ख, इसाई, मुसलमान, पारसी और बौद्ध धर्म आदि सभी धर्मों और सम्प्रदायों के लोग रहते हैं। सभी लोग भारत को राष्ट्र कहने में गौरव का अनुभव करते हैं। भारत देश किसी भी एक धर्म, जाति, वंश या सम्प्रदाय का देश नहीं है। भारत में आचार-विचार, रहन-सहन और भाषा धर्म आदि सभी विभिन्नताओं का होना स्वभाविक है। इन विभिन्नताओं में अनेकता में एकता के दर्शन भारत की सर्वप्रमुख विशेषता है। इसी विशेषता और समन्वय की भावना के कारण आज भारतीय संस्कृति अमर बन गई है। जब किसी उद्देश्य को पूरा करने के लिए बहुत से लोग एक साथ मिलकर कार्य करते हैं, तो उसे संगठन कहते हैं। संगठन ही सभी शक्तियों की जड़ होता है। एकता एक महान शक्ति है, इसी के बल पर अनेक राष्ट्रों का निर्माण हुआ है। सभी लोगों के पूजा स्थल उपासना अलग होते हुए भी सभी लोग एक ही ईश्वर की पूजा करते हैं।

श्यामसुन्दर दुबे के निबंध *जहाँ देवता सोते हैं* के अनुसार –“राष्ट्रीय एकता हमारे जीवन को एक नई दिशा और दशा प्राप्त कराती है, एकता के साथ हम अपने जीवन में सभी के साथ मिलजुल कर अच्छे कार्य कर सकते हैं।”(50) वर्तमान निबंधों में भी हमें यही देखने को मिलता है कि हमें एकता के साथ रहना चाहिए। डॉ. रामदरश मिश्र के निबंध ‘नदियाँ और राष्ट्रीय एकता’ में उन्होंने कहा है:

गंगा नदी को हिन्दू माँ मानते हैं, किन्तु इसका अर्थ यह तो नहीं मुसलमान या इसाई या किसी और जाति के लिए गंगा का अस्तित्व ही नहीं है। गंगा सभी को समान भाव से पानी देती है, वह उसमें समान भाव से नहाते हैं, नाव चलाते हैं, उसके पानी से अपने खेतों की सिंचाई करते हैं। उसके पानी से निर्मित बिजली हर एक घर में पहुँचती है। उसके द्वारा स्वच्छ- मुक्त वातावरण सबके लिए होता है। गंगा जब कुपित होती है, तो वह यह नहीं देखती कि यह खेत हिन्दू का है, या मुसलमान का, या किसी और जाति के लोगों का, सबको समान भाव से निगल जाती है। यानी उसका क्रोध और प्यार सबके लिए एक जैसा है, जिसके माध्यम से हम एकता की अनुभूति कर सकते हैं। (60)

हमारे भारत देश में विभिन्न प्रकार की भाषाएँ हिन्दी, इंग्लिश, मराठी, उर्दू, पंजाबी, बंगाली, और भी कई क्षेत्रीय भाषाएँ बोली जाती हैं। यहाँ पर हर दूसरे राज्य में अलग भाषा बोली जाती है। कहीं-कहीं पर तो एक ही राज्य में कई प्रकार की भाषा बोली जाती है। यही बात हमारी एकता को दर्शाती है। हमारे यहाँ प्रत्येक राज्य में हर दिन कोई ना कोई त्यौहार आवश्यक होता ही है। जिसको सभी धर्मों और जातियों के लोग मिलजुल कर धूमधाम से मनाते हैं। लेकिन समय के दौर के साथ कुछ परिवर्तन आ चुके हैं। वर्तमान में इन बातों पर चर्चा की आवश्यकता है। हम अपनी संस्कृति और एकता को भूलते जा रहें हैं। कुछ कारण है जो वर्तमान समय को प्रभावित कर रहे हैं। जिसका हमारे जीवन और समाज पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है।

वर्तमान में हमारी एकता को कुछ पहलुओं ने प्रभावित किया है। प्राचीन समय में हमें अपनी एकता पर गर्व होता था, यही बात हमें अन्य देशों से भिन्न करती है और लोग हमारी एकता को देखने के लिए प्रसन्न हुआ करते थे। लेकिन आधुनिक समय में कुछ लोगों ने अपने स्वार्थ के लिए हमारी एकता को नष्ट किया है।

एकता को खतरा

अंग्रेजों ने भारत में एकछत्र राज्य करने के लिए, सबसे पहले यहाँ की एकता पर प्रहार किया, क्योंकि कोई भी शासक अपना प्रभुत्व जमाने के लिए दूसरों में एकता नहीं चाहता। इसलिए अंग्रेजों ने 'फूट डालो राज करो' की प्रबल नीति अपनाई, जिसके कारण वह सैंकड़ों वर्षों तक भारत में सशक्त शासक बने रहे। जिसका परिणाम यह हुआ कि भारत में धर्मों वह जातियों तथा वर्गों के आधार पर कलह दंगे भड़कते रहते हैं। वे कभी किसी एक धर्म के लोगों को संरक्षण देते और दूसरे को तंग करते तो कभी दूसरे धर्मों के लोगों को प्रोत्साहित करते, जिससे जनता परस्पर लड़ती रहे। भारत का विभाजन होना अंग्रेजो की नीति थी, इस तरह उन्होंने हमारी एकता और अखंडता को तोडा था। आज के समय में भारत में सम्प्रदायिक दंगे होते रहते हैं। एक धर्म के लोग दूसरे धर्म के लोगों से लड़ते रहते हैं। देश में कई जगह पर वर्ग संघर्ष छिड़ा रहता है।

वर्तमान समय में आरक्षण और अनारक्षण पर लड़ाई-झगड़ा चलता रहता है। भाषा के आधार पर भी कई जगह झगड़ा होता रहता है। दक्षिण में हिन्दी के विरोध में सरकारी संपति को क्षति पहुँचाई जाती है। उतर भारत में अंग्रेजी का प्रबल विरोध है। कहीं पर उर्दू का विरोध हुआ, तो कहीं पर हिन्दी का, इस तरह राष्ट्रीय एकता खतरे में पड़ी है। राष्ट्रीय अखंडता भी विगत दशकों से संकट में पड़ी है। कुछ आतंकवादी अलग जगह चाहते हैं। कश्मीर के आतंकवादी कश्मीर की मांग कर रहे हैं। कुछ समय से अब पूरे भारत में हिन्दू आतंकवाद ने भी अपने पूरे पैर फैलाकर हमारी सरकार को परेशान कर दिया है। इस तरह कतिपय स्वार्थी तत्व भारत को छिन्न-छिन्न कर देना चाहते हैं। इस संदर्भ में राम प्रसाद किचलू ने अपनी पुस्तक *आधुनिक निबंध* में कहा है:

प्रश्न यह है कि आखिर जम्मू-कश्मीर की समस्या का वर्तमान स्थितियों में क्या समाधान हो सकता है। इस सम्बन्ध में एक दो बातें कही जा सकती हैं। हमारे देश में ऐसे स्वप्रदर्शियों की कमी नहीं है, जो भारत पाकिस्तान और बंगला देश को मिला कर एक महासंघ बनाने की बात करते हैं। और यह निरा स्वप्न भी नहीं है। कैबिनेट मिशन ने भी, जिसके प्रस्तावों के आधार पर भारत का विभाजन हुआ, कश्मीर को लेकर ऐसे महासंघ की बात उठाई थी। आगे के वर्षों में जब सुरक्षा परिषद में जाकर जम्मू-कश्मीर का मामला सुलझता गया तब पंडित नेहरू को भी लगने लगा था कि भारत, कश्मीर, पूर्वी और पश्चिमी पाकिस्तान को मिलाकर एक महासंघ बना लेना ही इस उप महाद्वीप के झगड़ों का आदर्श समाधान है। (335)

भेदभाव के कारण

देश और राष्ट्र में अंतर होता है। देश का सम्बन्ध सीमाओं से होता है, क्योंकि देश एक निश्चित सीमा से घिरा हुआ होता है। राष्ट्र का सम्बन्ध भावनाओं से होता है, क्योंकि एक राष्ट्र का निर्माण देश के लोगों की भावनाओं से होता है। जब तक किसी देश के वासियों की विचारधारा एक नहीं होती, तब तक वह राष्ट्र कहलाने का हकदार नहीं होता। हमारे यहाँ आज तक शासकों ने अपने स्वार्थों की वजह से इस देश को राष्ट्र नहीं बनने दिया है। आज राजनैतिक नेताओं ने अपनी दलगत राजनीति की वजह से देश को राष्ट्र बनाने में बाधा उत्पन्न की है। वोट प्राप्त करने के लिए सभी धर्मों, जातियों और भाषाओं की संकीर्ण धाराओं में बाँट दिया है। अभी देश के नेताओं, अधिकारी व जनता में राष्ट्रीय भावना जाग्रत नहीं हुई है। वे पहले कोई ओर होते हैं, बाद में भारतीय होते हैं। जब कोई भी व्यक्ति सत्ता में आता है, तो वह अपने वहाँ के

वर्ग का समर्थन करते हुए दिखाई देता है। वोटों की राजनीति सभी धर्मों को लड़ाने का काम करती है।

इसी कारण से नेताओं की तुष्टिकरण की नीति देश को राष्ट्र बनाने से रोक रही है। आज देश के लोग ही संविधान के प्रति जल रहे हैं। कहीं-कहीं पर राष्ट्र ध्वज को जलाने और उसे फाड़ने के समाचारों को भी सुना जाता है। जब राष्ट्रीय गीत गाया जाता है, उस समय खड़े ना रहना एक साधारण सी बात बन गई है। इन सभी गलतियों के लिए दंडों को निर्धारित किया गया है, लेकिन दंड दिया नहीं जाता है। यही है नेताओं की तुष्टिकरण की नीति। इसी वजह से देशद्रोहियों को अक्सर बढ़ावा मिलता है। आज के समय में देश में देश-द्रोहियों, राजनेताओं को बहुत अधिक प्रोत्साहन मिलता है। इसी वजह से सभी में राष्ट्रीय भावना का आभाव बढ़ता ही जा रहा है। जिसकी वजह से देश की एकता और अखंडता खतरे में पड़ रही है। देश में भृष्टाचार, बेईमानी, अनाचार, धोखाधड़ी उच्च स्तर पर छाए हुए हैं।

स्वतंत्रता प्राप्त होने के बाद ही देश में अनेक समस्याएँ उत्पन्न होती रही हैं। इन समस्याओं में से साम्प्रदायिक की समस्या सबसे प्रमुख समस्या है। हमारे देश का विभाजन भी इसी समस्या के आधार पर ही हुआ है। कुछ स्वार्थी लोगों ने हमारे देश में साम्प्रदायिकता की भावना को फैला दिया था। जिसकी वजह से हम आज तक उससे मुक्त नहीं हो पाए हैं। भगवत शरण उपाध्याय अपनी पुस्तक *भारतीय संस्कृति के स्त्रोत* में कहते हैं- "हमें अपनी स्वतंत्रता की रक्षा के लिए और प्रगति के लिए राष्ट्रीय एकता पर विशेष ध्यान देना चाहिए।(36) हर वर्ग में एकता के बिना कोई भी देश उन्नति नहीं कर सकता। वर्तमान समय में देश में अनुशासन और आपसी वातावरण की बहुत जरूरत है। हमें सभी को मिलजुल कर इस पर विचार करना चाहिए।

दूषित राजनीति

कुछ सालों से हमारे देश का वातावरण दूषित राजनीति की वजह से विषैला होता जा रहा है। धर्म में अन्धे होने के कारण लोग आपस में झगड़ रहे हैं। अपने-अपने स्वार्थों की पूर्ती में लगे हुए लोग, आपसी प्रेम को निरंतर भूलते जा रहे हैं। स्वार्थ की भावनाओं, प्रांतीयता एवं भाषावाद की वजह से राष्ट्रीय भावना बहुत प्रभावित हो रही है। हमारे देश के लोगों में संकीर्णता की भावना पनप रही है और व्यापक दृष्टिकोण लुप्त होता जा रहा है। इसी वजह से विश्व बंधुत्व की भावना अपने परिवार तक ही सीमत रह गई है। अगर कोई कोशिश भी करता है, तो वह प्रदेश स्तर तक जाकर ही असफल हो जाता है। इसी के फलस्वरूप सम्प्रदायिक ताकतें मजबूत होती जा रही हैं।

जम्मू-कश्मीर, असम आदि प्रदेशों में नरसंहार के किस्से सुनने को मिलते हैं। इन सब के लिए स्वार्थ नेता जिम्मेदार हैं, जो अपना उल्लू सीधा करने के लिए देश को दाँव पर लगा रहे हैं। अनेक प्रकार की विषमताओं के होते हुए भी जब हम राष्ट्रीय एकता के बारे में सोचते हैं, तो हमें पता चलता है कि इस राष्ट्रीय एकता की वजह से धार्मिक भावना, आध्यात्मिकता, समन्वय की भावना, दार्शनिक दृष्टिकोण, साहित्य, संगीत और नृत्य आदि ऐसे अनेक तत्व हैं, जो देश को एकता के सूत्र में बांधे हुए हैं। सिर्फ जनता को एकजुट होकर कोशिश करने की जरूरत है। आज के समय में राष्ट्रीय एकता के लिए व्यक्तिगत और सार्वजनिक संपति की सुरक्षा का प्रबंध करना जरूरी है। शत्रुपक्ष पर कठोर दंडनीति लागू की जानी चाहिए। पुलिस की गतिविधियों पर भी नियंत्रण रखना चाहिए। आज के समय में सभी संगठनों को मिलजुल कर राष्ट्रीय एकता के लिए कोशिश करनी चाहिए। हमारी स्वतंत्रता राष्ट्रीय एकता पर निर्भर करती है। इसी तरह सभी को एकजुट होकर राष्ट्रीय एकता के लिए काम करने की

वर्तमान में आवश्यकता है। एकता होगी तो हमारी आने वाली पीढ़ी अपना जीवन अच्छे ढंग से बतीत कर सकती है।

भारतीय संस्कृति और सभ्यता

भारतीय संस्कृति भावात्मक एकता का आधार है, लेकिन बहुत बार राजनीतिक स्वार्थ, अस्पर्श्यता, सम्प्रदायिक तनाव, भाषा भेद, क्षेत्रीय मोह तथा जातिवाद आदि की संकीर्णता की भावनाओं से प्रबल होने पर, हमारी भावात्मक एकता को खतरा पैदा हो जाता है। कुछ लोग वर्तमान में नेताओं से गुमराह होकर अपने छोटे-छोटे स्वार्थों के लिए अपने अलग-अलग रास्ते मांगने लगते हैं। राजनीतिक दलबंदी में आकर उनके यह स्वार्थ कई बार बहुत भयंकर रूप धारण कर लेते हैं। राष्ट्रीय एकता के लिए भावात्मक एकता का होना बहुत आवश्यक है। वर्तमान में हमें सभी लोगों को एकसाथ मिलजुल कर राष्ट्रीय एकता के लिए विचार-विमर्श करने की बहुत आवश्यकता है।

वर्तमान में भावात्मक एकता के लिए भारत सरकार को अच्छे कदम उठाने की जरूरत है। जिससे आने वाले समय में इन समस्याओं से बचा जा सके और हम एक अच्छे राष्ट्र पर वैसे ही गर्व महसूस करें जैसे प्राचीन काल में हमें अपनी राष्ट्रीय एकता पर गर्व था। वर्तमान में भारतीय सरकार को भावात्मक एकता के लिए राष्ट्रीय शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिए। चल-चित्र, दूरदर्शन, सोशल-नेटवर्क आज के समय में राष्ट्रीय एकता के लिए महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर सकते हैं। सामूहिक खेल-कूद, सांस्कृतिक कार्यक्रम तथा धार्मिक और शैक्षिक यात्राएँ भी राष्ट्रीय एकता के लिए सहायक हो सकती हैं। आधुनिक निबंधों में भी लेखकों ने एकता के लिए अपनी लेखनी में विचार व्यक्त किये हैं, जिससे हम इनका अध्ययन करके आने वाले समय में इन

समस्याओं से बच सकते हैं। डॉ. रामदरश मिश्र के निबंध संग्रह *छोटे-छोटे सुख* में संकलित निबंध 'नदियाँ और राष्ट्रीय एकता' में उनका एक उदाहरण व्यक्त है:

> कवियों और लेखकों की कृतियों में नदियाँ प्यार और एकता का सम्बन्ध दर्शाती हैं। फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यासों में कोसी नदी है, वह नदी नहीं है, प्यार-दुलार और ममता से भरी एक दैवी व्यक्तित्व है, जो अपने क्षेत्र के लोगों के दुःख-सुख में साथ है। सर्वेश्वर जीवन के कितने वर्ष दिल्ली और इलाहाबाद में बिताने के बावजूद यदि किसी नदी का नाम लेते हैं तो 'कुआनो नदी' यानि उनके घर-गाँव की नदी। अमृतलाल नागर के उपन्यासों में उनकी गोमती आती है। भवानी प्रसाद मिश्र बार-बार नर्मदा को याद करते हैं। विवेकी राय के उपन्यास में गंगा नदी है, किन्तु वह उनके घर-गाँव की गंगा है, जो उनके दुःख-सुख में गहरी जुड़ी हुई है। (62)

हृदय परिवर्तन और सद्भावना वातावरण बनाने की बहुत जरूरत है। वास्तव में पूछा जाये तो सभी धर्म एक है, पूजा की विधियाँ भिन्न-भिन्न हैं। इसी भिन्नता की वजह से एक ही धर्म के भिन्न-भिन्न रूप होते हैं। हमारे देश में धर्म के नाम पर कुछ लोग स्वार्थ की पूर्ति करने के लिए, अनेक लोगों की शक्ति का दुरपयोग करके राष्ट्रीय भावना का हनन कर रहे हैं। इस तरह निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि किसी भी देश की रक्षा और प्रगति, देश की एकता और अखंडता पर निर्भर करती है। हमारे देश में जब तक उच्च स्तर पर राष्ट्रीय भावना नहीं आती, तब तक राष्ट्रीय एकता भी नहीं आती। भारत देश को सबल बनाने के लिए साम्प्रदायिक सद्भाव बनाये रखने की जरूरत है। हमें यह बात अच्छे से पता है, प्रेम से प्रेम और नफरत से नफरत उत्पन्न होती है। हमारा रास्ता प्रेम और अहिंसा का होना चाहिए। नफरत और हिंसा सब तरह की बुराइयों की जड़ होती है। सभी धर्मों में सत्य, प्रेम, समता, सदाचार और

नैतिकता का पाठ विस्मरण होता है। प्रार्थना और आराधना की पद्धति अलग हो सकती है, लेकिन उनके लक्ष्य एक ही होते हैं। मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे, और चर्चा सभी धार्मिक सथल एक ही संदेश देते हैं। इसी तरह हम सभी लोगों को चाहिए, हम एकता के लिए साथ मिलजुल कर कार्य करें, तांकि हमारी भारतीय एकता वैसी ही बनी रहे, जैसे पुरातन समय में थी। हमें आज भी वैसे ही अपनी संस्कृति और सभ्यता पर गर्व होना चाहिए, जो बात हमें अन्य देशों से अलग करती है। इस तरह हमें वर्तमान निबंधों में भी अध्ययन करने पर यही शिक्षा मिलती है कि हमें राष्ट्रीय एकता बनाई रखनी चाहिए। एकता हमारी संस्कृति को पुष्पित और पल्लवित बनाने में अपना विशेष योगदान देती है।

निष्कर्ष

प्रत्येक मनुष्य का जीवन तथा व्यवहार उसके सामाजिक परिवेश तथा उनसे प्राप्त नैतिक, भावात्मक, परम्परागत संस्कारों पर आधारित रहता है। यह आदान-प्रदान एक पक्षीय नहीं है। प्रत्येक मानव का जीवन यहाँ समाज में प्रचलित मान्यताओं, विश्वासों, त्यौहारों एवं जीवन दर्शन से नियंत्रित होता है, वहाँ साथ ही प्रत्येक अपने व्यक्तित्व व्यवहार एवं सहानुभूति से उन परम्परागत संस्कारों को चालित तथा परिवर्तित करता हुआ, समाज के लिए नए तथा उन्नत आदर्शों को प्रतिष्ठापित करता है। शोध प्रविधियों की सहायता से प्रस्तुत अध्याय में वर्तमान हिंदी निबंधों का अध्ययन करते हुए, नवीन निष्कर्षों को प्राप्त किया है, जो हमारे शोध के सभी उद्देश्य को भी पूरा करते हैं।

आज वर्तमान में हमारे सांस्कृतिक मूल्य बदल रहे हैं, जिन पर इस अध्याय में विशेष रूप से चर्चा की गई है। हमारे जीवन के तहस-नहस होते मूल्यों को यहाँ बताया गया है। साथ ही आज जो बिंदु हमारे जीवन को प्रभावित करते हैं, उनको

यहाँ विवेचित किया गया है। वर्तमान में हमें इनसे बचने के लिए जो आवश्यक गुण है, वह भी बताये गये हैं। जिनका उपयोग कर अपने जीवन में इनको अपनाकर अपना सांस्कृतिक विकास कर सकते हैं। 21वीं सदी के निबंधों की सबसे उल्लेखनीय विशेषता उनमें अंतर्निहित मानवी मूल्य है। हिन्दी निबंधों में ऐसे ही मानवीय मूल्यों के दर्शन होते हैं। जो समाज को एक नई दिशा दिखाने के लिए सार्थक सिद्ध होते हैं। मौलिक उन्नति और उपलब्धि के इस युग में मनुष्य की भौतिक सुखों के प्रति चेतना प्रबल हुई है। अधिकाधिक सुख की इच्छा, धन व पद की लिप्सा, दूसरों से आगे जाने की स्पर्धा, दूसरों से अधिक धनवान बनने की प्रबल इच्छा, सम्पन्न दिखाने की प्रबल इच्छा ने धीरे-धीरे मनुष्य को मनुष्य से दूर कर दिया।

सप्तम अध्याय

21वीं सदी के हिन्दी निबंधों में सांस्कृतिक चेतना : व्यावहारिक पक्ष

7.1. राष्ट्रीय एकता का व्यावहारिक अध्ययन

7.2. देश भक्ति का व्यावहारिक अध्ययन

7.3. धर्म और धर्मनिरपेक्षता का व्यावहारिक अध्ययन

7.4. अन्धविश्वास और दान का व्यावहारिक अध्ययन

7.5. त्यौहार एवं दया भावना का व्यावहारिक अध्ययन

7.6. पारिवारिक संबंध और नारी की स्थिति का व्यावहारिक अध्ययन

7.7. जीवनमूल्य, बाजारवाद एवं पर्यावरण का व्यावहारिक अध्ययन

7.8. वर्तमान राजनीतिक दशा का व्यावहारिक अध्ययन

7.9. लोकगीत और लोकपरम्पराओं का व्यावहारिक अध्ययन

7.10. वर्तमान सांस्कृतिक जीवन का व्यावहारिक अध्ययन

निष्कर्ष

7.1. राष्ट्रीय एकता का व्यावहारिक अध्ययन

भारत एक ऐसा देश है, जहाँ लोग विभिन्न धर्म, क्षेत्र, संस्कृति, परंपरा, जाति, रंग और पंथ के लोग एक साथ रहते हैं। भारत अपनी विविधता में एकता के लिए प्रसिद्ध है। भारत देश राष्ट्रीय एकता का ही मिशाल है। राष्ट्रीय एकता ही वह भावना है, जो विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों, जाति, वेश-भूषा, सभ्यता एवं संस्कृति के लोगों को एक सूत्र में पिरोए रखती है। हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि हम चाहे जिस क्षेत्र, प्रांत, जाति या समुदाय के हैं, परन्तु उससे पूर्व हम भारतीय नागरिक हैं। हम एक थे, एक हैं, और सदा एक ही बने रहेंगें, जैसे-जैसे यह विश्वास दृढ़ होता जाएगा, हमारी राष्ट्रीय एकता मजबूत होती जाएगी। यह हमारे देश की राष्ट्रीय एकता की भावना ही थी, जिसने हमें एक साथ लाकर हमारे देश के आजादी के लिए अंग्रेजी हुकूमत से लड़ने के लिए एक किया। हम अपने देश में भले ही पंजाबी, गुजरती, मराठी या बिहारी के नाम से जाने जाते हैं, लेकिन एक बार जब हम अपने देश से बाहर जाते हैं, तो वहाँ हमें सिर्फ एक भारतीय के रूप में जाना जाता है। इस प्रकार से हम यही कह सकते हैं, हमें हमारी मजबूत अंतर्राष्ट्रीय छवि को प्रस्तुत करने के लिए हममें राष्ट्रीय एकता का होना बहुत ही आवश्यक है। किसी भी देश के लोगों को यह कदापि नहीं भूलना चाहिए कि देश रहेगा तभी तो उस राष्ट्र में धर्म, जाति, समाज और वर्ग का अस्तित्व भी रहेगा। एक मजबूत राष्ट्र के लिए राष्ट्रीय एकीकरण या लोगों के अंदर एकता की भावना होना बहुत जरूरी है।

डॉ. रामदरश मिश्र के निबंधों में राष्ट्रीय एकता हमें देखने को मिलती है। जहाँ कहीं वह विविध प्रसंगों के चित्रण की प्रक्रिया में राष्ट्र और समाज के अनेक प्रश्नों से गुजरते हैं, तो उनकी प्रगतिशील दृष्टि सहज रूप में ही सड़े-गले मूल्यों का निषेध करती है और उनमें नये मनुष्य को प्रस्तावित करने वाले मूल्यों की पक्षधरता दिखाई देती है। रामदरश मिश्र ने राष्ट्रीय एकता को नदियाँ के साथ जोड़ कर हमें यह बताया

है कि हमें एकता के साथ रहना चाहिए। नदियाँ जब पानी देती हैं, तो सभी को देती है, जब सूखा पड़ जाता है, तो सभी को एक समान ही पड़ता है। डॉ. रामदरश मिश्र ने अपने निबंध संग्रह *छोटे छोटे सुख* में संकलित निबंध 'नदियाँ और राष्ट्रीय एकता' में कहा है:

> वह स्थान के साथ-साथ समय की कितनी दूरियों में फैल जाती हैं और तब भविष्य की यह कल्पना करना स्वभाविक हो जाता है कि इस नदी को राष्ट्रीय एकता के अनेक माध्यमों में से एक विशिष्ट माध्यम बनाया जा सकता है। देश के सभी दिशान्तों में तीर्थस्थानों की स्थापना की गई थी, इसलिए की देश के सभी स्थानों के लोगों का संगम होता रहे, उन्हें एक-दूसरे से मिलते-जुलने, समझने-बूझने का अवसर मिलता रहे और उन्हें यह अनुभव होता रहे कि भाषाओं, रहन-सहन के तरीकों, वेश-भूषा, खान-पान की अनेकता के बावजूद वे सभी एक हैं, पूरा देश एक है। (58)

राष्ट्रीय एकता पर व्यावहारिक दृष्टि से अध्ययन करते हुए मैंने सबसे पहले एक प्रिंसिपल एवं अध्यापक सुनील कुमार से बात-चीत करते हुए निम्न प्रश्नों को प्रस्तुत किया:

राष्ट्रीय एकता हमारे राष्ट्र को सशक्त एवं संगठित कैसे बनाती है ?

1. राष्ट्रीय एकता ही वह भावना है, जो विभिन्न धर्मों, जातियों एवं संस्कृति और सभ्यता के लोगों को एक सूत्र में पिरोय रखती है। एकता से ही हम अनेक विभिन्नताओं के कारण भी सभी परस्पर मेल-जोल से रहते हैं। हमारा भारतीय देश एकता की बहुत बड़ी मिशाल है। जब तक हमारी एकता सशक्त, है तभी तक हमारा राष्ट्र सशक्त है।

2. एकता में अन्य शक्तियाँ हमारी अखंडता व सार्वभौमिकता पर प्रभाव नहीं डाल पाती हैं, परन्तु जब-जब हमारी एकता खंडित होगी, तब-तब हमें अनेक कठिनाईयों से जूझना आवश्य पड़ेगा। अगर हम अपने इतिहास के पन्नों को पलट कर देखें तो हम यही पाते हैं, जब-जब हमरी राष्ट्रीय एकता कमजोर पड़ी है, तब-तब बाह्य शक्तियों ने इसका लाभ उठाया है और हमें अधीन रहना पड़ा है। किसी भी राष्ट्र में एकता, अखंडता एवं सार्वभौमिकता बनाए रखने के लिए राष्ट्रीय एकता का होना अनिवार्य है।

हमारी राष्ट्रीय एकता के अवरोधक एवं एकता को कमजोर करने वाले बाधक तत्व कौन हैं ?

1. देश में व्याप्त सांप्रदायिकता, जातिवाद, भाषावाद, क्षेत्रीयता आदि सभी राष्ट्रीय एकता के अवरोधक तत्व हैं। ये सभी अवरोधक तत्व हमारी एकता की कड़ी को कमजोर बनाते हैं। इन अवरोधक तत्वों के प्रभाव से ग्रसित लोगों की मानसिकता क्षुद्र होती है, जो निजी स्वार्थ के चलते स्वयं को राष्ट्र से अलग रखते हैं, तथा अपने संपर्क में आने वाले अन्य लोगों को भी उकसाते हैं।

2. ऐसे विघटनकारी तत्वों की संख्या जब और अधिक होने लगती है, तब यह पूर्ण अलगाव के लिए प्रयास करते हैं। ये विभिन्नताएँ जो हमारी संस्कृति का गौरव हैं, जब यह उग्र रूप धारण करती हैं, तब यह हमारी एकता और अखंडता की बाधक बन जाती हैं।

भविष्य में राष्ट्रीय एकता व इसकी अक्षुण्णता बनाये रखने के लिए क्या आवश्यक है ?

1. राष्ट्रीय एकता के तत्वों; जैसे हमारी राष्ट्रभाषा, संविधान, राष्ट्रीय चिह्नों, राष्ट्रीय पर्व व सामाजिक समानता तथा उसकी उत्कृष्टता पर विशेष ध्यान दें। सच्चे

देशभक्तों की महान गाथाओं को प्रस्तुत करें जिन्होंने राष्ट्र की स्वतंत्रता व सार्वभौमिकता बनाये रखने के लिए अपने प्राण तक न्यौछावर कर दिए।

2. हमारी राष्ट्रीय एकता को संबल प्रदान करने वाले तत्वों की कमी नहीं है, बस आज हमें यह आवश्यकता है कि इन्हीं तत्वों को समय-समय पर हम अपने जीवन में आत्मसात करें। राष्ट्रीय दिवसों पर या संगोष्ठियों में विचार-विमर्श आदि के माध्यम से एकता को बल मिलता है।

राष्ट्रीय एकता के लिए शिक्षा में कौन से कार्यक्रम होने चाहिए ?

1. प्राथमिक स्तर बाल-दिवस, शिक्षक दिवस तथा महापुरुषों के जन्म दिवस मनाये जाएँ और महान व्यक्तियों के जीवन से बच्चों को परिचित कराया जाये।

2. माध्यमिक स्तर- बालकों को भारत के आर्थिक विकास का ज्ञान कराकर उनमें राष्ट्रीय चेतना विकसित की जाये और राष्ट्रीयता के सम्बन्ध में महापुरुषों के व्याख्यान कराये जायें।

प्रिंसिपल एवं अध्यापक सुनील कुमार

गवर्नमेंट हाई स्कूल (चक बुधो के)

जिला- फाज़िल्का

मो. 9532600002

दिनांक 25 अप्रल 2019. समय 10 AM

इसके उपरान्त इसी स्कूल के अध्यापक जगमीत सिंह से साक्षात्कार करते हुए निम्न प्रश्नों पर बात की

वर्तमान में राष्ट्रीय एकता का क्या महत्व है ?

1. हमारे देश में अगर हम राष्ट्रीय एकता के महत्व को समझ जायें तो किसी प्रकार का सांप्रदायिक दंगा नहीं होगा।

2. किसी भी जाति या धर्म से संबंध रखने से पहले हम भारतीय हैं, यह राष्ट्रीय एकता की भावना है और इसका महत्व अगर हम समझ जायें तो सालों से जो विवाद चल रहें हैं, उनका कोई महत्व नहीं रह रह जायेगा।

3. हम सभी एक हैं, हमें एकजुट होकर ही रहना चाहिए। यह हमें सभी को सदैव स्मरण रखना चाहिए, क्योंकि विरोधी शक्तियाँ इसका लाभ उठाने में देर नहीं करते हैं।

4. राष्ट्रीय एकता की भावना निहित होने पर देश कम सैन्य शक्ति में भी विजय प्राप्त कर सकता है।

अध्यापक जगमीत सिंह

गवर्नमेंट हाई स्कूल (चक बुधो के)

जिला- फाज़िल्का

मो. 9463172552

दिनांक 25 अप्रल 2019. समय 11 AM

7.2. देश भक्ति का व्यावहारिक अध्ययन

देश भक्ति को अपने देश के प्रति प्रेम और वफादारी के द्वारा परिभाषित किया जा सकता है। जो लोग अपने देश की सेवा के लिए अपना जीवन समर्पित कर देते हैं, ऐसे

लोगों को देश भक्त कहा जाता है। देश भक्ति की भावना हमें एक-दूसरे के करीब लाती है। हमें देश के साथ-साथ वहां रहने वाले लोगों के विकास के लिए भी बढ़ावा देना चाहिए। किसी भी व्यक्ति का देश के प्रति अमूल्य प्रेम और भक्ति, देशभक्ति की भावना को परिभाषित करती है। जो लोग सच्चे देशभक्त होते हैं, वह अपने देश के निर्माण और देश के प्रति कुछ भी कर सकते हैं। देशभक्ति का अर्थ यही होता है कि अपने देश के प्रति प्रेम, देश के प्रति हित होना, उसके विकास के लिए पूर्ण योगदान देना, और जरूरत पड़ने पर देश के लिए बलिदान देना। बहुत से लोग यह सोचते हैं, देश के प्रति अपने प्राण त्यागना ही देश भक्ति है, लेकिन इसका अर्थ यह कदापि नहीं है, बल्कि इसका अर्थ यह है कि हर संभव तरीके से देश के विकास के लिए एवं सुधार के प्रति अपना योगदान देना तथा आवश्यकता पड़ने पर देश के लिए अपने प्राणों का बलिदान देना। वर्तमान के हिन्दी निबंधों में भी ऐसी समस्याओं को निबंधकारों ने प्रस्तुत किया है। जिससे हमें वर्तमान स्थिति का पता चलता है। डॉ. श्रीराम परिहार के निबंध संग्रह *परंपरा का पुनराख्यान* में संकलित निबंध 'राष्ट्रीय एकता और ललित निबंध' के अनुसार:

> आज यह परस्पर मेहंदीभाव समाप्त हो गया है। लोक से गाँव से जो भारतीय जीवन-दृष्टि को स्त्रोत मिला था, वह सूखता जा रहा है। आज गाँव बदल गये हैं। भारतीय जीवन में यथार्थवादी सोच और अर्थ लोलुपता ने सर्वनाश के द्वार खोल दिए हैं। इसके चलते व्यक्ति का पूरा चिंत्तन और कर्मशास्त्र ही बदल गया है। पश्चात्य जीवन-दृष्टि का प्रभाव गहराता जा रहा है। इन परिस्थितियों में भारतीय जीवन-दृष्टि को क्षय होने से बचाने के लिए ललित निबंध अपने भीतर संपूर्ण मानवीय कल्याण की अवधारणा मानवीय मूल्यों की पीठिका पर कर रहा है और मानव को उसके वास्तव से बार-बार रूबरू कराने की कोशिश कर रहा है। (40)

देश भक्ति पर व्यावहारिक दृष्टि से अध्ययन करते हुए मैंने जिला प्रधान एस.एस.एफ. गुरकीर्तन सिंह से बात-चीत करते हुए निम्न प्रश्नों को प्रस्तुत किया-

समय के साथ युवा पीढ़ी में देश भक्ति की भावना लुप्त हो रही है, क्या कारण हैं ?

1. आजकल लोग अपने जीवन में ही अस्त-व्यस्त रहते हैं, अपने स्वार्थ के कामों पर ही युवा पीढ़ी या वर्तमान समय के लोगो का ध्यान रहता है।

2. प्रत्येक व्यक्ति पैसे कमाने में व्यस्त है, तांकि वह अपने जीवन को और आरामदायक तथा अपने आस-पास के लोगों से अपने जीवन को अधिक बेहतर बना सके। ऐसी स्थिति में और चीजों के बारे सोचने के लिए शायद ही किसी के पास समय हो, लोगों ने देश के प्रति प्रेम और उसकी सेवा के प्रति जैसी भावना को लगभग भूल ही गये हैं।

3. अगर लगभग सौ वर्ष पहले लोगों की मानसिकता ऐसी होती तो वह कभी भी एकजुट नहीं होते और देश की आजादी के लिए नहीं लड़ते।

सच्चे देश भक्त और झूठे देश भक्त में क्या अंतर है ?

1. एक सच्चा देशभक्त वह है, जो अपने देश के लिए हर स्थिति में समर्पित होता है। वह पहले अपने देश और देशवासियों के बारे में सोचता है और फिर अपने देश के सुधार और विकास के लिए सब कुछ बलिदान करने के लिए तैयार हो जाता है।

2. दूसरी तरफ, झूठा देशभक्त वह है जो अपने देश के प्रति प्यार करने का दावा करता है और देशभक्त होने का दिखावा करता है।

वर्तमान में देश भक्ति को बनाये रखने के लिए क्या आवश्यक गुण हैं ?

1. एक अच्छा राष्ट्र वह है, जहां हर समय शांति और सद्भाव बनाये रखा जाता है। जहां लोगों के अंदर भाईचारे की भावना होती है तथा वह दूसरे की मदद और समर्थन करने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं।

2. देशभक्त, देश के लक्ष्य तथा उसके सुधार के लिए काम करते हैं। जब हर किसी को एक ही लक्ष्य या मिशन की तरफ आकर्षित किया जाता है, तो ऐसा कोई रास्ता नहीं होता, जो उन्हें अपने लक्ष्य को हासिल करने से रोक सके।

3. देशभक्त बिना किसी व्यक्तिगत रुचि के अपने देश के लिए नि: स्वार्थ रूप से काम करते हैं। अगर हर किसी में देशभक्ति की भावना है और वह अपने व्यक्तिगत हित को संतुष्ट करने के बारे में नहीं सोचता है, तो निश्चित रूप से इससे देश को लाभ होता है।

4. यदि राजनीतिक नेताओं के अंदर देशभक्ति की भावना है, तो वह वर्तमान परिस्थिति के अनुरूप देश के लिए काम करेंगे तथा सता में लोग देश के उत्थान के लिए काम करने की बजाये खुद के लिए पैसे कमाने में व्यस्त रहते हैं।

इस तरह देशभक्त होना एक महान गुण है, हमें अपने देश से प्यार और सम्मान करना चाहिए और जितना भी हम कर सकते हैं, देश के प्रति उतना ही अधिक करना चाहिए। देशभक्ति की भावना रखना सकारात्मक बिन्दुओं को दर्शाते हैं कि यह कैसे देश को समृद्ध और बढ़ने में मदद कर सकता है।

एस.एस.एफ. जिला प्रधान गुरकीर्तन सिंह

जिला फिरोजपुर

मो. 9463974600

दिनांक 2 मई 2019. समय 3 PM

देश भक्ति का हमारे जीवन में क्या महत्व है? या क्या महत्व होना चाहिए? ऐसी दृष्टि से मैंने माउन्ट कार्मल कालेज, बैंगलुरू की हिन्दी विभाग की शिक्षक डॉ. मधुछंदा चक्रवर्ती से मो. पर बात-चीत की और देश भक्ति का जीवन में महत्व कैसे है, इसका उत्तर इस प्रकार पाया-

जीवन में देश भक्ति का महत्व क्या है ?

सामान्य अच्छाई

1. देशभक्ति एक तरह की प्रेरणा है, जिससे लोगों को देश की उन्नति के लिए और भी अच्छा करने के लिए प्रेरित करती है। यह हमें देश की विविधता को बनाये रखने के लिए तथा हर तरह के अत्यचार के विरुद्ध एकजुट होकर सामना करने की प्रेरणा देती है।

2. देशभक्ति पूरे समुदाय की एक बहुत ही महत्वपूर्ण धरोहर है। यह एक तरह की प्रतिबद्धता है, जिसमें नागरिक देश के कल्याण और निर्माण के लिए समुदाय के अन्य सदस्यों के साथ मिलकर काम करने की अपनी ज़िम्मेदारी स्वीकार करते हैं।

वफादारी, प्रेम और लगाव

1. देशभक्त अपनी मात्रभूमि के प्रति वफादार होते हैं, जैसे अपने परिवार के प्रति हर व्यक्ति होता है। यदि एक परिवार में लोग एक दूसरे के प्रति वफादार नहीं है या उनमें विवाद है, तो वह टूट जायेगा। इसी प्रकार हर व्यक्ति का अपने देश के प्रति वफादार होना भी उतना ही आवश्यक है।

2. देशभक्ति का मतलब सिर्फ देश के प्रति प्रेम नहीं है, इसका मतलब देश के हर नागरिक से भी प्रेम करना ही है।

समान अधिकार और दार्शनिक कार्य

1. एक लोकतंत्र में सभी नागरिकों को बराबर का अधिकार होता है, जिसमें सरकार सभी नागरिकों की इच्छा का प्रतिनिधित्व करती है। अलग-अलग जाति, धर्म और लिंग होने के कारण भी सभी नागरिकों के लिए कानून समान होता है।

2. देशभक्ति दार्शनिक कार्यों में भी दिखाई देती है। अपने साथी नागरिकों की सेवा और सहायता करना हमारा सबसे अच्छा सहयोग हो सकता है।

अत: देश भक्ति का अर्थ है, देह के प्रति समर्पित होना। यहाँ समर्पण है, वहाँ प्रेम और श्रद्धा जगती है, वहीं मानवीय मूल्य जगता है। राष्ट्र को चाहने वाले व्यक्ति में यह समस्त गुण होते हैं। जीवन में देशभक्ति का महत्व वैसा ही होता है, जैसे जीवन में माता-पिता का महत्व होता है। यदि माता-पिता के प्रति मन में प्रेम और श्रद्धा नहीं होगी तो जिस घर में हम उनके साथ रहते हैं, वह घर तथा परिवार हमारे लिए अजनबी बन जायेगा और हम अपने आप को एलियन समझने लगेंगे। ठीक उसी प्रकार जिस देश में हम रहते हैं, उसके प्रति भी हमारी ऐसी भावना बन जाएगी। जीवन में देश भक्ति का महत्व देश को अपने माता-पिता के समान समझना क्योंकि हम इसी के संसाधनों में जीते हैं।

डॉ. मधुछंदा चक्रवर्ती (शिक्षक)

हिन्दी विभाग, माउन्ट कार्मल कालेज, बैंगलुरू

मो. 8217797037

दिनांक 10 जून 2019. समय 7 PM

7.3. धर्म और धर्मनिरपेक्षता का व्यावहारिक अध्ययन

हमारे संविधान में धर्मनिरपेक्षता को आदर्श के रूप में रखा गया है, इससे यह आशय है कि कोई भी राज्य धर्म के नाम पर धर्म विशेष को राज्य के धर्म के रूप में घोषित नहीं करेगा, किसी भी नागरिक के साथ धार्मिक आधार पर कोई भेद-भाव नहीं किया जायेगा। धर्म का मतलब यही है कि सभी को एक समान दृष्टि से देखा जाये। धर्म निरपेक्ष का यह मतलब कदापि नहीं है कि:

- धर्म की बात नहीं करनी है।
- धर्म का पक्ष नहीं लेना है।
- धर्म के पालन की आज्ञा नहीं करनी है।
- राज्य/सरकार को धर्म से अलग रहना होगा।

धर्मनिरपेक्षता का सीधा-सादा अर्थ सिर्फ इतना है, किसी भी धर्म का पक्ष नहीं लिया जाएगा। जब इंदिरा गाँधी ने संविधान में बदलाव करते हुए देश को धर्मनिरपेक्ष बनाया था, तो उनका मतलब था, भारत सरकार किसी भी धर्म विशेष का पक्ष नहीं लेगी। सभी नागरिक सरकार के लिए समक्षक रहेंगे। एक समय ऐसा था, जब हमारे देश में धर्म के नाम पर लड़ाई-झगड़ा होता था, सभी लोग अपने-अपने धर्मों को लेकर लड़ते थे और अपना अपना प्रचार करते थे। ऐसी ही बहुत समस्याएँ प्राचीन समय में देखी गई है। जिनको लेकर हिन्दी निबंधकारों ने भी अपने निबंधों में धर्म के बारे में अपने विचार व्यक्त किये हैं। उसके बाद हमारे संविधान में इस बात को स्पष्ट रूप से लागू कर दिया गया, कोई भी राज्य धर्म के नाम पर भेद-भाव नहीं करेगा।

> 'नास्तिकता' निबंध में डॉ. सुधेश ने कहा है कि आज की समग्र बौद्धिकता के बावजूद आधुनिक मनुष्य धार्मिक संकीर्णता, साम्प्रदायिकता, जातिवाद, क्षेत्रीयता, भाषावाद, नस्लवाद से ग्रस्त है। क्या ये संकीर्णताएँ बुद्धि-सम्मत हैं,

विज्ञान और तकनीकी अपार उन्नति के बाद भी ऐसा दिन कभी नहीं आएगा कि वह धर्म एवं आस्तिकता को मिटा दें, बल्कि विज्ञान मनुष्य अधिक क्रूर एवं दानव बनता जा रहा है। धार्मिक एवं आस्तिक लोग दुनिया में रहेंगे ही। आवश्यकता इस बात की है कि बुद्धिवाद और विज्ञान मानव को अधिक मानवीय बनने में सहायता करें। (82)

धर्म और धर्मनिरपेक्षता किसी भी धर्म के पक्ष की बात नहीं करते, हमारे भारतीय संविधान में भी धर्मनिरपेक्षता पर कानून का प्रावधान किया गया है। किसी भी धर्म या जाति के लोग एक समान अगर रहते हैं, या विद्यालयों में शिक्षा ग्रहन कर रहे हैं, तो यह धर्मनिरपेक्षता के कारण ही संभव है। इस विषय पर मैंने सबसे पहले एक धार्मिक संस्थान के मुख्य प्रचारक व्यक्ति अमृतपाल सिंह से बात-चीत करते हुए कुच्छ प्रश्नों के उतर प्राप्त किये-

धर्म का हमारे जीवन में क्या महत्व है ?

1. धर्म हमारे समाज का एक आवश्यक अंग है, जो हमे सत्य के रास्ते पर चलना सिखाता है। धर्म पर हमारी आस्था और विश्वास होता है। धर्म का होना हमारे जीवन में बहुत महत्वपूर्ण है।

2. धर्म हमें बुरे रास्ते पर चलने से रोकता है। धर्म हमारे जीवन और व्यक्तित्व को सुंदर बनाता है। धर्म सभी को एकता के सूत्र में पिरोने का काम करता है।

धर्म और विज्ञान में क्या अंतर है ?

1. धर्म और विज्ञान एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, दोनों सत्य की खोज करते हैं। दोनों का काम करने का अपना तरीका है, लेकिन धर्म और विज्ञान एक ही रास्ते की खोज करते हैं।

2. धर्म आस्था और विश्वास पर निर्धारित है, इसी तरह विज्ञान तर्क पर आधारित है। दोनों में कुच्छ समानता भी हैं और कुच्छ असमानता भी हैं, लेकिन दोनों का काम सत्य पर आधारित निष्कर्ष को प्राप्त करना है। विज्ञान सत्य का परीक्षण कर स्वीकार करता है और धर्म आस्था के रूप में स्वीकार किया जाता है।

धर्मनिरपेक्षता हमारे समाज में क्यूँ आवश्यक है ?

1. अगर धर्मनिरपेक्षता हमारे समाज में नहीं होगी, तो कोई भी संस्था एक धार्मिक समुदाय की होगी। वहाँ पर एक धर्म या विशेष जाति के लोग ही होंगे, जिससे धार्मिक और जातिवाद जैसी समस्याओं का जन्म होगा।

2. हम किसी भी संस्था की बात करें, जैसे स्कूल हैं, अगर धर्मनिरपेक्षता नहीं होगी तो स्कूल में धर्म और जाति के आधार पर बच्चों को एडमिशन मिलेगी। इसी तरह नौकरी में भी धर्म के नाम पर भेद-भाव किया जायेगा। धर्मनिरपेक्षता हमें ऐसी समस्याओं से छुटकारा दिलाती है, किसी भी मंदिर, मस्जिद या गुरुद्वारे में किसी जाति या धर्म के लोगों के साथ भेद-भाव नहीं किया जाता, यह धर्मनिरपेक्षता की बहुत बड़ी उदाहरण है।

अमृतपाल सिंह (मुख्य प्रचारक)

निवास, ममदोट, जिला फिरोजपुर

मो. 9501094244

दिनांक 27 जून 2019. समय 11AM

इसके उपरान्त मैंने कुच्छ किसानी का काम करने वाले लोगों से धर्म और राजनीति के बारे में बात-चीत की। सभी ने अपने-अपने विचारों से अवगत करवाया और धर्म और राजनीति के बारे में निम्न प्रश्नों के उत्तर इस प्रकार दिए-

धर्म और राजनीति का आपस में संबंध होना अनिवार्य है, क्यूँ और कैसे ?

1. धर्म से हम लोग सदाचारी और प्रेममय बनते हैं, वहीं राजनीति का मुख्य काम है, लोगों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए उनके हित के लिए काम करना। धर्म और राजनीति साथ-साथ चलने चाहिए तभी राजनीति भृष्टाचार से रहत होगी।

2. जब राजनीतिज्ञ नेता धार्मिक होगा वह अपना कार्य ईमानदारी से करेगा और राजनीति का जो उद्देश्य है, लोगों की आवश्यकता और उनके हित के लिए एक अच्छा नेता जो धार्मिक होगा वह कार्य करेगा।

वर्तमान में राजनीति और धर्म अलग मिलते हैं, क्या यह सत्य है ?

1. वर्तमान में राजनीति और धर्म को देखते हैं, तो अधिकतर यह अलग ही मिलते हैं, क्योंकि भूमंडलीकरण के दौर में सभी राजनेता स्वार्थी हैं। केवल स्वार्थ के लिए काम कर रहे हैं। उनको धर्म से कुछ लेना देना नहीं हैं।

2. धर्म और राजनीति एक साथ चलकर हमारे समाज का कल्याण कर सकते हैं। कुछ लोगों ने अपने स्वार्थ के लिए धर्म को राजनीति से अलग रखा और इसका प्रभाव हमारे जीवन और समाज में आज देखने को मिल रहा है। हमारी आने वाली नई पीढ़ी आज बर्बाद हो रही है। राजनीति और धर्म एक साथ होंगे तभी स्थिति में सुधर हो सकता है।

गुलशेर (किसान) एवं

अवतार सिंह (सरपंच)

गाँव- चक साहू, जिला फरीदकोट

मो. 9855449309

दिनांक 10 जुलाई 2019. समय 7PM

7.4. अन्धविश्वास और दान का व्यावहारिक अध्ययन

आज 21वीं सदी में भी देश में अनेक लोग अन्धविश्वास पर विश्वास करते हैं। ऐसे लोग अक्सर कुछ पाखंडी साधुओं, बाबाओं, तांत्रिकों के बहकावे में आकर अपना धन और इज्जत गवा बैठते हैं। देश में महलाएँ अधिक अन्धविश्वास की शिकार हैं। हमें इस विषय के बारे में जानना बहुत आवश्यक है और आने वाले समय में इससे छुटकारा पाना बहुत आवश्यक है। हमारे देश में आज भी बहुत लोग ऐसे गाँव और गरीब हैं, जो शिक्षित नहीं है। वही लोग अधिकतर इसकी चपेट में आते हैं। जिनको इसका ज्ञान नहीं है और कुछ पाखंडी लोग उनसे उनके अच्छे के लिए बहुत पैसा बटोरते हैं। अधिकतर महलाएँ पुत्र, सन्तान पाने के लिए बाबा के चक्कर लगाती हैं। ऐसे बाबा भोली-भाली औरतों से मोटी रकम वसूलते हैं, कई बार उनकी इज्जत पर भी खतरा उठ जाता है। दुबे ने अपने निबंधों में अंधविश्वास को लेकर हमें सुचेत कराया है कि हमें अपने अस्तित्व को पहचानना होगा, तभी हम इनसे छुटकारा पा सकते हैं। दुबे कहते हैं कि हम अपने स्वार्थ को लेकर इसमें फंस जाते हैं, लेकिन बाद में एक भैय पड़ जाता है। डॉ. श्यामसुंदर दुबे ने अपने निबंध संग्रह *अलोक अनवरत* में कहा है:

हम सभी को तर्क और विज्ञान के अनुसार सोचना चाहिए। हमारी सोच तर्कवादी होनी चाहिए। हम सबको अपनी मानसिकता बदलनी होगी। भाग्य-दुर्भाग्य विधि का विधान है। यदि दुर्भाग्य नहीं होगा तो भाग्य को पहचानना मुश्किल हो जायेगा। (121)

अन्धविश्वास का व्यावहारिक अध्ययन करते हुए हमने यहाँ पर कुच्छ लोगों से बात-चीत की, जिससे हमें पता चलता है कि आज भी लोग में कैसे फंस जाते हैं। मैंने विभिन्न प्रकार के प्रश्नों को अलग-अलग जीवन शैली वाले लोगों से पूछा और निम्न उत्तर प्राप्त किये-

अन्धविश्वास कैसे पैदा होता है ?

1. जब हम किसी समस्या में फंस जाते है, तो जल्दी से उसका समाधान करने के लिए कई बार हम ऐसा करते हैं। हमारे आस-पास के लोगों से हमें पता चलता है कि आपकी समस्याओं का हल बाबा कर सकते हैं।

2. जब एक महिला किसी दूसरी महिला को बताती है, तो कई बार ऐसी स्थिति में हम इसके बहकावे में आ जाते हैं। जगह-जगह पर बहुत से बाबा, साधू समस्याओं को दूर करने के लिए बैठे हैं। हमारे पास और रास्ता भी नहीं होता, कई बार हम किसी की बात को मानकर चले जाते हैं।

पाखंडी तांत्रिक किसी को ऐसे ठीक कर देते हैं, क्या सत्य है ?

1. जब किसी के संतान नहीं है, या घर में लड़ाई-झगड़ा रहता है, तो वह अपनी समस्या को दूर करने के लिए ऐसा काम करता है।

2. लेकिन इससे कभी लाभ नहीं हुआ, अधिकतर हानि ही होती है। पाखंडी साधू को पैसे से मतलब होता है, वह बार-बार पैसे लेकर आने को कहते हैं।

बिल्ली द्वारा रास्ता काटना, छीकने पर काम न बनना, इसके बारे में आपका क्या विचार है ?

1. हमारे घरों में हमारे बजुर्गों के द्वारा हमें यह बात बताई गई है, इसलिए हम उनकी बात को मानते हैं। लेकिन आज हमारे बच्चे इन सभी को नहीं मानते हैं। हमारे आस-पास बहुत लोग हैं, जो बिल्ली के रास्ता काटने पर काम नहीं जाते।

बिमला रानी तथा गाँव के अन्य साथी

गाँव- पाली वाला, जिला फाज़िल्का

मो. 9464960145

दिनांक 25 जुलाई 2019. समय 4PM

इसके उपरान्त अन्धविश्वास पर मैंने एक पढ़ी-लिखी महिला मनदीप कौर से बात करते हुए कुच्छ और प्रश्नों को प्रस्तुत किया। उनकी दृष्टि में इसको लेकर जो उनके विचार हैं, वह निम्न प्रकार हैं-

अन्धविश्वास हमारे मानव जीवन को कैसे क्षति पहुँचाता है ?

1. हमारे देश में आज भी बहुत लोग ऐसे गाँव और गरीब हैं, जो शिक्षित नहीं है। वही लोग अधिकतर इसकी चपेट में आते हैं। जिनको इसका ज्ञान नहीं है और कुछ पाखंडी लोग उनसे उनके अच्छे के लिए बहुत पैसा बटोरते हैं।

2. अधिकतर महलाएँ पुत्र, सन्तान पाने के लिए बाबा के चक्कर लगाती हैं। ऐसे बाबा भोली-भाली औरतों से मोटी रकम वसूलते हैं, कई बार उनकी इज्जत पर भी खतरा उठ जाता है।

3. अनपढ़ लोगों के साथ ही हमारे समाज के पढ़े लिखे लोग भी अन्धविश्वास में पड़ जाते हैं। जब हमारे मन में भैय पड़ जाता है, तो हम इसकी लपेट में आ जाते हैं। आज तक इससे किसी को लाभ नहीं प्राप्त हुआ है।

अन्धविश्वास क्या-क्या होता है ?

1. मनचाहा प्यार, मनचाही शादी, पारिवारिक क्लेश, झगड़ा खत्म करने के लिए, सन्तान के लिए, मनचाही नौकरी, दुश्मन का नाश, प्रमोशन के लिए, बीमारी ठीक करने के लिए, दुःख कष्ट दूर करने के लिए, अचानक से धन पाने के लिए, अमीर बनने के लिए, वशीकरण आदि।

2. कई बार यह पाखंडियों के जादू टोटके व्यक्तियों की जान तक ले जाते हैं। बच्चों की बलि दे दी जाती है। इतना ही नहीं औरतों की इज्जत से खिलवाड़ भी किया जाता है।

अन्धविश्वास को रोकने के लिए क्या करना चाहिए ?

1. हमारी सरकारों को चाहिए कि इसको लेकर कानून बनाया जाए जिससे यह अपराध माना जाए।

2. हमें समाज में इसको लेकर स्कूल कालेज में जागरूकता फैलानी चाहिए तांकि हमारी नई पीढ़ी और हमारे परिवार इस अन्धविश्वास में न पड़े। अन्धविश्वास पर रोक लगाने के लिए देश के सभी नागरिकों को आगे आना होगा।

3. अन्धविश्वास के अनेक नुकसान होते हैं। इसमें हमारा धन और समय नष्ट होता है, धन और समय आज कितना आवश्यक है। हमें ऐसे पाखंडी कहीं भी मिले तो पुलिस को सूचना दे और समाज में इसको लेकर जागरूकता फ़ैलाने का कार्य मिलकर करना चाहिए।

मनदीप कौर तथा हरजिंदर सिंह

गाँव सरावा बोदला, मलोट, जिला मुक्तसर

मो. 9815841443

दिनांक 10 अगस्त 2019. समय 5PM

दान

आधुनिक सन्दर्भों में दान उसको कहते हैं, जब किसी जरूरतमंद को सहायता के लिए कुछ दिया जाता है। सभी धर्मों में सुपात्र को दान देना परम कर्तव्य माना गया है। जब मानव किसी दूसरे प्राणी को कुछ सहायता में देता है, जिसको उसकी आवश्यकता होती है, तब मानव को बहुत ख़ुशी मिलती है। दान किसी वस्तु पर से अपना अधिकार समाप्त करके दूसरे का अधिकार स्थापित करना है। दान किसी भी रूप में दिया जा सकता है। केवल धन देना दान नहीं है, जो भी वस्तु हम किसी जरूरतमंद को देते हैं, वह दान है। किसी को विद्या देना, भूमि देना, खाना देना, गाय देना और किसी गरीब कन्या का विवाह करना आदि। *है कुछ, दीखे और* निबंध संग्रह में कैलाश वाजपेयी कहते हैं:

> यह कुछ सोचने जैसा है कि हर आदमी, आदम की तरह सामान्यत बेगुनाह होता है, हर कोई अपने-अपने अच्छे-बुरे कर्मों का फल भोगता है। आदम के कामों का फल नहीं। कर्म करो फल की चिंता मत करो हमारा अधिकार केवल अपने कर्म पर है, उसके फल पर नहीं। हर क्रिया की प्रतिक्रिया होती है, यह तो संसार एवं विज्ञान का धारण नियम है। इसलिए उन्मुक्त हृदय से श्रद्धापूर्वक एवं सामर्थ्य अनुसार दान एक बेहतर समाज के निर्माण के साथ साथ स्वयं हमारे भी व्यक्तित्व निर्माण में सहायक सिद्ध होता है और सृष्टि के नियमानुसार उसका फल तो कालान्तर में निश्चित ही हमें प्राप्त होता है। (203)

दान का हमारे जीवन में क्या महत्व है ?

1. दान की महिमा तभी होती है, जब वह नि:स्वार्थ भाव से किया जाता है। अगर कुछ पाने की लालसा में हम दान करते हैं, तो वह व्यापर बन जाता है, न कि दान। दान देने से अधिक महत्व है देने का भाव।

2. अगर हम एक उदारता का भाव रखते हैं, तो हमारा भी अच्छा होता है, कहते हैं कि दान एक हाथ दिया तो हजारों हाथों लोटकर आता है। जब किसी जरूरतमंद को हम दान देते हैं, तो वह कितनी हजारों दुआएँ हमें देता है।

दान कहाँ देना अनिवार्य है ?

1. कुछ लोग केवल धन देना ही दान समझते हैं, लेकिन यह कदापि सही नहीं है कि दान धन का ही हो। भूखे को रोटी, बीमार का उपचार, उचित परामर्श, आवश्यकतानुसार वस्त्र, सहयोग और विद्या ये सभी भी बहुत बड़ा दान है।

2. दान उसी को देना चाहिए जिसको उसकी आवश्यकता है। वर्तमान में इसका भी गलत प्रयोग हो रहा है, हर कोई माँगने बैठा हुआ है, जो कि कार्य भी कर सकता है।

क्या दान का गलत प्रयोग भी हो सकता है, कैसे ?

1. धार्मिक स्थानों पर ऐसा कुछ दान में करते हैं, जिसकी आवश्यकता नहीं होती। जहाँ सब कुछ पहले बहुत है उसको और दे रहे हैं। जिससे दान का गलत प्रयोग हो रहा है।

2. जो भूखा प्यासा है, उसको न देकर जहाँ जरूरत नहीं है, वहाँ दान दिया जाए, यह दान का गलत प्रयोग है। दान वह है जो जरूरत के अनुसार दिया जाता है। वर्तमान में

कई जगह पर इतना अधिक दान दिया जाता है, जिससे भृष्टाचार को बढ़ावा मिलता है। लोग वहाँ अपने घरों में ले जाते हैं, जिनके पास सब होता है।

मेडिकल डॉ. अमनदीप तथा उनके साथी

बाबा फरीद यूनिवर्सिटी, मेडिकल कालेज, फरीदकोट

मो. 9803838933

दिनांक 05 सितम्बर 2019. समय 07PM

7.5. त्यौहार एवं दया भावना का व्यावहारिक अध्ययन

हमारी भारतीय संस्कृति में पर्वों का विशेष स्थान है, यहाँ तक कि इसे पर्वों या त्यौहारों की संस्कृति कहना गलत नहीं होगा। पूरा साल भर हमारे यहाँ कोई न कोई पर्व या त्यौहार चलता ही रहता है। हर ऋतु में, हर महीने में कम से कम एक दो प्रमुख त्यौहार मनाये जाते हैं। कहा जाता है कि भारत पर्वों और त्यौहारों का देश है। इसमें कोई संदेह नहीं है। पूरे वर्ष में प्रत्येक दिन कोई न कोई उत्सव मनाया जाता है। और हमारे भारत में पूरे विश्व की तुलना में अधिक त्यौहार या उत्सव मनाये जाते हैं। धार्मिक त्यौहार में से अधिकांश उत्सव सभी राज्यों में समान रूप से मनाये जाते हैं। जन्माष्टमी, क्रिसमस, रक्षाबंधन, दीपावली, ईद-उल-जुहा, नागपंचमी, दशहरा, होली, वैसाखी, रथ यात्रा, 15 अगस्त, 2 अक्टूबर, 26 जनवरी, रामनवमी और गुरु नानक जयंती, यह धार्मिक त्यौहार लगभग सभी भागों में एक समान मनाये जाते हैं।

त्यौहारों का हमारे जीवन में बहुत महत्व है, यह हमें परस्पर एक साथ रहने का उपदेश देते हैं। त्यौहारों में प्राचीन समय में लोग बिना किसी भेद-भाव के बिना किसी जात-पात के एक साथ मनोरंजन करते थे। जैसे-जैसे समय बदलता गया यह परम्परा भी बदल गई है, आज लोग एक साथ रहना पसंद नहीं करते और न ही किसी के पास

समय है। सभी लोग अपनी सीमित स्व की मांगों तक ही सीमित रह गये हैं, जिसका प्रभाव आज हमारे समाज और संस्कृति पर पढ़ रहा है। 21वीं सदी के निबंधकारों में डॉ. श्यामसुंदर दुबे और डॉ. रामदरश मिश्र ने त्यौहारों की बदलती परम्परा के बारे में हमें बताया है। आज मेलों का पहले जितना महत्व नहीं रहा और न ही कोई आदमी मेलों में जाना चाहता है। विश्व पुस्तक मेले को लेकर डॉ. रामदरश मिश्र अपने निबंध संग्रह *छोटे-छोटे सुख* में पुस्तक मेला दिल्ली को लेकर कहते हैं:

> अब देहात में भी मेलों का वह महत्व नहीं रह गया है, जो पहले था क्योंकि एक तो वहाँ भी इलेक्ट्रानिक मीडिया द्वारा प्रदत मनोरंजन के नये-नये साधन खूब उपलब्ध हो गये हैं, दूसरे यात्रा के यान्त्रिक साधनों के कारण शहर और गाँव की दूरी काफी सिमट चुकी है, तीसरे मेले से जुडी जो सामूहिक मानसिकता थी, वह राजनीति के प्रभाव से काफी दूर तक खण्डित हो चुकी है और व्यक्ति स्वार्थवश या भयवश अपने में केन्द्रित होता जा रहा है। (91)

इस तरह त्यौहारों की बदलती परम्परा और त्यौहारों का हमारे जीवन में कितना महत्व है, इसी को लेकर यहाँ हमने इसका व्यावहारिक अध्ययन किया है। कुच्छ महत्वपूर्ण प्रश्नों को प्रस्तुत करते हुए हमने यहाँ कुच्छ लोगों से बात-चीत की और निम्न उत्तर प्राप्त किये-

भारतीय संस्कृति में त्यौहारों का क्या महत्व है ?

1. हमारी भारतीय संस्कृति में पर्वों का विशेष स्थान है, यहाँ तक कि इसे पर्वों या त्यौहारों की संस्कृति कहना गलत नहीं होगा।

2. हमारा देश अनेकता में एकता का अद्भूत संगम है। यहाँ अनेक धर्मों, जाति, भाषा के लोग इस प्रकार रहते हैं कि जैसे विभिन्न रंगों के पुष्पों को एक माला में पिरो दिया

गया हो। हर एक धर्म, जाति अथवा सम्प्रदाय की अपनी सांस्कृतिक विरासत है, जो भिन्न-भिन्न त्यौहारों के माध्यम से प्रकट होती है।

3. समय समय पर यह विभिन्न त्यौहार मनुष्य के परस्पर भेदभाव व वैमनस्य को भुलाकर उनमें धार्मिक समन्वय वह सामाजिक एकता हेतु प्रेरित करते हैं। जब सभी लोग किसी त्यौहार में एक साथ रहते हैं, तो उनमें जाति-भेद दूर होते चले जाते हैं।

वर्तमान में त्यौहारों के प्रति लोगों की रुचि क्यूँ घट रही है ?

1. वर्तमान में पहले जैसे पर्व या उत्सव को लेकर लोगों में भावना नहीं है। कुछ आधुनिक साधनों के आने से लोग उत्सव में कम जाते हैं, क्योंकि मनोरंजन के साधन अब हमारे पास ही हैं।

2. अगर आज के समय की भाग दौड़ को देखा जाए तो किसी के पास समय निकाल पाना बहुत मुश्किल कार्य है। ऐसी परिस्थितियों में कलुषता, हीनता, कपट, व्यभिचार की उपज होती है।

त्यौहार एवं मेले मानव में सांस्कृतिक मूल्यों को कैसे मजबूत करते हैं ?

1. हमारे सांस्कृतिक त्यौहार मानव के बीच सच्चाई, निष्कपटता और आत्मविश्वास भर देते हैं। सभी त्यौहार हमें एकता का संदेश देते हैं।

2. हमारे देश में त्यौहारों का महत्व नि: संदेह है। जाति-भेद भावना को यह त्यौहार छिन्न-भिन्न कर देते हैं। यह एकता का संदेश तो देते ही हैं, साथ ही हमारी सांस्कृतिक विरासत और गौरव भी हैं।

3. हर एक धर्म, जाति अथवा सम्प्रदाय की अपनी सांस्कृतिक विरासत है, जो भिन्न-भिन्न त्यौहारों के माध्यम से प्रकट होती है।

गुरनाम सिंह तथा यादविंदर

नजदीक सेंट्रल जेल, गली गुरुद्वारा (पला साहिब)

अजनाला रोड, अमृतसर

मो. 9815919683

दिनांक 01 अक्टूबर 2019. समय 4PM

दया भावना

जब तक हमारे हृदय में दया है, तब तक धर्म उस पर टिका हुआ है, दया की अनुपस्थिति में धर्म का कोई अस्तित्व नहीं है। दया करुणा एक मानवीय हृदय भाव जिन्हें औरों के दुखों के प्रति संवेदना हो उसे दयालु कहा जाता है। दया प्राणी का पहला धर्म है, निर्दयी मानव हिंसक जानवर के समान होता है। अपने हृदय में दया करुणा नम्रता जैसे ईश्वरीय गुणों को बसाए रखे, तभी मानव धर्म और सुंदर बन सकता है। दया दूसरों की ओर विनम्र और विचारशील होने का गुण है। यह एक ऐसा गुण है, जो हर किसी के पास नहीं है। आज का व्यक्ति ऐसा समझता है कि वह बहुत सी समस्याओं में घिरा हुआ है, जैसे उसके पास कुछ अच्छा करने का समय नहीं है, लेकिन वह यह नहीं जानता कि जब वर्तमान में हम कुछ अच्छा नहीं कर रहे तो क्या समस्याओं से छुटकारा मिल सकता है। डॉ. श्रीराम परिहार के निबंध *धूप का अवसाद* में कहा गया है- "दया न ही किसी चीज के बदले और न ही सहायता के बदले बल्कि किसी की जरूरत के मुताबिक उस व्यक्ति की मदद करना है।"(150)

दया क्या है ? हमारी अक्षुण्णता बनाये रखने में इसका क्या योगदान है ?

1. दया से तात्पर्य यही है कि हमारे आस-पास के लोगों के प्रति अच्छा होना। दयालु व्यक्ति किसी जरूरतमंद के प्रति उसकी आर्थिक सहायता करके बना जा सकता है।

जब हम दूसरों के प्रति विनम्र होते हैं, उनके कार्यों में उनकी सहायता करते हैं और ऐसे अच्छे कृत्य करते हैं, तो हमें सिद्धि और ख़ुशी का अहसास मिलता है।

2. दया छोटे से कार्य के रूप में भी की जा सकती है। केवल किसी को धन देना दया नहीं है, किसी जरूरतमंद व्यक्ति को दया किसी रूप में भी दी जा सकती है। कई जगह पर बहुत सा भोजन या घर की और वस्तुएँ या फिर कपड़े ऐसी बहुत सी वस्तुएँ व्यर्थ में जाती है, और कचरे में दाल दी जाती हैं। इन सब से भी किसी जरूरतमंद व्यक्ति की सहायता की जा सकती है, जिससे अधिक धन की भी जरूरत नहीं है और हमारा जाता भी कुच्छ नहीं है।

आज दया भावना लोगों में क्यूँ नहीं है ?

1. हर व्यक्ति आज अपने आप को बेहतर बनाना चाहता है। वह दूसरे लोगों को यह दिखाना चाहता है कि उसकी जिन्दगी दूसरों की तुलना में कितनी बेहतर है। अगर किसी व्यक्ति के पास अगर आज कुच्छ अधिक है भी तो वह दूसरों में उसे नहीं बांटना चाहता।

2. जब हम केवल अपने लिए कार्य करते हैं, तो हमें उतनी ख़ुशी नहीं मिलती जितनी किसी और की सहायता करने पर मिलती है।

3. हर व्यक्ति अच्छे और दयालु व्यक्ति के साथ दोस्ती और रिश्ते बनाना चाहता है, कोई भी व्यक्ति अशिष्ट, अभिमानी, स्वार्थी और घमंडी के साथ रिश्ता बनाना पसंद नहीं करता है। इसीलिए अच्छा व्यक्ति होना अनिवार्य है और दयालुता भी अनिवार्य है।

अमित डोगरा तथा राजीव डोगरा

कांगड़ा, हिमाचल प्रदेश

मो. 7888872411

दिनांक 20 अक्टूबर 2019. समय 6PM

7.6. पारिवारिक संबंध और नारी की स्थिति का व्यावहारिक अध्ययन

परिवार हर किसी के जीवन में बहुत महत्वपूर्ण होता है। परिवार के बिना यह जीवन एक अधूरा सा लगता है। माता-पिता, भाई-बहन, पति-पत्नी, बच्चे सभी एक परिवार का हिस्सा होते हैं। हर किसी परिवार के सदस्य दुःख-सुख में एक दूसरे का साथ देते हैं। हर किसी मुश्किल को एक साथ मिलकर झेलते हैं और सुलझाते भी हैं। सभी समाजों में बच्चों का जन्म और पालन पोषण परिवार में होता है। बच्चों का संस्कार करने और समाज के आचार व्यवहार में उन्हें दीक्षित करने का काम मुख्य रूप से परिवार का होता है। इसके द्वारा समाज की सांस्कृतिक विरासत एक से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होती है। व्यक्ति की सामाजिक मर्यादा बहुत कुच्छ परिवार से ही निर्धारित होती है। नर-नारी के यौन संबंध मुख्यत: परिवार के दायरे में निबद्ध होते हैं।

वर्तमान में हमारे समाज में पारिवारिक संबंधों में बहुत बदलाव देखने को मिल रहा है। जबकि परिवार का हमारे जीवन में सबसे अधिक महत्व होता है, लेकिन आज के समय में लोग बहुत तनाव पूर्ण जिन्दगी जी रहे हैं, संयुक्त परिवार को लोग आज भूल गये हैं। इन्हीं समस्याओं पर विचार करते हुए हमने यहाँ पर कुच्छ लोगों से बात-चीत करते हुए, इसका व्यावहारिक अध्ययन किया है।

समाज में परिवार की क्या भूमिका है ?

1. एक बच्चा अपने परिवार की छत्र-छाया में रहकर ही बड़ा होता है। वहीं वह प्यार के महत्व को समझकर रिश्तों में बंधता है। परिवार के रिश्ते बच्चे को ख़ुशी प्रदान करते हैं और जिम्मेदारी का भी एहसास दिलाते हैं। परिवार ही है जो बच्चे को सामाजिक बनाता है।

2. सुरक्षित रहने और आगे बढ़ने के लिए इस दुनिया में परिवार सभी की सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता है। किसी के भी जीवन में परिवार की बहुत महत्वपूर्ण भूमिकाएँ होती हैं।

3. पहले समय में अधिक लोग संयुक्त परिवार में रहते थे। संयुक्त परिवार में हमें बहुत से अच्छे गुण सीखने को मिलते हैं, साथ ही एक अच्छा पर्यावरण भी मिलता है। लेकिन आज कोई साथ नहीं रहना चाहता, सभी अकेले रहना पसंद करते हैं, तभी आज समस्याएँ भी पहले की तुलना में अधिक हैं।

आज रिश्ते क्यूँ बदल रहे है ?

1. वर्तमान में हमारे पारिवारिक संबंध पहले जैसे नहीं है। आज परिवार में पति-पत्नी, माता पिता और बच्चे, स्त्री पुरुष, छोटे और बढ़े सभी में रिश्ते बदल चुके हैं। इन सब को बहुत से पहलुओं ने प्रभावित किया है।

2. आज वर्तमान नकारात्मक सोच, भूमंडलीकरण, वैश्वीकरण, बाजारवाद, मोबाईल फ़ोन इन सभी ने हमारे संस्कार, संस्कृति, हमारे संबंध और हमारे समाज को बहुत प्रभावित किया है। आज पति पत्नी के बीच पहले जैसे संबंध नहीं है।

3. आज सभी कहते हैं कि मैं बड़ा विद्वान हूँ, परिवार के सभी सदस्य मेरी बात मानते रहें। लेकिन आज कोई किसी की बात नहीं मानना चाहता, इसलिए आज संयुक्त परिवार नहीं हैं।

संयुक्त परिवार के क्या लाभ हैं ?

1. ये जीने का एक बेहतर तरीका उपलब्ध कराते हैं, जो उचित वृद्धि के लिए अत्यधिक योगदान करता है। संयुक्त परिवार के सदस्य के पास आपसी सामंजस्य की समझ होती है।

2. एक बड़े संयुक्त परिवार में बच्चों को एक अच्छा माहौल और सदैव के लिए समान आयु वर्ग के मित्र मिलते हैं। इस वजह से परिवार की नई पीढ़ी बिना किसी रुकावट के पढ़ाई खेल और अन्य दूसरी क्रियाओं में अच्छी सफलता प्राप्त करती हैं।

3. परिवार के मुखिया की बात मानने के साथ ही संयुक्त परिवार के सदस्य ज़िम्मेदार और अनुशासित होते हैं।

4. अक्सर यह कहावत है कि जब आदमी अकेला होता ,है वह शैतान का घर होता है। उसके मन में कुच्छ गलत प्रश्न चलने शुरू हो जाते हैं।

संयुक्त परिवार के क्या-क्या नुकसान हैं ?

1. संयुक्त परिवार में उचित नियमों की कमी की वजह से कई बार कुच्छ सदस्य कामचोर हो जाते हैं और उनकी दूसरे की कमाई पर खाने की आदत बन जाती है। वो परिवार के अन्य अच्छे और सीधे सदस्यों का शोषण करना शुरु कर देते हैं।

2. आमतौर पर संयुक्त परिवार में ऊँची हैसियत और अधिक कमाने वाले सदस्य कम कमाने वालो का अपमान करते हैं, जिससे रिश्तों में दरार पड़ जाती है।

3. घर में बच्चों को लेकर छोटी-छोटी बातें जैसे - कुच्छ खाने की वस्तुओं को लेकर या अधिक पैसा कमाने वाले अपने बच्चों को अच्छे और महँगे स्कूलों में पढ़ाते हैं और घर

में ही दूसरे बच्चों का बोझ कभी नहीं बांटते, इस तरह से बच्चों में भेदभाव की भावना आ जाती है।

हमारे आस पास घटित हो रहे संबंध हमें बताते हैं कि आज रिश्ते कैसे चल रहे हैं। चारों ओर पूँजी, संपति, धन, बाजार और पेशेवरवाद के सामने मानव, मानवीयता, सहिष्णुता, चरित्र, संस्कार और मूल्य आदि की चर्चा पृष्ठभूमि में चली गई है। बदलते संबंधों ने आज हमारी संस्कृति को बहुत प्रभावित किया है। पारिवारिक संबंधों के बारे में जो लोगों ने हमें बताया इससे भी यही पता चलता है, आज हमारे संबंध पहले जैसे नहीं हैं। आज समस्याएँ भी अधिक हैं, पहले संयुक्त परिवार अधिक होते थे, तब इतनी समस्याएँ नहीं थी, तब लोग दिल से रिश्ते निभाते थे।

डॉ. गौरव तिवारी (शिक्षक)

कुशीनगर, उतर प्रदेश

मो. 9450477666

दिनांक 20 सितम्बर 2019. समय 6PM

नारी की स्थिति

नारी समाज का अभिन्न अंग है और उसकी नियति प्राय: व्यापक समाज से भिन्न नहीं मानी जाती। यदि कोई समाज पिछड़ा हुआ है, तो उसकी नारी भी पिछड़ी हुई होगी। उन्नत देशों और समाजों में नारियों की सामाजिक स्थिति अविकसित देशों और समाजों की नारियों की तुलना में बेहतर पाई जाती है। डॉ. सुधेश ने अपने निबंध संग्रह *चिन्तन अनुचिन्तन* में संकलित निबंध 'नारी की नियति' में कहा है:

इस लेख में मैं व्यापक स्तर पर नारी की स्थिति और उसकी नियति पर विचार करना चाहता हूँ। उसकी नियति उसकी स्थिति से जुड़ी हुई है। स्थिति में यदि परिवर्तन लाया जा सकता है, तो नियति को क्यों नहीं बदला जा सकता। (97)

यहाँ पर निबंधकार कहना चाहता है कि नारी की नियति को बदला जाए। जीव विज्ञान और विज्ञान की अनेक शाखाएँ कहा करें कि जैविक दृष्टि से नारी और पुरुष की क्षमताओं में कोई अंतर नहीं है, पर पुरुष स्वयं को नारी से श्रेष्ठ समझता है। इसके बावजूद कि पुरुष की जननी नारी है, वंश परम्परा पुरुष के आधार पर देखी जाती है। नारी विवाह के बाद पुरुष के वंश का भाग मान ली जाती है, पुरुष नारी के वंश का हिस्सा नहीं बनता।

संस्कृति में नारी का क्या योगदान है ?

1. नारी के बिना हमारा जीवन संभव नहीं है। पुरुष और नारी मिलकर परिवार बनाते हैं और परिवार से ही समाज बनता है।

2. नारी समाज का सबसे महत्वपूर्ण अंग है। घर परिवार की बहुत सी ज़िम्मेदारी नारी की होती है।

वर्तमान में नारी का कैसा सम्मान है ?

1. आज नारी पुरुष के बराबर हर काम करती है। हर जगह पर नारी है, चाहे दफ्तरों की बात की जाये या फिर किसी और काम या नौकरी की बात की जाये हर जगह नारी आज है।

रजनी शर्मा

अबोहर, जिला फाजिल्का

मो. 9465404004

दिनांक 5 नवम्बर 2019. समय 2PM

क्या आज भी नारी का शोषण होता है ?

1. बलात्कार जैसी घटनाएँ आज भी हो रही हैं, कुच्छ राजनेता और कुच्छ लोग ऐसे हैं, जो आज भी नारी का शोषण कर रहे हैं, चाहे वह दफ़्तर की बात हो या फिर गाँवों की।

2. आज कुच्छ और कठोर कानून बनने की आवश्यकता है, जिससे नारी का शोषण कम हो सकता है।

भ्रूण हत्या

1. वर्तमान में हमारे भारत में भ्रूण हत्या की सबसे बड़ी समस्या चल रही है, सभी को आज बेटा चाहिए। अधिकतर लोगों के पास आज बेटे ही हैं, क्योंकि लड़की को कोई जन्म नहीं देना चाहता, लेकिन आज हमारा समाज यह भूल रहा है कि बेटे को जन्म देने वाली एक लड़की ही है। बेटे की शादी भी एक लड़की से होगी यह बात समाज आज भूल रहा है और भ्रूण हत्या बढ़ रही है।

दहेज प्रथा

1. दहेज प्रथा भी आज वर्तमान समय में हमारे समाज की बहुत बड़ी समस्या बन चुकी है। 21वीं सदी में दहेज प्रथा हमारे विकासशील देश के लिए कोढ़ का काम कर रही है। दहेज प्रथा हमारे लिए कलंक है, जो दिन-प्रति-दिन बढ़ रही है।

2. दहेज आज लोगों के लिए एक गर्व का विषय बन चुका है, वह लोग ऐसा सोचते हैं कि अगर हमने दहेज नहीं दिया तो समाज में हमारी कोई इज्जत नहीं रह जाएगी।

भारत में बहुत से लोग आज भी अनपढ़ हैं, जो अपने रीति-रिवाज को लेकर दहेज जैसी कुप्रथाओं को बढ़ावा देते हैं, ऐसे ही फिर लड़के वाले और अधिक दहेज की माँग खुद करने लगते हैं।

नारी के प्रति नारी का दृष्टिकोण भी बदल रहा है, क्या यह सत्य है ?

1. आधुनिक समय में समाज की स्थिति और नारी के प्रति लोगों की नकारात्मक सोच के कारण ऐसी स्थिति पैदा होती है। कोई लड़की को जन्म देना नहीं चाहता, यहाँ तक एक लड़की भी चाहती है कि उसकी संतान में लड़का ही पैदा हो।

2. वहीं कुच्छ लोग हैं जिनके कोई संतान नहीं है, वह लड़की को भी चाहते हैं। आज हमें अपनी स्थिति नहीं, बल्कि नियति को बदलने की आवश्यकता सबसे अधिक है। आज सभी लोगों का नारी के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण होना चाहिए। नारी की स्थिति आज अच्छी है, हर जगह पर नारी को अधिकार है। लेकिन नियति जो हमारा व्यवहार, हमारी सोच, हमारी नीति को बदलने की आवश्यकता है।

सिमरप्रीत कौर तथा भावना

आदमपुर, जिला जालन्धर

मो. 8872868336

दिनांक 1नवम्बर 2019 समय 9AM

7.7. जीवनमूल्य, बाजारवाद एवं पर्यावरण का व्यावहारिक अध्ययन

आज सभी ओर समाज में कलुषित प्रवृतियों के कारण मानव में ईर्ष्या, द्वेष, मोह, मद की प्रवृतियाँ विकराल रूप धारण करती जा रही हैं। दूसरी ओर विज्ञान के बढ़ते प्रभाव के कारण, मानव आज उन्मनिया विकास के शिखर पर विराजमान होता जा

रहा है। आज के उपभोक्तावाद या यांत्रिकीकरण के प्रभाव से मानव इतनी बुरी तरह जकड़ा जा रहा है कि वह संवेदनशून्य होता जा रहा है। परिणामत: हमारे समाज में अनेक भयानक और विकराल परिस्थितियां जन्म लेने लगी। जैसे कन्या भ्रूणहत्या, आतंकवाद, दंगे-फसाद, किसानों की आत्महत्या, छात्रों की आत्महत्या, नारी अत्याचार, बलात्कार, पारिवारिक संबंधों में बदलाव, दहेज, हमारी खण्डित होती एकता और दलीयप्रतिबद्धता आदि बहुत सी समस्याएँ विकराल रूप धारण करती जा रही हैं। 21वीं सदी के ललित निबंधों की सबसे उल्लेखनीय विशेषता उनमें अंतर्निहित मानवीय मूल्य हैं। हिन्दी ललित निबंधों में ऐसे ही मानवीय मूल्यों के दर्शन होते हैं। जो समाज को एक नई दिशा दिखाने के लिए सार्थक सिद्ध होते हैं।

जीवनमूल्यों में कैसे ह्रास हो रहा है ?

1. मौलिक उन्नति और उपलब्धि के इस युग में मनुष्य की भौतिक सुखों के प्रति चेतना प्रबल हुई है। अधिकाधिक सुख की इच्छा, धन व पद की लिप्सा, दूसरों से आगे जाने की स्पर्धा, दूसरों से अधिक धनवान बनने की प्रबल इच्छा, सम्पन्न दिखाने की प्रबल इच्छा ने धीरे-धीरे मनुष्य को मनुष्य से दूर कर दिया। एक समय था जब मानव उत्सव प्रेमी था और अब उत्सवों में डूबकर भी वह आनंद नहीं ले पा रहा है।

2. परिणामस्वरूप मानवमूल्यों का क्षरण हुआ है। आज चारों ओर कटुता, वैमनस्य, शत्रुता, हिंसा, बदले की भावना, दूसरों के प्रति बुरे विचार आने लगे हैं। जिसके चलते आज संपूर्णविश्व में मानव त्रस्त है। यह सब आधुनिक प्रगति के कारण हुआ है। मानव ने बाहर के सुख-साधनों को पाने के लिए अपनी अंतरात्मा में होने वाले मानवमूल्यों रूपी रत्नों को खो दिया है।

गोपाल निर्दोष

बरेली, पटना (बिहार)

मो. 8340719234

दिनांक 10 दिसंबर 2019. समय 6PM

बाजारवाद का व्यावहारिक अध्ययन

आज बाजार का जमाना है। जिसमें हमारा पूरा अस्तित्व बाजार के नियंत्रण में आ चुका है और जो शेष है, वह भी जल्द ही बाजार की परिधि में दिखाई पड़ेगा। कोई क्या खाए, क्या पिए, कहाँ जाए, क्या पढ़े, क्या देखे और क्या सुने सब पर आज बाजार का पहरा है। बाजार ही आज यह सब तय करता है और अपने ही हिसाब से परोसता है। हमारा स्वाद और हमारा जयका सब ही तो आज बाजार के इशारे पर नाच रहा है। ज्ञान और कर्म की सभी इन्द्रियों पर बाजार का पहरा लगता जा रहा है। ऊपर से देखने पर लगता है कि बाजार एक उन्मुक्तता देता है, चुनने की छूट देता है और एक हद तक समर्थ होने का एहसास देता है। ऐसे में हम खुद को शक्तिशाली महसूस करने लगते हैं, पर यह हमारे मन का कोरा भ्रम होता है। क्योंकि इसका आधार आदमी की अपनी बुद्धि या विवेक न हो कर लुभावना विज्ञापन होता है, जो एक नया यथार्थ रचता है, जो आकर्षक और दिलासा देने वाला होता है। आज विज्ञापन हमें रचने लगा है और विज्ञापन की डोर व्यापारी के हाथ में है। जिसकी नजर केवल अपने स्वार्थ पर ही गड़ी रहती है। व्यापार और बाजार अब शायद सामाजिक जीवन को समझने के लिए अधिक सटीक और कारगर रूपक हो रहे है। हमारी जरूरतें और हमारी पहचान अब हम नहीं तय करते, वरन बाजार कर रहा है। बाजार हमसे चलता है जरूर, पर उसी के साथ ही यह भी उतना ही सच्च है कि बाजार हमें चलाता है।

बाजारवाद हमारे जीवन और समाज को कैसे प्रभावित कर रहा है ?

1. कोई क्या खाए, क्या पिए, कहाँ जाए, क्या पढ़े, क्या देखे और क्या सुने सब पर आज बाजार का पहरा है। बाजार ही आज यह सब तय करता है और अपने ही हिसाब से परोसता है।

2. वर्तमान समय में बाजार का उत्पाद दिन-प्रति-दिन बढ़ता जा रहा है। हर वस्तु को केवल अपने व्यक्तिगत मुनाफे के लिए खरीदा और बेचा जाता है। जिससे हमारा स्वार्थ पूरा हो जाये। हर किसी जगह पर आज बाजार है, चाहे वह घर हो, स्कूल हो, कोई सरकारी संस्था हो या व्यापारी हो, सभी को अपने स्वार्थ के लिए हर वस्तु में अपना मुनाफा देखना है, यही बाजार है।

3. हमारी जरूरतें और हमारी पहचान अब हम नहीं तय करते, वरन बाजार कर रहा है। बाजार हमसे चलता है जरूर, पर उसी के साथ ही यह भी उतना ही सञ्च है कि बाजार हमें चलाता है। जीवन के बाजारीकरण की यह प्रक्रिया बड़ी तीव्र गति से चल रही है और उपभोक्ता होने के गर्व में हम उपभोग्य बनते जा रहे हैं।

हेतराम भार्गव

चंडीगढ़ सेक्टर 35C

मो. 9829960882

दिनांक 10 जनवरी 2020 समय 8AM

पर्यावरण का व्यावहारिक अध्ययन

पर्यावरण का अर्थ हमारे चारों ओर के वातावरण और उसमें निहित तत्वों और उसमें रहने वाले प्राणियों से है। हम अपने चारों और उपस्थित वायु, जल, भूमि, पशु-

पक्षी, पेड़-पौधे आदि सभी को अपने पर्यावरण में शामिल करते हैं। जिस तरह से हम अपने पर्यावरण से प्रभावित होते हैं, उसी तरह से हमारा पर्यावरण हमारे द्वारा किये गए कृत्यों से प्रभावित होता है। आज हमारा पर्यावरण बहुत अधिक मात्रा में बिगड़ रहा है। जिसका प्रभाव हमारे स्वास्थ्य और समाज पर पड़ता है। आज की सबसे बड़ी समस्या पर्यावरण की है, वृक्ष की कटाई, अधिक मात्रा में कारखाने और उद्योग, जंगलों की कटाई, कीटनाशक की अधिक मात्रा, रेफ्रिजरेटर आदि जो बहुत प्रदूषण फैला रहे हैं। जिससे हमारा स्वास्थ्य आज बहुत बिगड़ रहा है। पर्यावरण की चिंता आज एक प्रमुख चिंता है। डॉ. दुबे के निबंध *अलोक अनवरत* में उनके अनुसार:

> अब बड़े नगरों में प्लास्टिक के पेड़ सड़कों पर लगाए जा रहे हैं, ये पेड़ एक ही दृश्य सज्जा में सदैव तैनात रहेंगे। न इन पर कोयल बोलेगी, और न इन पर भौरे डोलेंगे। ऋतु-परिवर्तन के बोध्कारी पहचान चिह्नों से लोग अनभिज्ञ होते जाएँगे। वह लोग तो अनभिज्ञ हो ही जाएँगे, जो विशाल भवनों के संकुल में जन्म लेंगे और वह उन सड़कों पर तेज रफ़्तार वाहनों में सवार होकर बड़े होंगे, जिन सड़कों पर धरती का वानस्पतिक साहचर्य उन्हें उपलब्ध नहीं हो पाएगा। (54)

पर्यावरण पर बात-चीत करते हुए मैंने मनमोहन सिंह से कुच्छ प्रश्न पूछे जिसका उत्तर उन्होंने आज हमारे बिगड़ रहे पर्यावरण के बारे में दिया।

पर्यावरण प्रदूषित होने के कौन से प्रमुख कारण हैं ?

1. मानव द्वारा निर्मित फैक्ट्री से निकलने वाले अवशेष हमारे वातावरण को बहुत प्रदूषित करते हैं। आज के समय में घर में इतने सदस्य नहीं होते जितने एक घर में वाहन होते हैं।

2. घर में छोटा सा बच्चा भी साइकिल की जगह गाड़ी चलाना पसंद करता है। मिलों, कारखानों तथा व्यावसायिक इलाकों से बाहर निकलने वाले धुएं तथा विषैली गैसों ने पर्यावरण की समस्या को उत्पन्न कर दिया है। आज हमारे जो साधन हैं बसों, कारों तथा ट्रकों से निकलने वाले अधिक विषैली गैंसों ने हमारे चारों तरफ प्रदूषण की समस्या को और गंभीर कर दिया है।

3. बहती नदियों में सीवरेज के गंदगी वाले पानी इस तरह से मिल जाते हैं, जिससे मानव और पशुओं का पीने का पानी बहुत गन्दा हो जाता है। जिसके परिणामस्वरूप दोनों निर्बलता, बीमारी तथा गंभीर रोगों के शिकार बन जाते हैं।

पर्यावरण को बचाने के लिए हमें क्या करना चाहिए ?

1. वर्तमान में मानव बिना कुच्छ सोचे-समझे पेड़ों को काटता जा रहा है, लेकिन आज वह यह बात नहीं सोचता कि हमें जीवन जीने के लिए वायु इन्हीं पेड़ों से प्राप्त होती है। हर घर में हर व्यक्ति को चाहिए पेड़ लगाये जाएँ।

2. दूसरा मानव की जीवन शैली को पर्यावरण की प्राकृतिक व्यवस्था के अनुरूप आचरणपरक बनाना जिससे पर्यावरण की गुणवता बनी रह सके।

3. कारखानों और मिलों से निकलने वाले धुएं एवं विषैली गैंसों का उचित प्रकार से निस्तारण किया जाना चाहिए और इसके लिए सफल कार्य किये जाने चाहिए।

4. कुच्छ राज्य सरकारों ने पर्यावरण की सुरक्षा के लिए बहुत से कानून भी लागू किये हैं। ऐसे ही और सख्त कानून का प्रावधान होना चाहिए। इस समस्या के समाधान के लिए जन साधारण का सहयोग बहुत ही सहायक एवं उपयोगी सिद्ध होता है। हमें भी सरकार की तरह हमारे वातावरण को बचाने के लिए कुच्छ नियम बनाने आवश्यक हैं।

4. विषैली गैंसों के निकलने वाले कम से कम साधनों का उपयोग हमें करना चाहिए। घर में कूड़ा आदि के लिए एक जगह निर्धारित करनी चाहिए, ऐसे खुले में नहीं फैंकना चाहिए, ऐसे ही हमारे वातावरण के लिए हमें भी सहयोग करना चाहिए।

मनमोहन सिंह

निवास - फरीदकोट

मो. 7696029618

दिनांक 27 दिसंबर 2020. समय 8AM

7.8. वर्तमान राजनीतिक दशा का व्यावहारिक अध्ययन

सोने की चिड़िया कहे जाने वाला भारत आज कहाँ जा रहा है। कुच्छ स्वार्थी लोगों ने हमारे समाज और संस्कृति को दुविधा में डाल दिया है। आज समाज और देश को निजात दिलाने के लिए न तो कोई राजनीतिक पार्टी अपने को आगे लाकर समाज में व्याप्त समस्या के समाधान पर गौर करती हुई दिख रही है, और न ही समाज को आजादी के पहले देश और समाज के लिए सब कुच्छ न्यौछावर कर देने को उतावला दिखाई पड़ता है, देश की आजादी के बाद में देश में रहने वाले नेताओं के सुर ही नहीं बदले, आज ऐसे दौर में समाज के वासियों का रहने का तरीका और सलीका बदल चुका है। हमारे देश के स्वार्थी नेताओं को समाज का सत्यनाश करके केवल अपने स्वहितों की पड़ी रहती है। हमारे आस पास घटित हो रही समस्याओं और नेताओं की गंदी नीति को हम अक्सर देखते और सुनते हैं, कैसे वह अपने चुनाव जीतने के लिए हमारे समाज के अनपढ़ लोगों को कुच्छ पैसे और नशीली वस्तुओं देकर अपना स्वार्थ निकाल रहे हैं। उससे भी बड़ी दुख की बात यह है कि हमारे पढ़े लिखे लोग ऐसे नेताओं का साथ देते हैं। कुच्छ पैसों के लिए और अपना ईमान बेच रहे हैं। अपना हक

बेच रहे हैं। हमारी आने वाली पीढ़ी को ऐसी स्थितियों से बचाना होगा, उनको यह ज्ञान देना आवश्यक है। मिश्र अपने निबंध संग्रह *अराजक उल्लास* में कहते हैं:

> हमारे देश ने सैंकड़ों वर्ष पश्चात सन 1947 में अंग्रेजी दासत्व से आजादी पाई थी। आजादी के समय देश के समस्त नेताओं ने गाँधी के 'रामराज्य' के स्वप्न को साकार करने का संकल्प किया था, परन्तु वर्तमान में भारत की राजनीति का अपराधीकरण जिस तीव्र गति से बढ़ रहा है, इसे देखते हुए कोई भी कह सकता है कि हम अपने लक्ष्य से पूर्णतया भटक चुके हैं। (99)

वर्तमान में हमारे भारत में राजनीतिक दशा बहुत बिगड़ चुकी है। राजनीति आज केवल स्वार्थ के लिए की जा रही है। हमने इसका व्यावहारिक अध्ययन करते हुए लोगों से बात-चीत की और वर्तमान राजनीति के बारे में विभिन्न प्रश्नों को प्रस्तुत किया।

वर्तमान में राजनीति कैसी है और क्या समस्याएँ हैं ?

1. आज भ्रष्टाचार, कालाबाजारी, स्वार्थ भावना आदि जैसी अनेक समस्याओं से भारतीय लोग झेल रहे हैं। कोई नेता पहले की तरह भारत के लिए कुच्छ करने के लिए दिखाई नहीं दे रहा। वर्तमान राजनीतिक दशा बहुत बिगड़ चुकी है।

2. आज सभी नेता अपने स्वार्थ के लिए वोट के लिए, या चुनाव जीतने के लिए कुच्छ भी करने को तैयार हैं। चाहे हमारी नई पीढ़ी इसमें कितनी बर्बाद क्यूँ न हो जाए, लेकिन राजनीतिक नेता लोगों को तो अपना स्वार्थ निकालना है।

3. आज हमारे देश में बेरोजगारी और भुखमरी की समस्या व्याप्त है, लेकिन राजनीतिक दल अपने स्वार्थों को लेकर संसद को केवल अपने स्वार्थ के लिए एक

अड्डा मानकर चल रहे हैं। आज हमारा समाज इस में पिछड़ रहा है। लेकिन नेता आज केवल अपने लिए काम करते नजर आते हैं।

राजनीति का हमारे समाज में कितना महत्व है ?

1. राजनीति का हमारे समाज में सबसे अधिक महत्व है। राजनीति हमारे हितों को सुरक्षित करने के लिए होती है। आम जन को जिसकी आवश्यक होती है, उसे वह मिलना चाहिए, लेकिन आज ऐसा नहीं हो रहा है।

2. राजनीति में बहुत सारे रास्ते अपनाये जाते हैं जैसे- राजनीतिक विचारों को आगे बढ़ाना, कानून बनाना, विरोधियों के विरुद्ध युद्ध आदि शक्तियों का प्रयोग करना। राजनीति विभिन्न प्रकार के स्तरों पर हो सकती है – गाँव की परम्परागत राजनीति से लेकर स्थानीय सरकार, सम्प्रभुत्वपूर्ण राज्य या अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर।

3. राजनीति ही है जो हमारे सत्र को ऊँचा उठाने का काम करती है। मानव के हितों को सुरक्षित और विकसित करना भी राजनीति का ही काम है।

वैश्वीकरण का राजनीति में क्या प्रभाव पड़ रहा है ?

1. वैश्वीकरण के इस दौर में लगता है कि विश्व की राजनीति आजकल तरह-तरह से अधिक मुनाफ़ाकमाने के लिए अर्थात आर्थिक लाभ के लिए चलाई जा रही है। जो देश अणुशस्त्रों का उत्पादन करते हैं, वे उन्हें खुलकर और कभी गुप्त रूप से दूसरे देशों को बेचते रहते हैं।

वैश्वीकरण का समर्थन करना चाहिए या नहीं ?

1. वैश्वीकरण का आज इस आधार पर समर्थन किया जा सकता है कि इसके माध्यम से नए विचारों, नई तकनीकों, नई वैज्ञानिक उपलब्धियों से भारत का परिचय होगा

और रोजगार के अवसरों में वृद्धि होगी और अर्थव्यवस्था में कुच्छ सुधार हो सकता है।

अशोक कुमार

पंजाब एग्रीकल्चर यूनिवर्सिटी, लुधियाना

मो. 9417259208

दिनांक 20 फरवरी 2020. समय 6PM

भृष्टाचार के क्या-क्या कारण हैं ?

1. भ्रष्टाचार के मूल में मानव का कुंठित अहंभाव, स्वार्थपरता, भौतिकता के प्रति आकर्षण, कुकर्म और अर्थ की प्राप्ति का लालच छुपा हुआ होता है। आज के समय में अपनों का पक्ष लेना या भाई- भतीजावाद भी भ्रष्टाचार का प्रमुख कारण है।

2. असमानता, आर्थिक, सामाजिक या सम्मान, पद प्रतिष्ठा के कारण भी व्यक्ति अपने आपको भ्रष्ट बना लेता है। भ्रष्टाचार आज एक बीमारी की तरह है। आज भ्रष्टाचार भारत देश में तेजी से बढ़ रहा है। आज जीवन का कोई भी क्षेत्र इससे बचा नहीं है, आज देखें तो नौकरी के लिए पैसा, किसी का आपसी मामला हो तो सभी सरकारी कर्मचारी पैसा वसूलते हैं, तभी उनका काम होता है।

3. मनुष्य का आचरण, जल्दी बडने की चाह, आर्थिक परिस्थिति, महत्वकांक्षा, लालच, दबाव वश भ्रष्टाचार, और कठोर कानून का न होना भी आज भ्रष्टाचार के प्रमुख कारण माने जाते हैं।

भृष्टाचार रोकने के क्या उपाय हो सकते हैं ?

1. आज हमारी राजनीति में ऐसे राजनीतिक नेताओं की आवश्यकता है, जो स्वार्थ से रहत हो निर्मल भावना वाले हों और हमारे समाज के लिए लोगों के हितों के लिए काम करें। भ्रष्टाचार तभी रुक सकता है।

2. सही समय पर वेतन बढ़ावा होना चाहिए और अधिकारी काम के पूरे होने चाहिए, जब किसी अधिकारी की कमी होती है, तब दूसरों को वहाँ अधिक कार्य करना पढता है। जो भ्रष्टाचार को बढ़ावा देता है। प्रशासनिक मामलों में जनता को भी शामिल किया जाना चाहिए, और बहुत अच्छे से लोकपाल कानून होने चाहिए।

3. भ्रष्टाचार को खत्म करना केवल सरकार का कर्तव्य नहीं है। हम सबको भी आज के समय में साथ मिलकर भ्रष्टाचार को समाप्त करने के लिए अपना साथ देना चाहिए और प्रयास करने चाहिए, इसके लिए अधिकतर जागरूकता फैलानी चाहिए।

4. हमें केवल अपने स्वार्थों तक सीमित नहीं रहना चाहिए, बल्कि दूसरों के सुख को अपना सिद्धान्त बनाकर चलना चाहिए, तभी हम इस समस्या से छुटकारा पा सकते हैं।

राजनीति में स्वार्थ क्यूँ बढ़ रहा है ?

1. आज हमारे देश की राजनीति भी स्वार्थ के लिए हो रही है। हमारे राजनेता केवल धन के लिए राजनीति करते हैं, उनको अपने हितों को देखना है, जनता के हितों की चिंता आज के नेताओं को नहीं है। राजनीतिक नेता अपनी वोट के लिए लोगों को पैसा देते हैं और साथ ही नशीली वस्तुओं देकर अपना स्वार्थ निकाल रहे हैं।

2. चुनाव के दौरान नेता हर किसी के घर जाते हैं, बड़े-बड़े वादे करते हैं और जब वह चुनाव में सफल हो जाते हैं, तब उनको कोई जनता नहीं दिखती और उनके हित नहीं दिखते। राजनीति हमारे शासन को चलाने के लिए और हमारे अधिकारों को सुरक्षित

रखने के लिए होती है। सही समय पर लोगों को उनके हक मिलने चाहिए तभी एक अच्छी व्यवस्था है।

अच्छी राजनीतिक व्यवस्था के लिए आज क्या करने की आवश्यकता है ?

1. आज हमें चाहिए कि हम अच्छी भावना और निर्मल व्यक्तित्व वाले नेताओं को चुनें तांकि हमारी सामाजिकता बनी रहे। अगर ऐसा नहीं हुआ तो हमारा समाज और भी अधिक समस्याओं से घिर जाएगा।

2. स्वार्थ की भावना को मिटाने के लिए हमें आगे आना होगा सभी लोगों को एक साथ मिलकर कार्य करना होगा कोई भी एक व्यक्ति कुच्छ नहीं कर सकता हमें सरकार के साथ मिलकर उसको योगदान देना चाहिए तांकि हमें सफलता हासिल हो। जब हमारी नई पीढ़ी को इन बातों का ज्ञान होगा तो आने वाले समय में अच्छे लोग आगे आएंगे और राजनेता भी स्वार्थी नहीं होंगे, तभी हमें अपने हक मिलेंगे।

मलूक कुमार क्लर्क (सहायक तहसीलदार)

निवास- जलालाबाद, जिला- फाज़िल्का

मो. 9417615022

दिनांक 25 फरवरी 2020. समय 10 AM

7.9. लोकगीत और लोकपरम्पराओं का व्यावहारिक अध्ययन

लोकगीत शब्द का अर्थ है, लोक में प्रचलित गीत, लोक निर्मित गीत, लोकविषयक गीत। लोक में प्रचलित गीत ही लोकगीत कहलाते हैं। लोकगीत और लोक परम्पराएँ भारतीय संस्कृति के परिचायक रहे हैं। वे आत्मा से फूट पड़ने वाले हर्ष, उल्लास, सुख-दुःख, व्यथा पीड़ा आदि के स्त्रोत हैं, जो यथासमय गाए जाते हैं।

21वीं सदी के निबंधों में भी लोकगीतों और लोक परम्पराओं के बारे में अपने विचार निबंधकारों ने प्रस्तुत किये हैं। डॉ. रामदरश मिश्र, डॉ. श्यामसुंदर दुबे, कैलाश वाजपेयी और डॉ. श्रीराम परिहार ने ग्रामीण संस्कृति और लोक संस्कृति को लेकर अपने विचार व्यक्त किये हैं। डॉ. रामदरश मिश्र ने अपने निबंध संग्रह *छोटे-छोटे सुख* में लोकगीतों के संदर्भ में लिखा है:

> लोकगीतों में लोकजीवन स्पंदित होता है। उसका समूचा वैभव इन गीतों के रूप में प्रस्फुटित होता है। परंपरा के रूप में गाए जाने वाले ये गीत जिनके रचयिताओं का कोई उल्लेख नहीं है, कभी-कभी इनके गायकों के व्यक्तित्व के साथ घुल-मिलकर एकमेव हो जाते हैं। (68)

इसी तरह श्रीराम परिहार ने अपने निबंध संग्रह *धूप का अवसाद* में लोक संस्कारों और लोक संस्कृति के स्वरूप के चित्रण में लोकगीत के अंश प्रयुक्त हैं। बेटी की विदा के समय परिवार के सदस्यों की मनोदशा को चित्रित करने वाला लोकगीत इस प्रकार दिया है:

माई के रोरा से नदिया बहत है,
बाबुल के शेरा बेला लाल मेरे लाल।
वीरन के शेरा छतिया फटत है
भौजी के जियरा कठोर मोरे लाल।(65)

21वीं सदी के निबंधों में हम यह कह सकते हैं कि लोकगीत, लोकपरंपराओं और लोकसंस्कृति की विभिन्न छवियाँ प्रतिबिंबित हुई हैं। निबंधों के केंद्र में ग्रामीण जीवन की अतीत की स्मृतियाँ हैं, जिसे लेकर यह कहा जा सकता है कि लोक से लगाव तथा चेतना से जुड़ते ही एक रचनाकार किस कदर अपनी सघन परंपराओं की उर्वरा भूमि

से जुड़कर लोक-स्मृतियाँ, लोकचरित्रों और लोकसंस्कारों को शास्त्र और लोक से समन्वित करते हुए किस तरह की सर्जना कर सकता है।

यहाँ पर हमने लोकगीत और लोकपरम्पराओं के बारे में एक किसान जसवंत सिंह से बात-चीत करते हुए कुच्छ प्रश्नों को प्रस्तुत किया। वर्तमान में इसके प्रति लोगों की क्या भावनाएँ हैं और किस तरह यह लुप्त हो रही हैं, इसका उत्तर इस प्रकार पाया।

लोकगीत का हमारी संस्कृति में क्या महत्व है ?

1. लोकगीतों से भौगोलिक सामग्री का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। लोक इन्हें गाकर भी मनोरंजन करते हैं। मनोरंजन तथा भाव भरे गीतों से धर्म और संस्कृति, परंपरा के विविध आयाम खुल जाते हैं। लोकगीत बच्चे, युवक-युवतियाँ और नर-नारी गाते हैं। बच्चों के लोकगीतों में कल्पना शक्ति के दर्शन होते हैं।

2. लोकगीतों को विविध प्रकार के अनुष्ठानों, उत्सवों, पर्वों या संस्कारों के अवसर पर गाकर अपनी परम्परागत रूढ़ि या मान्यताओं को प्रदर्शित किया जाता है। बदलती हुई ऋतुओं के साथ गीत गाए जाते हैं, जिनमें प्रकृति की बदलती हुई छटाओं को सामाजिक जीवन के साथ जोड़ा जाता है।

हमारी परम्परा में लोकसंस्कृति और लोकगीत हमारे आचरण को कैसे शुद्ध करते हैं ?

1. अंचल के लोक व्यवहार, उत्सव-पर्व, संस्कृति, सामाजिक संदर्भ, राष्ट्रीयता और मानवीय संबंधों की झांकी लोकगीतों के माध्यम से जितनी प्रभावात्मकता के साथ व्यक्त होती है, उतनी संभवत भाषा शैली के अतिरिक्त अन्य किसी माध्यम से नहीं।

2. इसी प्रकार किसी भी देश की लोकसंस्कृति वहाँ के लोकगीतों में आभाषित होती है और लोकगीतकार वहाँ की संस्कृति, सभ्यता, आचार-विचार, खान-पान, रहन-

सहन, तीज-त्यौहार संबंधी विविधताओं का प्रत्यक्ष दिग्दर्शक बनकर उन्हें लोकगीतों में अपने लोकगीतों के माध्यम से संस्कृति प्रस्तुत करने में सफल दिखाई देता है।

वर्तमान में लोक संस्कृति और लोकगीतों में बदलाव के क्या कारण हैं ?

1. आज आधुनिकता का समय है, आज हर काम मशीनों से बहुत जल्द हो रहा है। मनव भी आज पूरा मशीनों पर निर्भर हो चूका है, जिसके कर्ण पहले की तरह लोग एक-साथ मिलकर काम करना भूल गये हैं।

2. आज स्वार्थ, अधिक धनवान बनने की प्रबल इच्छा, दूसरों से आगे जाने की स्पर्धा ने भी इसको प्रभावित किया है। हर आदमी अपने अच्छे जीवन की तलाश में ही व्यस्त है। अब पहले की तरह शादी में लोकगीत नहीं गाये जाते, बल्कि डी. जे. लगाकर ही मनोरंजन किया जाता है। इस तरह की सोच और आधुनिक साधनों ने इसे बहुत प्रभावित किया है।

जसवंत सिंह

दानेवाला, मलोट, जिला- मुक्तसर

मो. 7589316188

दिनांक 5 जनवरी 2020. समय 6 PM

7.10. वर्तमान सांस्कृतिक जीवन का व्यावहारिक अध्ययन

हमारी संस्कृति और संस्कार अच्छे होंगे तो हमारा सांस्कृतिक जीवन बहुत सुंदर होगा, हमारे संस्कार और संस्कृति ही तो है, जो हमें अन्य क्षेत्रों से अलग करती है, अन्य संस्कृतियों से अलग करती है। हमें अपनी भारतीय संस्कृति और संस्कार पर गर्व है। हमारे अच्छे संस्कारों को देखकर अन्य लोग कहते हैं कि भारतीय संस्कृति बहुत

अच्छी है, यहाँ के लोगों के संस्कार चाहे वह बड़ों के प्रति हों, चाहे वह अपने देश प्रेम के प्रति हों बहुत अच्छे हैं। संस्कारों से ही तो हमारे भारतीय होने की अलग पहचान होती हैं। जब बड़े खड़े हों तो उनके सामने न बैठना, बड़ों को खाना पहले परोसना, एक छात्र के गुरु के प्रति संस्कार ऐसे ही संस्कार हमारे जीवन को और सुंदर बनाते हैं।

वर्तमान में सांस्कृतिक मूल्यों का व्यावहारिक अध्ययन करते हुए यहाँ हमने विभिन्न विषयों पर प्रश्न प्रस्तुत करते हुए शिक्षा विभाग के रिटायर शिक्षक धर्मपाल से बात चीत की और निम्न उत्तर प्राप्त किये-

हमारे संस्कार हमारी संस्कृति और समाज को कैसे प्रफुल्लत करते हैं ?

1. शुद्धता, पवित्रता, धार्मिकता एवं आस्तिकता संस्कार की प्रमुख विशेषताएँ हैं। मनुष्य अपने संस्कारों के माध्यम से ही सुसंस्कृत हो जाता है। संस्कारों से ही मानव की अंतर्निहित शक्तियों का विकास हो पाता है, तथा वह अपने लक्ष्य की प्राप्ति कर लेता है।

2. संस्कारों से ही तो हमारे भारतीय होने की अलग पहचान होती हैं। जब बड़े खड़े हों तो उनके सामने न बैठना, बड़ों को खाना पहले परोसना, एक छात्र के गुरु के प्रति संस्कार ऐसे ही संस्कार हमारे जीवन को और सुंदर बनाते हैं।

नई पीढ़ी में संस्कारों की भावना कैसी है ?

1. वर्तमान समय में हमारे संस्कारों में भी पहले जैसी भावना देखने को नहीं मिलती है। पहले समय में जो संबंध थे, वह आज बहुत कम देखने को मिलते हैं, आज शिक्षक के प्रति भी एक छात्र के पहले जैसे संस्कार नहीं है। घर परिवार में माता पिता के प्रति आज बच्चों के संस्कार पहले जैसे नहीं हैं, हर एक रिश्ते में आज बदलाव आ रहा है।

2. अगर हम कहें आज की पीढ़ी संस्कारी नहीं है, या इनमें संस्कारों का ज्ञान नहीं है, तो इसमें कोई संदेह नहीं है। संस्कार हमारे मानवीय जीवन को विकसित करते हैं और हमें अपने जीवन के सही मूल्यों की शिक्षा भी दिलाते हैं।

3. इसलिए यह बात स्पष्ट है कि संस्कार हमारे जीवन में बहुत महत्वपूर्ण हैं, इनके हनन होने से हमारे पूर्वजों या हमारे बड़ों को बहुत तकलीफ़ होती है। उनकी यह चिंता बहुत हद तक बिलकुल सही है, क्योंकि भारतीय संस्कृति में मानव का सम्पूर्ण जीवन धर्म से संबंधित है और इन्ही अच्छे संस्कारों से मानव का जीवन सुंदर और सफ़ल बनता है।

कला और विरासत का हमारी संस्कृति में क्या महत्व है ?

1. हमारी सांस्कृतिक विरासत हमारे लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। हमारे यहाँ विभिन्न जाति, धर्मों और पंथों के लोग रहते हैं, सभी के अपने अपने रीति-रिवाज और परम्पराएँ हैं। हम अपनी सांस्कृतिक विरासत और परम्पराओं को कभी भूल नहीं सकते हैं, क्योंकि वे हम में अंतर्निहित हैं, हमारे जीवन का अनिवार्य हिस्सा है।

2. ताजमहल, कुतुब मीनार, हवा महल और खजुराहों समूह के स्मारक सूर्य कोणार्क मन्दिर आदि हमारे देश के विरासत स्मारक हैं। हमारी भारतीय सांस्कृतिक विरासत अपनी विशालता के लिए जानी जाती है, इसमें हमारी स्मारक विरासत, हमारा साहित्य और कला के विभिन्न कार्य भी शामिल हैं।

भारतीय सांस्कृतिक विरासत के प्रमुख धरोहर स्थल कौन से हैं ?

1. अंडमान, लेह, चुंबकीय हिल, तमिलनाडु, बंजर द्वीप, जम्मू और कश्मीर, सियाचिन ग्लेशियर आदि हैं। ये सभी पृथ्वी के सच्चे चमत्कार हैं, भगवान की इन

अद्भुत कृतियों की झलक पाने के लिए दुनिया भर के लोग विशेष रूप में इन स्थानों पर जाते हैं। इन सब से हमारी संस्कृति और भी प्रफुल्लत होती है।

2. हमारे कुछ भूवैज्ञानिक स्थानों को यूनेस्को की विश्व प्राकृतिक धरोहर स्थलों में शामिल किया गया वह निम्न हैं- **ग्रेट हिमालयन नैशनल,नंदा देवी और फूलों की घाटी राष्ट्रीय उद्यान, पश्चिमी घाट, काजीरंगा राष्ट्रीय उद्यान।**

धरमपाल (रिटायर शिक्षा विभाग)

निवास- अबोहर, जिला फाज़िल्का

मो. 9855045917

दिनांक 1 मार्च 2020. समय 8 AM

प्रस्तुत अध्याय में सर्वेक्षण शोध प्रविधि का प्रयोग करते हुए, वर्तमान में प्रचलित समस्याओं पर विभिन्न लोगों के द्वारा दिए गए, सकारात्मक और नकारात्मक पक्षों को रखा गया है। सर्वेक्षण शोध प्रविधि के प्रयोग द्वारा, इस अध्याय में प्रमुख सांकेतिक निवारण बिन्दुओं का व्यावहारिक अध्ययन किया गया है। विभिन्न व्यक्तियों से बात-चीत करते हुए, प्रस्तुत शोध के तीसरे उद्देश्य को पूरा किया गया है।

21वीं सदी के कुछ निबंधकारों के साथ बात करते हुए, उनके बहुमूल्य विचारों को यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

आज सभी ओर समाज में कलुषित प्रवृतियों के कारण मानव में ईर्ष्या, द्वेष, मोह, मद की प्रवृतियाँ विकराल रूप धारण करती जा रही हैं। दूसरी ओर विज्ञान के बढ़ते प्रभाव के कारण, मानव आज उन्मनिया विकास के शिखर पर विराजमान होता जा रहा है। आज के उपभोक्तावाद या यांत्रिकीकरण के प्रभाव से मानव इतनी बुरी तरह जकड़ा जा रहा है कि वह संवेदनशून्य होता जा रहा है। परिणामत: हमारे समाज में

अनेक भयानक और विकराल परिस्थितियां जन्म लेने लगी। जैसे कन्या भ्रूणहत्या, आतंकवाद, दंगे-फसाद, किसानों की आत्महत्या, छात्रों की आत्महत्या, नारी अत्याचार, बलात्कार, पारिवारिक संबंधों में बदलाव, दहेज, हमारी खण्डित होती एकता और दलीयप्रतिबद्धता आदि बहुत सी समस्याएँ विकराल रूप धारण करती जा रही हैं।

डॉ. श्यामसुन्दर दुबे (निबन्धकार)

श्री चंडी जी वार्ड, हटा (दमोह) मध्य प्रदेश

मो. 09425405939, 09977421629

वर्तमान में राजनीतिक दल सबसे अधिक भ्रष्टाचार को बढ़ावा दे रहे हैं। आज सभी राजनेता अपने स्वार्थ के लिए काम कर रहे हैं। किसी को अपने किये गये वादे और जिम्मेदारियाँ याद नहीं है। हर समस्या के पीछे कोई न कोई कारण अवश्य होता है। इसी तरह से भ्रष्टाचार के पीछे बहुत कारण है। भ्रष्टाचार के मूल में मानव का कुंठित अहंभाव, स्वार्थपरता, भौतिकता के प्रति आकर्षण, कुकर्म और अर्थ की प्राप्ति का लालच छुपा हुआ होता है। आज के समय में अपनों का पक्ष लेना या भाई-भतीजावाद भी भ्रष्टाचार का प्रमुख कारण है। जब किसी को अभाव के कारण कष्ट होता है, वह भ्रष्ट आचरण करने के लिए विवश हो जाता है। असमानता, आर्थिक, सामाजिक या सम्मान, पद-प्रतिष्ठा के कारण भी व्यक्ति अपने आपको भ्रष्ट बना लेता है। भ्रष्टाचार आज एक बीमारी की तरह है। आज भ्रष्टाचार भारत देश में तेजी से बढ़ रहा है। आज जीवन का कोई भी क्षेत्र इससे बचा नहीं है, आज देखें तो नौकरी के लिए पैसा, किसी का आपसी मामला हो तो सभी सरकारी कर्मचारी पैसा वसूलते हैं, तभी उनका काम होता है।

मानवता के धर्म की फ़िक्र किसी को भी नहीं है। कहीं धर्म तो कहीं नस्लवाद की लड़ाई जारी है। भारत में धर्म और नस्लवाद की लड़ाई को नज़र अंदाज नहीं किया जा सकता देश की जनता की आँखें तरस गई हैं, इस बात के लिए कि कब जिस नेता को हम अपना बहुमूल्य वोट देके सत्ता तक पहुँचाया कभी वह जनता से किये गये वादों को पूरा करने हेतु सरकार से लड़ाई करता, कभी वह अपने क्षेत्र की जनता के लिए सस्ती शिक्षा, बेरोजगारी स्वास्थ्य, बिजली, पानी जीवन सुरक्षा के मसले हल न होने के कारण अनशन करता। **डॉ.**

श्रीराम परिहार (निबन्धकार)

आजाद नगर, खंडवा, मध्य प्रदेश

मो. 09425342748

भारत एक ऐसा देश है, जहाँ लोग विभिन्न धर्म, क्षेत्र, संस्कृति, परंपरा, जाति, रंग और पंथ के लोग एक साथ रहते हैं। भारत अपनी विविधता में एकता के लिए प्रसिद्ध है। भारत देश राष्ट्रीय एकता का ही मिशाल है। राष्ट्रीय एकता ही वह भावना है, जो विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों, जाति, वेश-भूषा, सभ्यता एवं संस्कृति के लोगों को एक सूत्र में पिरोए रखती है। हमारी भारतीय संस्कृति में पर्वों का विशेष स्थान है, यहाँ तक कि इसे पर्वों या त्यौहारों की संस्कृति कहना गलत नहीं होगा। पूरा साल भर हमारे यहाँ कोई न कोई पर्व या त्यौहार चलता ही रहता है। हर ऋतु में, हर महीने में कम से कम एक दो प्रमुख त्यौहार मनाये जाते हैं। कहा जाता है कि भारत पर्वों और त्यौहारों का देश है।

डॉ. गिरीश्वर मिश्र (निबन्धकार)

कुलपति, महात्मा गाँधी अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय, वर्धा

मो. 9922399666

निष्कर्ष

इस अध्याय में प्रमुख संकेतिक निवारण बिन्दुओं का व्यावहारिक दृष्टि से अध्ययन किया गया है। विभिन्न व्यक्तियों से बात-चीत करने पर हमें वर्तमान समय के प्रमुख निवारण बिन्दुओं का पता चलता है, साथ ही कौन से कारक आज मानवीय जीवन को प्रभावित कर रहें हैं, उनका भी पता चलता है। किसी भी विषय के बारे में हर व्यक्ति का अपना अलग दृष्टिकोण होता है। इसी तरह प्रस्तुत अनुसंधान में विभिन्न व्यक्तियों से बात-चीत करते हुए प्रमुख निवारण बिन्दुओं को विवेचित किया है।

सर्वेक्षण शोध प्रविधि के प्रयोग द्वारा, इस अध्याय में प्रमुख सांकेतिक निवारण बिन्दुओं का व्यावहारिक अध्ययन किया गया है। विभिन्न व्यक्तियों से बात-चीत करते हुए शोध के उद्देश्य को पूरा किया गया है। कौन से कारक आज हमारे समाज और संस्कृति को कैसे प्रभावित कर रहे हैं, इस पर विभिन्न व्यक्तियों के विचार इस अध्याय में प्रस्तुत किये गये हैं। जिससे हमें अपनी सांस्कृतिक स्थिति को बनाये रखने के आवश्यक गुणों का भी पता चलता है, जिसको भविष्य में अपना कर इन समस्याओं से साहित्य के द्वारा छुटकारा पाया जा सकता है।

उपसंहार

साहित्य समाज का दर्पण है और समाज की दिशा निर्देशन में सहायक होता है। भारतीय संस्कृति समाज का वह आवश्यक अंग है, जो हमारे समाज को एक नया दृष्टिकोण और उच्च आदर्श को प्राप्त कराने में सहायक होती हैं। मानव एक विवेकशील प्राणी है, जो एक समाज का निर्माण करता है। इसके पीछे उसकी सभ्यता और संस्कृति परिलक्षित होती है और इस संस्कृति और सभ्यता को उसके सिद्धान्त रचते हैं। स्वतंत्रता के समय और वर्तमान समय में अंतर आ चुका है। आज मानव जीवन एक दु:स्वप्न सरीखा हुआ जा रहा है। संशय, असुरक्षा, अनिश्चितता और तीव्र गति के दबाव आदमी के जीवन और उसके रोजमर्रा के कामकाज में ऐसे तनाव को जन्म दे रहे हैं, जो व्यक्तिगत स्वास्थ्य के साथ-साथ सामाजिक सद्भाव को गहरा आघात पहुंचा रहे हैं। वर्तमान में मानव ने अपनी योजना के तहत, अपना ध्यान अपनी सीमित स्व की मांगों की आपूर्ति तक संकुचित रखा है। आज जो कुछ हो रहा है, वह एक गहराते सांस्कृतिक संकट का संकेत है। सांस्कृतिक मूल्यों की जीवन और व्यवहार में सार्थक अभिव्यक्ति है और सतर्क, संवेदनशील दृष्टि में उनकी तलाश ही हमारा मार्ग प्रशस्त कर सकती है।

किसी भी क्षेत्र के लोक जीवन एवं संस्कृति को वहां निवास करने वाले लोगों के स्वभाव, रहन-सहन, खान-पान, बोली, वेशभूषा, विविध संस्कारों, लोक विश्वास, धार्मिक प्रवृति एवं देवी देवता, पर्व एवं उत्सव, लोक-कथा, लोक-गीत, रीती-रिवाज, आदि के माध्यम से अच्छी प्रकार समझा जा सकता है। मानव जीवन के क्रिया-कलाप, आहार-विहार, आचार-विचार आदि क्रियाएं संस्कृति का धात्वर्थ है। संस्कृति किसी

जाति या देश की आत्मा है। इससे उन सब संस्कारों का बोध होता है। जिनके सहारे मानव अपने सामूहिक जा सामाजिक जीवन के आदर्शों का निर्माण करता है। इसी लक्ष्य को आधार बनाकर प्रस्तुत शोध में इन्हीं बिन्दुओं पर विचार किया गया है, जो हमारे मानव जीवन में आवश्यक हैं और 21वीं सदी के निबंधों के परिपेक्ष्य इसको स्पष्ट किया गया है।

मनुष्य जीवन संघर्षों में सीमित रहने वाला प्राणी मात्र न होकर, सामाजिक संस्कृति का निर्माता है। संस्कृति मानव जीवन की ऐसी अवधारणा है, जो उसे गतिशील बनाए रखने का उद्यम करती है। एक ऐसा पर्यावरण है, जिसमें रहकर मनुष्य एक सामाजिक प्राणी बनने के साथ-साथ प्राकृतिक दशाओं को अपने अनुकूल बनाने की क्षमता प्राप्त करता है। यह उसी क्षमता का परिणाम है कि कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी मनुष्य, स्वयं को परिवर्तित करते हुए समयानुकूल ढल जाता है।

मानव में सृष्टि के प्रारंभ से ही जीवन जीने की आकांक्षा उत्पन्न हुई और इस जीवन के सुखद क्षणों की खोज में वह सदा से प्रवृत्त रहा है। प्रकृति के द्वारा दी गई सुविधाओं से संतुष्ट न रहकर, वह अधिक से अधिक वस्तुओं को अपने लिए उपयोगी बनाने में सदैव प्रयत्नशील रहा है। सामाजिकता के संरक्षण में पुष्पित एवं पल्लवित होने वाली भावभूमि पर यह मनुष्य का सांस्कृतिक जीवन है। प्रकृति अन्य प्राणियों को जैसा रखना चाहती है, वह वैसे ही रहते हैं, परन्तु मनुष्य अपना विकास करने के लिए दूसरे जीवधारियों से अधिक प्रयत्न करता आया है।

संस्कृति किसी एक समाज में पाई जाने वाली उच्चतम मूल्यों की वह चेतना है, जो सामाजिक प्रथाओं, व्यक्तिओं की चितवृतियो, भावनाओं, मनोवृतियों, आचरण के साथ-साथ, उसके द्वारा भौतिक पदार्थों को विशिष्ट स्वरूप दिए जाने में अभिव्यक्त

होती है। संस्कृति जीवन जीने का एक विशिष्ट दृष्टिकोण है। अनुभव के मूल्यांकन और व्याख्या का एक विशिष्ट और मूलभूत प्रकार है। धर्म, नीति, भक्ति और दर्शन, समाज, राजनीति, यह संस्कृति के प्रमुख तत्व हैं, जो हमारी संस्कृति को प्रभावित करते हैं। इन्हीं प्रमुख तत्वों में मानव का जीवन निहित है, जिसमें वर्तमान समय में कुछ बदलाव आ चुके हैं। जिन पर गहन चिन्तन करते हुए निबंधकारों के द्वारा किये गए प्रयासों को स्पष्ट किया गया है, जो हमारे सामाजिक विकास के लिए सफल प्रयोग है।

चेतना मनुष्य के मस्तिष्क में क्रियाशील और गतिशील भावावेग बोध की प्रक्रिया है। इसी के माध्यम से व्यक्ति, निरीक्षण, चिंतन, शंका, तर्क-ज्ञान और इच्छा से सम्बन्ध मानसिक स्वरूपों से परिचित होता है और निश्चित समय में अपने मानस में चलने वाले घात-प्रतिघातों को परख सकता है। मनुष्य की चेतना इस बात पर निर्भर करती है, व्यक्ति के अन्दर सोच-शक्ति, विचार-शक्ति, संचित-शक्ति, चिंतन-शक्ति विद्यमान है और वह इनका प्रयोग कर सकता है। चेतना वह विशेष गुण है, जो मनुष्य को जीवन प्रदान करती है, जिसके द्वारा वास्तविकता व्यक्त होती है और जीवन के विभिन कार्य चलते रहते हैं। आन्तरिक बोध द्वारा विचार, रुचि, मन और आचरण का परिष्कार एवं उन्नत करने की प्रक्रिया सांस्कृतिक चेतना है।

भक्ति मनुष्य के राग-द्वेषों का परिमार्जन करती हुई, उसे निरन्तर उदात्तता की ओर अग्रसर किए रखती है। मानव के विचारों का उदातीकरण जितना अधिक होता जाता है, उतना ही मानव अधिक सुसंस्कृत होता जाता है। संस्कृत व्यक्ति ही अपने राष्ट्र को सांस्कृतिक गरिमा प्रदान करने में विशेष योगदान प्रदान करते हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि भक्ति संस्कृति का एक बहुत महत्वपूर्ण अंग है, इसको

संस्कृति से अलग नहीं मानना चाहिए। भक्ति से ही चिरकाल समय में मानव को सही रास्ता दिखाया जाता था और मानव बुरे रास्ते पर नहीं चलता था। मानव ईश्वर की सच्ची भक्ति में विश्वाश करता है, सेवा करना और भजन करना मानव ने भक्ति से ही प्राप्त किया है। अपनों से बड़ों की सेवा अपने गुरु की सेवा करना भक्ति से ही मानव ने प्राप्त किया है और अपने जीवन में उसने अच्छे संस्कार पैदा किये हैं। शोध के उद्देश्य को पूरा करते हुए, 21वीं सदी के हिन्दी निबंधकारों द्वारा किये गये प्रयासों को यहाँ स्पष्ट किया गया है और समय के साथ प्रत्यावर्तित स्वरूप को दर्शाया गया है, जिससे हमें वर्तमान में प्रचलित समस्याओं का ज्ञान भी मिलता है और उनको समझने की दृष्टि भी मिलती है। इसी दृष्टिकोण से वर्तमान समस्याओं से छुटकारा पाना ही हमारे शोध का प्रमुख लक्ष्य है, जिसका प्रयोग साहित्य के द्वारा हमारे समाज के विकास के लिए किया जा सकता है।

प्रत्येक व्यक्ति के लिए धर्म का पालन करना आवश्यक माना गया है। इसी धर्म के बल पर ही मानव में आत्मविश्वाश एवं आत्मशुद्धि का भाव जागृत होता है। धर्म सार्वभौमिक होता है। पदार्थ हो जा मानव पूरी पृथ्वी के किसी भी कोने में बैठे मानव या पदार्थ का धर्म एक ही होता है। धर्म सार्वकालिक होता है, यानी प्रत्येक काल के युग में धर्म का स्वरूप वही रहता है। धर्म कभी बदलता नहीं है। भारतीय संस्कृति और दर्शन में धर्म सदैव एक महत्वपूर्ण संकल्पना रहा है। पाश्चात्य जगत में भी धर्म और राजनीति में अटूट सम्बन्ध रहा है। सांस्कृतिक चेतना में धर्म की भूमिका महत्वपूर्ण मानी जाती है। व्यक्ति को यदि अपने वास्तविक धर्म का बोध हो जाए, तो वह जीवन में भटकाव के मार्ग पर न बढ़ कर स्थायित्व की तरफ बढ़ने का प्रयास करता है।

समाज एक से अधिक लोगों के समुदायों से मिलकर बने एक वृहद समूह को कहते हैं, जिसमें सभी व्यक्ति मानवीय क्रियाकलाप करते हैं। मानवीय क्रियाकलाप में आचरण, सामाजिक सुरक्षा और निर्वाह आदि की क्रियाएँ सम्मिलित होती हैं। समाज लोगों का एक ऐसा समूह होता है, जो अपने अंदर के लोगों के मुकाबले अन्य समूहों से काफी कम मेलजोल रखता है। एक व्यक्ति से मिलकर एक परिवार बनता है और परिवार से मिलकर एक गाँव बनता है, फिर सभी का समूह मिलकर एक समाज बनता है। किसी समाज के अंतर्गत आने वाले व्यक्ति एक दूसरे के प्रति परस्पर स्नेह तथा सहृदयता का भाव रखते हैं। दुनिया के सभी समाज अपनी एक अलग पहचान बनाते हुए, अलग-अलग रस्मों-रिवाजों का पालन करते हैं।

राजनीति दो शब्दों का एक समूह है राज + नीति। राज का अर्थ होता है, शासन और नीति का अर्थ होता है, उचित समय और उचित स्थान पर, उचित कार्य करने की कला। अर्थात नीति विशेष के द्वारा शासन करना या विशेष उद्देश्य को प्राप्त करना ही राजनीति कहलाती है। अगर हम दूसरे शब्दों में कहें तो जनता के सामाजिक एवं आर्थिक स्तर को ऊँचा करना ही राजनीति है। नागरिक स्तर पर या व्यक्तिगत स्तर पर कोई विशेष प्रकार का सिद्धान्त एवं व्यवहार ही राजनीति के अंतर्गत आता है। हमारे देश में अच्छे कार्य करना, शासन के द्वारा एक ईमानदार राजनेता के द्वारा लोगों के हितों के लिए किया गया कार्य राजनीति के अंतर्गत आता है। अगर एक धार्मिक राजनेता होगा वह गरीब लोगों को उनके सही बनते हक देगा और वह स्वार्थ के बारे कभी भी अपना दृष्टिकोण नहीं अपनाएगा, इसी को राजनीति से परिभाषित किया जाता है। शासन के द्वारा उचित समय पर उचित कार्य करने की कला सबसे अच्छी राजनीति है। राजनीति को लेकर आज जो कारक प्रभावित कर रहे हैं, उनके

ऊपर विस्तार से चर्चा की गई है, जो 21वीं सदी के निबंधों में प्रस्तुत हैं। सांस्कृतिक समन्वय के क्षेत्र में हिन्दी निबंधकारों द्वारा किये गए प्रयासों की पहचान करते हुए, इसमें बदलते जीवन मूल्यों के सन्दर्भ में सांस्कृतिक चेतना और उसके महत्व को रेखांकित किया गया है, जिसका उपयोग साहित्य के द्वारा हमारे समाज में किया जा सकता है, जो हमारे इस शोध का उद्देश्य है।

वर्तमान में हमारे सांस्कृतिक मूल्य बदल रहे हैं, जिन पर इस अध्ययन में विशेष रूप से चर्चा की गई है। हमारे जीवन के तहस-नहस होते मूल्यों को यहाँ बताया गया है साथ ही आज जो बिंदु हमारे जीवन को प्रभावित करते हैं, उनको यहाँ विवेचित किया गया है। वर्तमान में हमें इनसे बचने के लिए जो आवश्यक गुण है, वह भी बताये गये हैं, जिनका उपयोग कर अपने जीवन में इनको अपनाकर अपना सांस्कृतिक विकास कर सकते हैं। 21वीं सदी के निबंधों की सबसे उल्लेखनीय विशेषता उनमें अंतर्निहित मानवी मूल्य है। हिन्दी निबंधों में ऐसे ही मानवीय मूल्यों के दर्शन होते हैं, जो समाज को एक नई दिशा दिखाने के लिए सार्थक सिद्ध होते हैं। मौलिक उन्नति और उपलब्धि के इस युग में मनुष्य की भौतिक सुखों के प्रति चेतना प्रबल हुई है। अधिकाधिक सुख की इच्छा, धन व पद की लिप्सा, दूसरों से आगे जाने की स्पर्धा, दूसरों से अधिक धनवान बनने की प्रबल इच्छा, सम्पन्न दिखाने की प्रबल इच्छा ने धीरे-धीरे मनुष्य को मनुष्य से दूर कर दिया।

ऐतिहासिक, आलोचनात्मक, तुलनात्मक, सर्वेक्षण शोध प्रविधियों का प्रयोग करते हुए, शोध कार्य को पूरा किया गया है, जो हमारे शोध के उद्देश्य को पूरा करते हैं। सभी अध्यायों में इन शोध प्रविधियों का प्रयोग किया गया है, जिनमें प्रमुख रूप से

आलोचनात्मक शोध प्रविधि का प्रयोग किया गया है। रचनाकार एवं उसकी कृति में उल्लेखित सूत्रों का आलोचनात्मक अध्ययन करते हुए, नवीन निष्कर्षों को प्राप्त किया गया है। तुलनात्मक शोध प्रविधि में कृतियों अथवा प्रवृतियों का सत्र और विषम तत्वों की दृष्टि से अध्ययन किया गया है। किसी भी विधा में रचनाकार किस परिस्थितियों में किस प्रकार की रचना करते हैं, उन कार्यों का भी अध्ययन करते हुए, तुलनात्मक विवेचन द्वारा शोध के उद्देश्य को पूरा किया गया है। ऐतिहासिक शोध प्रविधि में इतिहास में उपलब्द्ध मूल्यों के स्वरूप, उनके आधार, उनके पालन सम्बन्धी सिद्धान्तों का अध्ययन करते हुए, अनेक शब्दों के अर्थ को प्रस्तुत करके इस विधि का प्रयोग किया गया है। अंतिम अध्याय में सर्वेक्षण शोध प्रविधि का प्रयोग करते हुए, विभिन्न व्यक्तियों से बात-चीत की और प्रमुख सांकेतिक निवारण बिन्दुओं का व्यावहारिक अध्ययन किया गया है। इसी तरह हमारे शोध कार्य के उद्देश्य भी सभी अध्यायों में पूरे हो रहे हैं, किसी विशेष उद्देश्य को किसी एक अध्याय में नहीं रखा गया है, बल्कि कुछ उद्देश्य सभी अध्यायों में पूरे हो रहे हैं।

21वीं सदी के निबंधकारों ने अनेक बुराईयों एवं विषमताओं को अत्यधिक निकट से देखा है और पाठकों को देखने के लिए बाध्य भी करते हैं। हमारे समाज में वर्तमान में जो कुछ हो रहा है, उसको उन्होंने अच्छी तरह देखा समझा और हमारे समक्ष अपने विचार प्रस्तुत किये हैं, जिनसे हमें अपने समय की एक-एक समस्या का पता चलता है। संस्कृति के प्रचार एवं पसार की भावना से अनुप्राणित होने के कारण वर्तमान निबंधों में संस्कृति के विविध पक्ष, अपने सहज और स्वभाविक रूप में उतरते चले गए हैं। वर्तमान के निबंधकारों के निबंधों में सांस्कृतिक उन्नयन के सहज प्रहरी के रूप में दिखाई देते हैं।

शोध के उद्देश्य को पूरा करते हुए, नवीन निष्कर्षों को प्राप्त किया गया है, और महत्वपूर्ण उपलब्धियों को हासिल किया गया है। 21वीं सदी के निबंधों में विभिन्न विषयों पर निबंधकारों ने अपने विचार व्यक्त किए हैं, जिनका अध्ययन करते हुए, शोध को पूरा किया गया है। इस शोध में डॉ. सुधेश और डॉ. कैलाश वाजपेयी ऐसे निबंधकार हैं, जिनके निबंधों पर पहले कोई काम नहीं हुआ है। इनके निबंधों में बहुत संदेश समाए हुए हैं, जिनको इस शोध में विवेचित किया गया है। डॉ. कैलाश वाजपेयी के दो निबंध संग्रह *शब्द-संसार* और *हैं कुछ दीखें और* में लगभग 120 महत्वपूर्ण निबंध संकलित हैं। डॉ. सुधेश के निबंध संग्रह *चिन्तन-अनुचिन्तन* में 30 निबंध संकलित हैं। वर्तमान समय की एक-एक समस्या पर, उन्होंने अपने विचार अपने निबंधों में व्यक्त किए हैं। डॉ. कैलाश वाजपेयी और डॉ. सुधेश के निबंधों को प्रस्तुत कर इस शोध में महत्वपूर्ण उपलब्धि हासिल की गई है। डॉ. कैलाश वाजपेयी और डॉ. सुधेश के निबंधों में बाजारवाद, सामाजिक चेतना, संस्कृति, धर्म, भक्ति, बदलते जीवन मूल्य, दलीय प्रतिबद्धता, आदि महत्वपूर्ण विषयों पर निबंध लिखे गए हैं। ऐसे निबंधकारों पर भविष्य में सफल शोध किया जा सकता है।

वर्तमान निबंधों का अध्ययन करते हुए, भविष्य में शोध की महत्वपूर्ण सम्भावनाओं को प्रस्तुत किया गया है। इन निबंधों में और भी भविष्य में शोध किया जा सकता है। 21वीं सदी के महत्वपूर्ण निबंधों का अध्ययन, चिन्तन-मनन करते हुए, शोध के उद्देश्य को पूरा किया गया है। 21वीं सदी के निबंधकारों के निबंधों पर भविष्य में विभिन्न विषयों पर शोध की संभावनाएँ हैं।

डॉ. कैलाश वाजपेयी और डॉ. सुधेश के निबंधों में बदलते जीवन-मूल्य एक तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. श्रीराम परिहार और डॉ. श्यामसुन्दर दुबे के निबंधों में सांस्कृतिक संदर्भ एक तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. श्यामसुन्दर दुबे के ललित निबंधों में ग्रामीण चित्रण

डॉ. श्रीराम परिहार के निबंधों में सामाजिक चेतना

21वीं सदी के दूसरे दशक के ललित निबंधों में बदलते मानवीय मूल्य

21वीं सदी के हिंदी निबंधों में लोक संस्कृति का बदलता परिवेश

हिंदी निबंध साहित्य में ग्रामीण संस्कृति (21वीं सदी के विशेष संदर्भ में)

21वीं सदी का हिंदी निबंध साहित्य स्वरूप एवं विश्लेषण

21वीं सदी का निबंध साहित्य एक विवेचन

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

आधार ग्रन्थ

दुबे, श्यामसुन्दर. *कोई खिड़की इसी दीवार से*. मेधा बुक्स, 2006.

दुबे, श्यामसुन्दर. *नेह के नेग*. ए पी बुक्स, 2009.

दुबे, श्यामसुन्दर. *राम-रंग-रस भींजी चुनरिया*. ए पी बुक्स, 2010.

दुबे, श्यामसुन्दर. *अलोक अनवरत*. यश पब्लिकेशन, 2012.

दुबे, श्यामसुन्दर. *जहाँ देवता सोते हैं*. बोधि प्रकाशन, 2017.

दुबे, श्यामसुन्दर. *काल-क्रीडित*. यश पब्लिकेशन, 2017.

परिहार, श्रीराम. *परम्परा का पुनराख्यान*. यश पब्लिकेशन, 2012.

परिहार, श्रीराम. *रसवंती बोले तो*. यश पब्लिकेशन, 2018.

परिहार, श्रीराम. *धूप का अवसाद*. यश पब्लिकेशन, 2018.

मिश्र, रामदरश. *छोटे-छोटे सुख*. भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 2006.

मिश्र, कृष्ण बिहारी. *अराजक उल्लास*. भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 2010.

वाजपेयी, कैलाश. *शब्द संसार*. भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 2008.

वाजपेयी, कैलाश. *है कुछ-दीखें और*. भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 2012.

सुधेश. *चिन्तन-अनुचिन्तन*. यश पब्लिकेशन, 2012.

कोश ग्रन्थ

आप्टे, वामन शिवराम. *संस्कृत हिन्दी कोश*. भारतीय विद्या प्रकाशन, 2001.

चतुर्वेदी, द्वारका प्रसाद. *संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ*. रामनारायण लाल, 1957.

टण्डन, प्रेमनारायण. *साहित्यिक शब्दावली*. हिन्दी साहित्य भण्डार, 1962.

तिवारी, भोलानाथ तथा अन्य. *व्यावहारिक हिन्दी कोश*. नैशनल पब्लिशिंग हाउस, 1974.

दास, श्यामसुन्दर. *हिन्दी शब्द सागर*. नागरी प्रचारिणी सभा, 1986.

प्रसाद, कलिका. *वृहद हिन्दी कोश*. ज्ञानमण्डल, 1986.

वर्मा, रामचंद्र. *मानक हिन्दी कोश (खण्ड-2)*. हिन्दी साहित्य सम्मलेन, सम्वत 2019.

सहायक ग्रन्थ

अग्रवाल, वासुदेव. *साहित्य और संस्कृति*. विश्वविद्यालय प्रकाशन, 1967.

अज्ञेय. *हिन्दी साहित्य आधुनिक परिदृश्य*. राधाकृष्ण प्रकाशन, 1967.

अमरनाथ. *हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली*. राजकमल प्रकाशन, 2012.

अग्रवाल, पुरुषोतम. *संस्कृति : वर्चस्व और प्रतिरोध*. राजकमल प्रकाशन, 2009.

उपाध्याय, बलदेव. *भारतीय दर्शन*. चौखम्बा ओरियन्टल, 1976.

उपाध्याय, भगवत शरण. *भारतीय संस्कृति के स्रोत*. पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, 2006.

उपाध्याय, कृष्णदेव. *लोक संस्कृति की रूपरेखा*. लोकभारती प्रकाशन, 2014.

उपाध्याय, रामजी. *भारतीय धर्म और संस्कृति*. लोकभारती प्रकाशन, 2014.

कपिल, एच.के. *अनुसन्धान विधियाँ*. एच बी पी, 2015.

कुमार, ऋषि. सम्पा. *रेणु का कथेतर साहित्य : समाज-संस्कृति*. संस्करण प्रथम, अमन प्रकाशन, 2012.

गुलाबराय. *भारतीय संस्कृति*. रवीन्द्र प्रकाशन, 1975.

गुप्त, गंगाप्रसाद. *हिन्दी साहित्य में निबंधकार*. रचना प्रकाशन, 1971.

गुप्त, गणपति चन्द्र. *साहित्यिक निबन्ध*. लोकभारती प्रकाशन, 1996.

चतुर्वेदी, सन्तोष कुमार. *भारतीय संस्कृति*. लोकभारती प्रकाशन, 2017.

चन्द्र, सोती वीरेन्द्र. *भारतीय संस्कृति के मूल तत्व*. राजपाल एण्ड सन्ज, 2010.

तिवारी, गंगा सागर. *भारतीय साहित्य, संस्कृति व समाज*. हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 1986.

तिवारी, रामचन्द्र. *हिन्दी का गद्य साहित्य*. विश्वविद्यालय प्रकाशन, 1992.

तिवारी, अशोक. सम्पा. *प्रतियोगिता साहित्य*. संस्करण प्रथम, साहित्य भवन, 2012.

देवराज. *भारतीय संस्कृति*. हिन्दी समिति सूचना विभाग, 1966.

द्विवेदी, हरिहरनाथ. *उद्धत : निबंध : सिद्धांत और प्रयोग*. लोकभारती प्रकाशन, 1971.

देशवाल, संतराम. *हिन्दी ललित निबंध : स्वरूप एवं मूल्याँकन*. प्रेम प्रकाशन मन्दिर, 1988.

दिवेदी, आचार्य हज़ारीप्रसाद. *अशोक के फूल*. लोक भारती प्रकाशन, 1999.

दिनकर, रामधारी सिंह. सम्पा. *चिन्तन के आयाम*. संस्करण पहला, लोकभारती प्रकाशन, 2008.

दिनकर, रामधारी सिंह. *संस्कृति के चार अध्याय*. लोकभारती प्रकाशन, 1956.

दास, श्यामसुन्दर. *भाषा विज्ञान*. प्रकाशन संस्थान, 2011.

दुबे, श्यामाचरण. *परंपरा इतिहास-बोध और संस्कृति*. राधाकृष्ण प्रकाशन, 2014.

नगेन्द्र. *हिन्दी साहित्य का इतिहास*. नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1973.

नलिन, जयनाथ. *हिंदी निबंधकार*. आत्माराम एण्ड सन्स, 1964.

नलिन, जयनाथ. *हिंदी निबंध के अलोक शिखर*. सस्ता साहित्य भण्डार, 1993.

पाण्डेय, रामखेलावन. *भातीय संस्कृति और सांस्कृतिक चेतना*. राधाकृष्ण प्रकाशन, 1967.

पाण्डेय, बी.एन. *भारतीय संस्कृति*. हिंदी अकादमी, 1993.

बाहरी, हरदेव. *व्यावहारिक हिन्दी व्याकरण तथा रचना*. लोक भारती प्रकाशन, 2013.

माचवे, प्रभाकर. *हिन्दी निबंध*. राजकमल प्रकाशन, 1955.

मिश्र, विद्यानिवास. *कदम की फूली डाल*. नया साहित्य प्रकाशन, 1972.

मिश्र, विभूराम. *प्रतिनिधि हिंदी निबंधकार*. शिल्पी प्रकाशन, 1992.

मिश्र, भगीरथ. *काव्यशास्त्र*. विश्वविद्यालय प्रकाशन, 1996.

मिश्र, सत्यप्रकाश. सम्पा. *भारतेन्दु के श्रेष्ठ निबन्ध*. संस्करण प्रथम, लोकभारती प्रकाशन, 2002.

मिश्र, हृदयेश तथा शिवलोचन पाण्डेय. *हिन्दी साहित्य का इतिहास*. भारती भवन, 2006.

मायावंशी, के एम. सम्पा. *कुबेरनाथ राय के निबंधों का आलोचनात्मक अनुशीलन*. संस्करण प्रथम, चिन्तन प्रकाशन, 2014.

वार्ष्णेय, लक्ष्मीसागर. *हिन्दी साहित्य का इतिहास*. लोक भारती प्रकाशन, 1955.

वर्मा, रामचन्द्र. *अच्छी हिन्दी*. लोक भारती प्रकाशन, 2008.

वाजपेयी, नंददुलारे. *हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास*. स्वराज प्रकाशन, 2013.

वर्मा, धीरेन्द्र. *हिन्दी भाषा का इतिहास*. हिन्दुस्तान एकेडमी, 2002.

विद्यालंकार, सत्यकेतु. *भारतीय संस्कृति का विकास*. श्री सरस्वती सरन, 1994.

शुक्ल, रामचन्द्र. *चिन्तामणि*. लोकभारती प्रकाशन, 1931.

शर्मा, मुंशीराम. *भक्ति का विकास*. चौखम्बा विया भवन, 1958.

शुक्ल, वल्लभ. *हिन्दी के वैयक्तिक निबंध*. साहित्य भवन प्रा.लि., 1963.

शुक्ल, सच्चिदानंद. *भारतीय संस्कृति के विविध आयाम*. हिन्दुलौजी बुक्स, 2012.

शर्मा, विनयमोहन. *शोध प्रविधि*. नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1973.

शर्मा, आर. ए. *शिक्षा अनुसन्धान के मूल तत्व एवं शोध प्रक्रिया*, अनु बुक्स, 2019.

शर्मा, ओंकारनाथ. *हिंदी निबंध का विकास*. अनुसंधान प्रकाशन, 1964.

शर्मा, राजमणि. *आधुनिक भाषा विज्ञान*. वाणी प्रकाशन, 1999.

शर्मा, गीतेश. *धर्म के नाम पर*. राजकमल प्रकाशन, 2000.

शर्मा, रामविलास. *भाषा और समाज*. राजकमल प्रकाशन, 2010.

सक्सेना, द्वारिकाप्रसाद. *सकेत के काव्य: संस्कृति और दर्शन*. विनोद पुस्तक मंदिर, 1973.

सत्येन्द्र. *निबंध निलय*. वाणी प्रकाशन, 2005.

सक्सेना, द्वारिका प्रसाद. *हिन्दी के प्रतिनिधि निबंधकार*. विनोद पुस्तक मन्दिर, 1980.

सिंह, विजयपाल. सम्पा. *प्रबंध-प्रभाकर*. संस्करण आठवाँ, लोकभारती प्रकाशन, 2016.

सिंह, कुंवरपाल. *साहित्य और राजनीति*. भाषा प्रकाशन, 1981.

सिंह, बच्चन. *आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास*. लोकभारती प्रकाशन, 1986.

सक्सेना, द्वारिका प्रसाद. *साहित्यिक निबन्ध*. मीनाक्षी प्रकाशन, 1981.

स्वरूप, देवेंद्र. *संस्कृति एक नाम-रूप अनेक*. प्रभात प्रकाशन, 2016.

त्रिपाठी, विश्वनाथ. *हिन्दी साहित्य का सरल इतिहास*. ओरियंट ब्लैक स्वान, 2011.

पत्र-पत्रिकाएँ

अग्रवाल, गिरिराजशरण. *शोध दिशा*, मार्च 2019, अंक 44.

कुमार, अशोक तथा गुरमीत सिंह. *परिशोध*, 2018, अंक 61-62.

गौरीनाथ. साहित्य, "संस्कृति और विचार का त्रैमासिक." *बया*, मार्च 2019, अंक 10.

दुबे, अभय कुमार. "समय समाज संस्कृति." *प्रतिमान*, जुलाई-दिसम्बर 2018, अंक 12.

नवल, हरीश. "साहित्य, कला एवं संस्कृति का संगम." *गगनांचल*, मई-अगस्त 2019, वर्ष: 42 अंक 3-4.

पाण्डेय, प्रो. श्रीनिवास. *प्रज्ञा*, 2018-19, अंक 64.

भदानी, बी. एल. तथा राजेन्द्र कुमार. *जूनी ख्यात*, जनवरी-दिसम्बर 2018, वर्ष : 7 अंक 2.

परिशिष्ट

शोध पत्र प्रकाशन एवं प्रस्तुतीकरण

PARISHODH JOURNAL

UGC-CARE List - Group I

An ISO : 7021 - 2008 Certified Journal

ISSN NO: 2347-6648 / Web : http://www.parishodhpu.com// e-mail : submitparishodh@gmail.com

CERTIFICATE OF PUBLICATION

This is to certify that the paper entitled

विषय- 21वीं सदी के हिन्दी निबंधों में राष्ट्रीय एकता बदलते संदर्भ में

Authored by

मनप्रीत सिंह संधू (शोधार्थी)

From

शोध निर्देशक (डॉ. विनोद कुमार)
लवली प्रोफैशनल यूनिवर्सिटी, जालंधर (पंजाब)

Has been published in

PARISHODH JOURNAL, VOLUME XI, ISSUE II, FEBRUARY- 2020

ज्ञान-विज्ञान विमुक्तये
UGC
University Grants Commission

6.3
IMPACT FACTOR

Siva N. Ramachandra
Editor-In-Chief
PARISHODH JOURNAL
http://www.parishodhpu.com

International Organization for Standardization
ISO 7021-2008

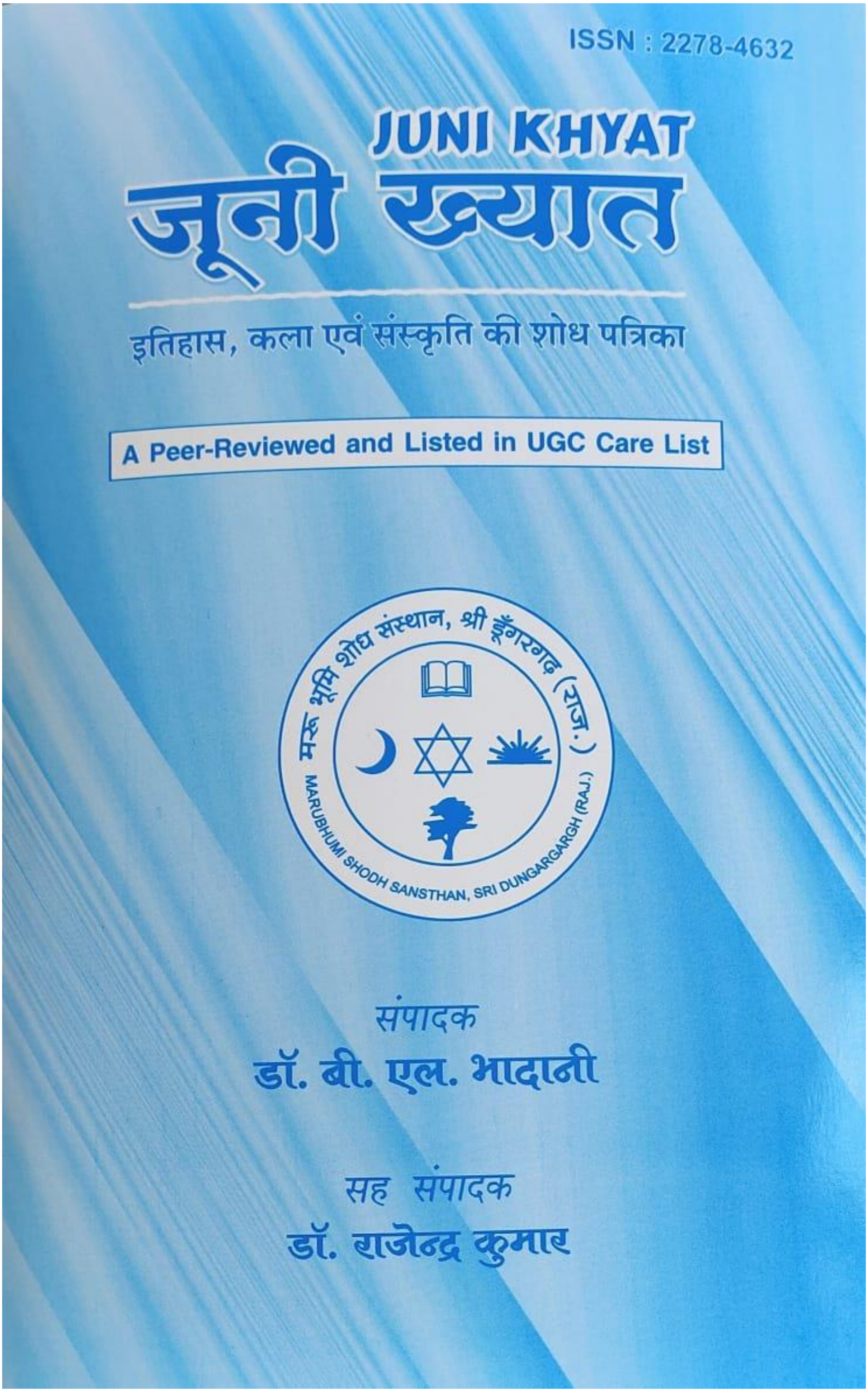
ISSN : 2278-4632
JUNI KHYAT
जूनी ख्यात
इतिहास, कला एवं संस्कृति की शोध पत्रिका
A Peer-Reviewed and Listed in UGC Care List
मरु भूमि शोध संस्थान, श्री डूँगरगढ़ (राज.)
MARUBHUMI SHODH SANSTHAN, SRI DUNGARGARGH (RAJ.)
संपादक
डॉ. बी. एल. भादानी
सह संपादक
डॉ. राजेन्द्र कुमार

अनुक्रम

- शान्तिकाल में अन्तर्राष्ट्रीय संबंध 7
  डॉ. रीतेश व्यास
- उच्च शिक्षा में राष्ट्रीय संस्कृति के मूल्यों की उपादेयता 17
  डॉ. अविनाश पारीक
- उत्तर-पश्चिम राजस्थान में पागी व्यवस्था 26
  डॉ. सुखाराम
- मारवाड़ रियासत की मिर्धा डाक 36
  डॉ. उषा लामरोर
- 21वीं शताब्दी के हिन्दी निबंधों में धर्म और नीति 47
  मनप्रीत सिंह संधू
- सोशल मीडिया के दौर में हिंदी एवं राष्ट्रवाद का समन्वय : एक अध्ययन 60
  विशाल शर्मा
- अजमेर में प्रदर्शित ब्रज मण्डल का अप्रकाशित शिल्प वैभव 68
  सुश्री अदिति गौड़
- An Introduction to Archival Sources of South Eastern Rajasthan (C. 1672-1820) 72
  Narayan Singh Rao
- Religio-Cultural Route from Agra to Ajmer in Mughal India 87
  Dr. Nusrat Yasmeen

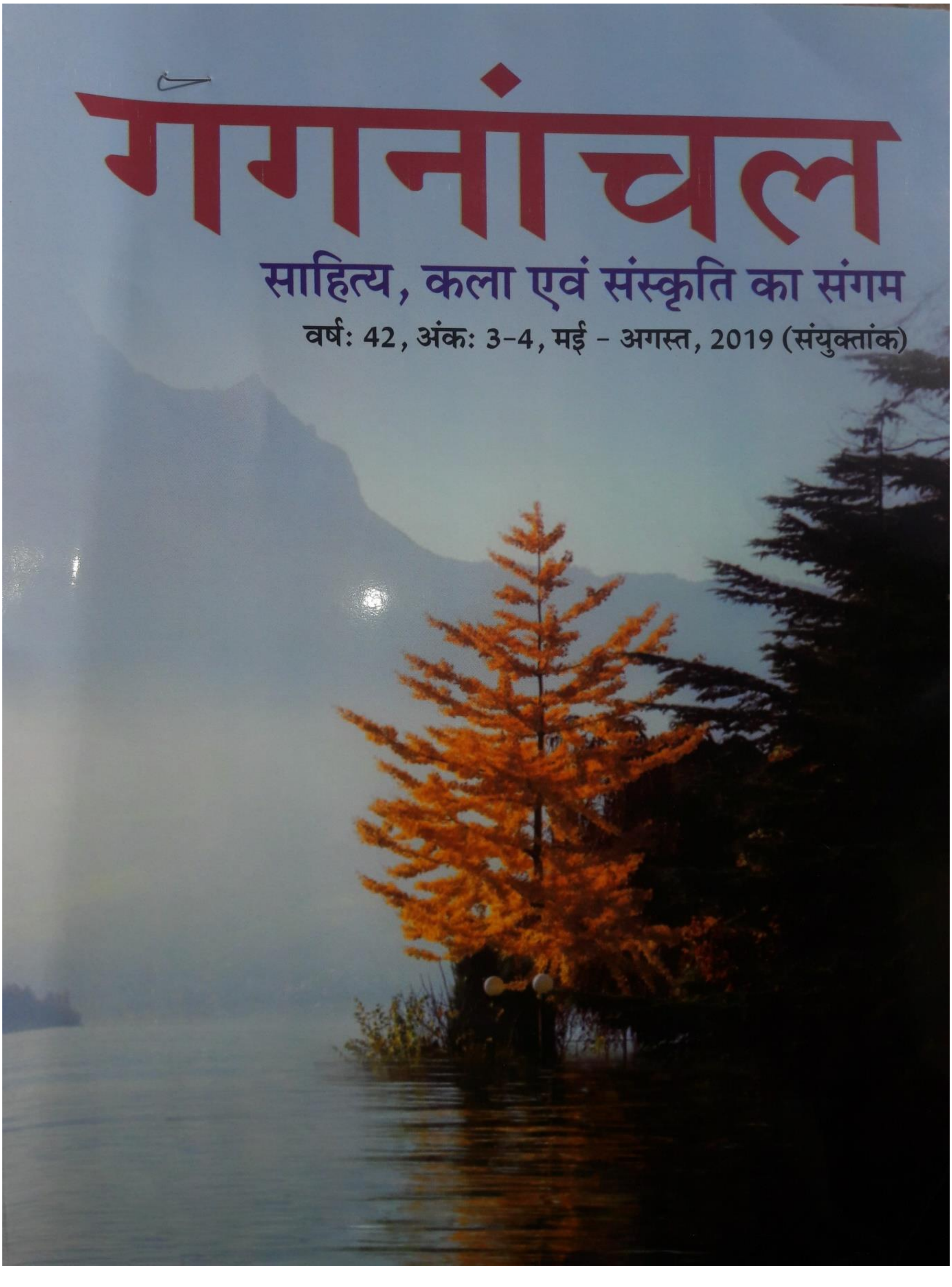
गगनांचल
साहित्य, कला एवं संस्कृति का संगम
वर्ष: 42, अंक: 3-4, मई - अगस्त, 2019 (संयुक्तांक)

21वीं सदी के निबंध साहित्य में संबंधों का बदलता स्वरूप

मनप्रीत सिंह संधू

"आज जो अनेकमुखी अँधेरा हमारे चारों ओर सक्रिय है उसने हमारी जीवनगत आस्थाओं को खण्डित कर धूमिल किया है। विश्वास के बिरवे इस सड़ांध और सीलन भरे वातावरण में मुरझा रहे हैं। ऐसे बदलाव के समय में यह निबंध दीये की लौ को उकसाने का काम कर रहे हैं। उजाले की पक्षधरता में रचे गए इन निबंधों में जीवन का शाश्वत संदेश समाया हुआ है।"

सम्पर्क: विलेज-लक्खोवाली, पोस्ट ऑफिस-चकबुओं के, तहसील-जलालाबाद, जिला: फाजिल्का (पंजाब)-152033 मो. 9815805256, ईमेल- ms4003555@gmail.com

वर्तमान समय स्वार्थ का समय है, इन स्थितियों को पैदा भी मानव ने ही किया है अपने स्वार्थ के लिए ही काम करना और धन और अपने जीवन के प्रति अधिक आधुनिक होना ही इसका प्रमुख कारण है। इस तरह वर्तमान में निबंधों का अध्ययन करके इन समस्याओं पर विचार-विमर्श करके इनके निवारण करने के लिए कार्य किया गया है। इस शोध पत्र में शोधार्थी इस निष्कर्ष तक पहुँचने का प्रयास करेगा मानव चाहे व्यक्तिक, चाहे सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक कोई भी मूल्य अपनाए वे सम्पूर्ण मानवीय जाति को मान्य हों, जिससे समाज एंव विश्व के कल्याण को कोई चोट न लगे।

प्रस्तावना

समाज एक से अधिक लोगों के समुदायों से मिलकर बने एक वृहद समूह को कहते हैं जिसमें सभी व्यक्ति मानवीय क्रियाकलाप करते हैं। जो मानवीय क्रियाकलाप में आचरण, सामाजिक सुरक्षा और निर्वाह आदि की क्रियाएँ सम्मिलित होती हैं। समाज लोगों का एक ऐसा समूह होता है जो अपने अंदर के लोगों के मुकाबले अन्य समूहों से काफी कम मेलजोल रखता है। एक व्यक्ति से मिलकर एक परिवार बनता है और परिवार से मिलकर एक गाँव बनता है फिर सभी का समूह मिलकर एक समाज बनता है। किसी समाज के अंतर्गत आने वाले व्यक्ति एक दूसरे के प्रति परस्पर स्नेह तथा सहृदयता का भाव रखते हैं। दुनिया के सभी समाज अपनी एक अलग पहचान बनाते हुए अलग-अलग रस्मों-रिवाजों का पालन करते हैं।

समाज के अर्थ को परिभाषित करते हुए कालिका प्रसाद ने अपने ग्रन्थ 'वृहत हिन्दी कोश' में समाज का अर्थ इस प्रकार बताया है- ''समाज मिलना, एकत्र होना, समूह, संघ, दल, सभा, समिति, आधिक्य, सम्मान करने वालों का समूह, विशेष उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संगठित संस्था, ग्रहों का योग, हाथी'' (प्रसाद 441) 'साहित्य का समाजशास्त्र' पुस्तक में डॉ. नगेन्द्र के अनुसार- ''समाज का अभिप्राय सामुदायिक जीवन की ऐसी अनवरत नियामक व्यवस्था से है जिसका निर्माण व्यक्ति पारस्परिक हित तथा सुरक्षा के निमित जाने-अनजाने कर लेते हैं''(नगेन्द्र 10)

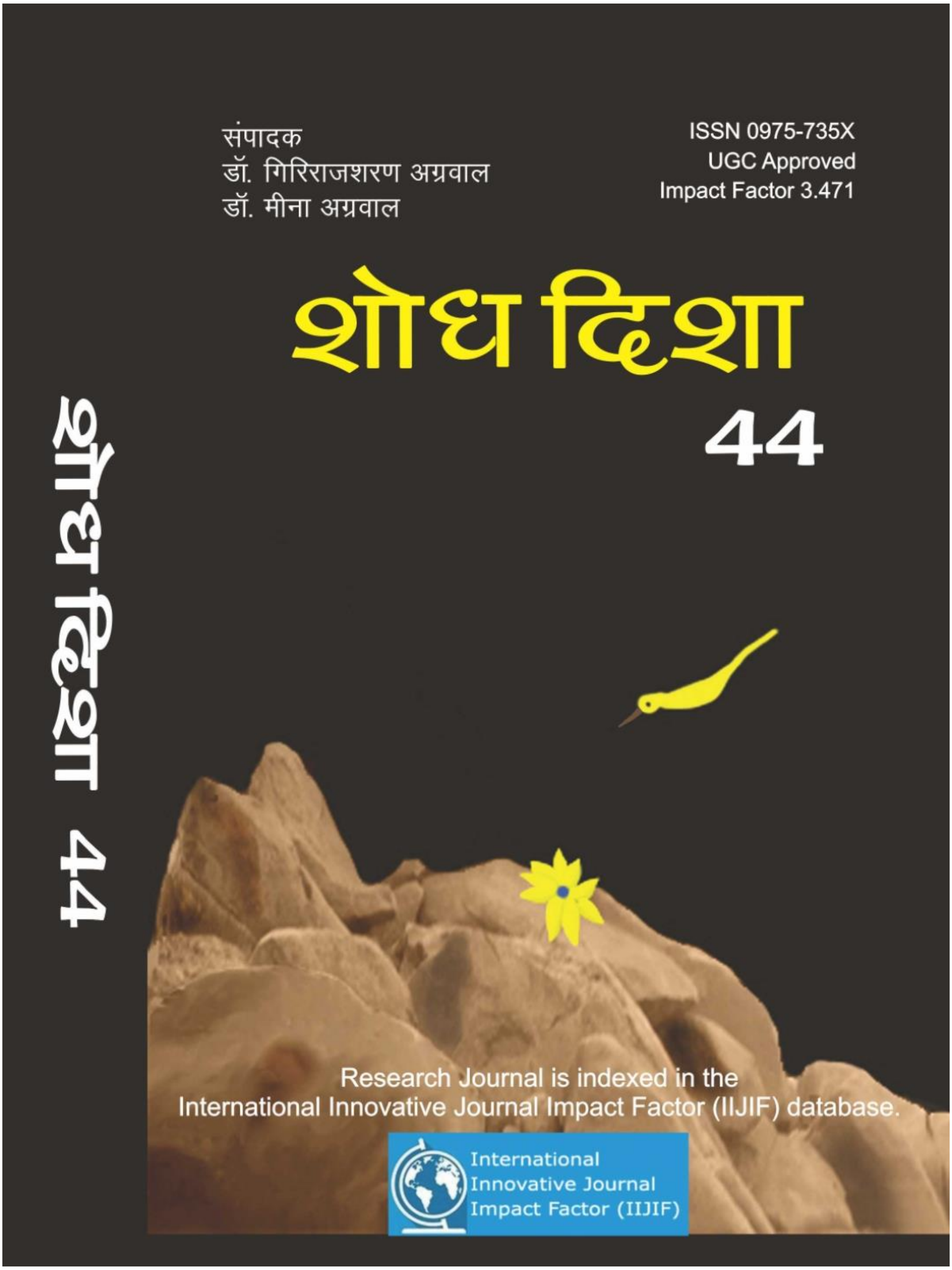
संपादक
डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल
डॉ. मीना अग्रवाल
ISSN 0975-735X
UGC Approved
Impact Factor 3.471
शोध दिशा
44
शोध दिशा 44
Research Journal is indexed in the
International Innovative Journal Impact Factor (IIJIF) database.
International
Innovative Journal
Impact Factor (IIJIF)

डॉ॰ श्यामसुंदर दुबे के ललित निबंधों में ग्रामीण संस्कृति का बदलता स्वरूप

मनप्रीत सिंह, शोधार्थी
लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, जालंधर (पंजाब)

प्रस्तावना

बहुमुखी प्रतिभा के धनी डॉ॰ श्यामसुंदर दुबे जी का जन्म 12 दिसंबर 1944 को दमोह जिले के बर्तलाईन नामक गाँव में हुआ। इस प्रकार आपका जन्म ग्रामीण परिवेश में हुआ। परिणामस्वरूप ग्रामीण परिवेश, सभ्यता, संस्कृति, समाजसेवा के प्रति प्यार और जातिवाद तथा रूढ़िवादिता के प्रति विद्रोह की भावना पोषित होती रही। आज का युग बदलाव का युग है। इसी तरह उन्होंने अपने निबंधों में ग्रामीण संस्कृति के बदलते स्वरूप को दर्शाया है। आज हम जिन स्थितियों से गुजर रहे हैं, हमारे जीवन जीने की शैली में और मानवीय जीवनमूल्यों में बहुत परिवर्तन हो रहा है। परिवर्तन के इस युग ने जीवन और साहित्य को बहुत प्रभावित किया है। मानव की बुद्धि समय के साथ वैज्ञानिक हुई। इस परिप्रेक्ष्य में डॉ॰ श्यामसुंदर दुबे का समग्र साहित्य एक संपूर्ण दस्तावेज है। आपने अपने समग्रसाहित्य के द्वारा ग्राम्य-जीवन की संवेदनाओं तथा काल-चेतना के प्रवाह को शब्दों के द्वारा समेटकर हमारे रोजमर्रा के जीवन में घटित होनेवाली छोटी-बड़ी घटनाओं को, मानव-जीवन की सच्चाइयों और गहराइयों को हमारे सामने प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

डॉ॰ श्यामसुंदर दुबे का रचना-संसार विस्तृत है। सभी विधाओं में आपके आज तक चालीस से ज्यादा ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं। ललित निबंध में भाव और विचार एक साथ चलते हैं। ललित निबंधकार के पास एक गहरा ताप होता है। यह एक ऐसी विधा है, जिसमें एक साथ अनेक विधाएँ काम करती हैं। ललित निबंधकार बुद्धि और भाव दोनों को साथ लेकर चलता है। जहाँ तक भाषा की बात है, डॉ॰ श्यामसुंदर दुबे जी भाषा के जादूगर हैं। वह भाषा को जिस रूप में जिस तरह प्रस्तुत करना चाहते हैं–भाषा उनके समक्ष उसी रूप में प्रस्तुत होती है। उनके गद्य में काव्य का स्वाद मिलने लगता है।

कालमृगया

'कालमृगया' डॉ॰ श्यामसुंदर दुबे का प्रथम ललित-निबंध संकलन है। 1980 में रचना प्रकाशन इलाहाबाद से प्रकाशित। इस निबंध संग्रह में 24 ललित-निबंध संगृहीत हैं। इस निबंध संकलन के अधिकांश निबंध ऋतुपरक हैं। ग्रीष्म, पावस, शरद और वसंत ऋतु बनाकर रचे गए हैं। इन निबंधों में ग्रामीण संस्कृति के बदलते स्वरूप की एक-एक झलक पाठकों के समक्ष जीवंत होकर खड़ी है। इस संकलन में डॉ॰ दुबे की कल्पना का विस्तार है। उनकी भाषा किंचित क्लिष्ट

 ISSN 0975-735X

Certificate of Publication

INTERNATIONAL JOURNAL OF RESEARCH AND ANALYTICAL REVIEWS (IJRAR) | E-ISSN 2348-1269, P- ISSN 2349-5138

An International Open Access Journal

The Board of

International Journal of Research and Analytical Reviews (IJRAR)

Is hereby awarding this certificate to

Manpreet singh sandhu

In recognition of the publication of the paper entitled

SANSKRITI KE VIVIDH AAYAM

Published In IJRAR (www.ijrar.org) ISSN UGC Approved & 5.75 Impact Factor

Volume 6 Issue 2 May 2019

R.B.Joshi

EDITOR IN CHIEF

PAPER ID : IJRAR19K1482

Registration ID : 202826

UGC and ISSN Approved - International Peer Reviewed Journal, Refereed Journal, Indexed Journal, Impact Factor: 5.75 Google Scholar

INTERNATIONAL JOURNAL OF RESEARCH AND ANALYTICAL REVIEWS | IJRAR

An International Open Access Journal / Approved by ISSN and UGC

Website: www.ijrar.org | Email id: editor@ijrar.org | ESTD: 2014

IJRAR | E-ISSN 2348-1269, P- ISSN 2349-5138

RESEARCH REVIEW JOURNALS

RESEARCH REVIEW
International Journal of Multidisciplinary

e-ISSN: 2455-3085
Impact Factor: 5.214

ज्ञान-विज्ञान विमुक्तये

UGC Approved Journal
Journal No.: 44945

Journal is Indexed in
Google Scholar, IIJIF, SJIFactor, RESEARCH BIBLE, DRJI, GIF, UGC, Zenodo]

Issued w.e.f. Nov-2018 Issue

CERTIFICATE OF PUBLICATION

This is to certify that Research Paper/ Article/ Case Paper entitled

वर्तमान हिंदी निबंधों में सांस्कृतिक चेतना
(21वीं सदी के विशेष सन्दर्भ में)

Authored By

मनप्रीत सिंह

has been published in Volume-3 | Issue-12 | Dec-2018 in this International Peer Reviewed ISSN Indexed Online Research Journal.

Ref. No. RRJ2018031247
Issued Date: 10-Dec-2018
editor.rrjournals@gmail.com
www.rrjournals.com

RESEARCH REVIEW JOURNALS eISSN 2455-3085 AHMEDABAD

Chief Editor

Certificate Verification visit: http://rrjournals.com/View-Certificate

Research Review Journals All Rights Reserved

Alochana Chakra Journal ISSN NO:2231-3990

शोध-पत्र

विषय- 21वीं सदी के हिन्दी निबंधों में भक्ति और दर्शन

मनप्रीत सिंह संधू

शोध निर्देशक डॉ. विनोद कुमार

लवली प्रोफैशनल यूनिवर्सिटी, (पंजाब)

शोध सारांश

हमारे इस शोध पत्र का उद्देश्य है 21वीं सदी में भक्ति और दर्शन के बदलते स्वरूप को दर्शाना। वर्तमान में कुछ ऐसी स्थितियाँ पैदा हुई है जिसके कारण आज भक्ति और दर्शन का स्वरूप बदल चुका है इसमें बदलाव आ चुका है। इन स्थितियों को पैदा भी मानव ने ही किया है अपने स्वार्थ के लिए केवल काम करना केवल मात्र धन और अपने जीवन के प्रति अधिक आधुनिक होना ही इसका प्रमुख कारण है। इस तरह वर्तमान में निबंधों का अध्ययन करके इन समस्याओं पर विचार-विमर्श करके इनके निराकरण करने के लिए कार्य किया गया है। इस शोध पत्र में शोधार्थी इस निष्कर्ष तक पहुँचने का प्रयास करेगा मानव चाहे व्यक्तिक, चाहे सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक कोई भी मूल्य अपनाए वे सम्पूर्ण मानवीय जाति एवं संतति को मान्य हों, जिससे समाज एंव विश्व के कल्याण को कोई चोट न लगे।

प्रस्तावना

भक्ति शब्द की व्युत्पति 'भज' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है 'सेवा करना' या 'भजन करना' है। भक्ति से तात्पर्य है अपने आराध्य के प्रति निष्ठा तथा विश्वाश। भक्ति भजन है, किसका भजन, ब्रह्म का, महान का। मानव चिरकाल से ही ब्रह्म में विश्वाश करता आया है। भक्ति साधन तथा साध्य द्विविध है। साधक साधन में ही जब रस लेने लगता है, उसके फलों की ओर से उदासीन हो जाता है। ईश्वर के प्रति जो परम प्रेम है उसे ही भक्ति कहा जाता है। भारतीय धार्मिक साहित्य में भक्ति का उदय वैदिक काल से ही दिखाई पड़ता है। ईश्वर के प्रति प्रेम सेवा करना या भजन करना ही भक्ति है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी अपनी पुस्तक 'चिन्तामणि (पहला भाग)' में भक्ति के बारे में कहते हैं की "भक्ति का स्थान मानव-हृदय है, वहाँ श्रद्धा और प्रेम के संयोग से उसका प्रादुर्भाव होता है।"(शुक्ल 38) वस्तुत: भक्ति मानव हृदय की श्रद्धा एवं प्रेम से युक्त भाव-भूमि है, जिसके अंतर्गत वह अपने ईष्ट के स्वरूप से अपना पूर्ण तादात्म्य स्थापित करता है। उपासना शब्द भी भक्ति के अर्थ में प्रयुक्त होता है, जिसका अर्थ है – निकट बैठना अर्थात मानसिक रूप से अपने इष्ट का सान्निध्य प्राप्त करना। "भक्ति में किसी ऐसे सान्निध्य की प्रवृति

FDC- Reference No. 6

Date 25.09.2019

Faculty Development Centre

Under Pandit Madan Mohan Malaviya National Mission on Teachers and Teaching (PMMMNMTT),
Department of Higher Education, MHRD., Govt. of India.

GURU NANAK DEV UNIVERSITY, AMRITSAR

Ministry of Human Resource Development
सत्यमेव जयते
MHRD

COMMEMORATING 50 GOLDEN JUBILEE year

MHRD SPONSORED NATIONAL WORKSHOP

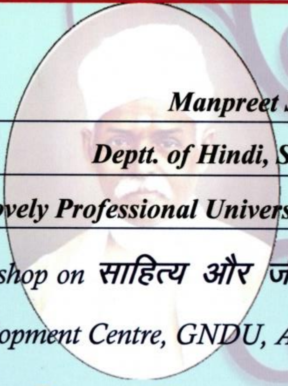

This is to certify that Dr./Mr./Ms. **Manpreet Singh Sandhu**

Designation **Research Scholar** *at* **Deptt. of Hindi, School of Social Science and Languages**

affiliated to **Lovely Professional University, Phagwara**

participated in National Interdisciplinary Workshop on **साहित्य और जीवन–मूल्य** *conducted from* **19.09.2019** *to* **25.09.2019** *at UGC-Human Resource Development Centre, GNDU, Amritsar.*

Project Coordinator

Course Coordinator

Vice-Chancellor

खालसा कॉलेज फॉर वूमैन

सिविल लाईन्ज़, लुधियाना

एवं

केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा

के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित

एक-दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी

दिनांक 05 नवम्बर 2019

हिन्दी साहित्य में विभिन्न विमर्शों की भूमिका

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्री/श्रीमती/डॉ/सुश्री मनप्रीत सिंह संधू, शोधार्थी लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, फगवाड़ा ने दिनांक **05 नवम्बर 2019** को हिन्दी विभाग, खालसा कॉलेज फॉर वूमैन, सिविल लाईन्ज़, लुधियाना द्वारा आयोजित एक-दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी में अध्यक्ष/बीज-वक्ता/विषय-विशेषज्ञ/पत्र वाचक/प्रतिभागी के रूप में भाग लिया तथा अपना वैचारिक योगदान दिया। इन्होंने संगोष्ठी में वर्तमान हिन्दी निबंध साहित्य में सांस्कृतिक चेतना और विभिन्न विमर्शों मे भूमिका विषय पर शोध-पत्र प्रस्तुत किया।

मुक्ति गिल		कामिनी साहिर
डॉ. मुक्ति गिल	प्रो. नन्द किशोर पाण्डेय	डॉ. कामिनी साहिर
प्राचार्या एवं	निदेशक	विभागाध्यक्षा एवं
संगोष्ठी संरक्षक	केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा	संगोष्ठी संयोजिका

आयुक्तालय कॉलेज शिक्षा, राजस्थान

एवम्

संगोष्ठी/ कार्यशाला समिति

डॉ. भीमराव अम्बेडकर राजकीय महाविद्यालय, श्रीगंगानगर (राज.)

राष्ट्रीय संगोष्ठी

वैश्विक पर्यावरण संकट और सामाजिक साहित्यिक चिन्तन

15 नवम्बर 2019

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्री/सुश्री/श्रीमती/डॉ. मनप्रीत सिंह संधू, शोधार्थी, लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी फगवाड़ा पंजाब ने डॉ. भीमराव अम्बेडकर राजकीय महाविद्यालय, श्रीगंगानगर के तत्त्वावधान में आयोजित ''वैश्विक पर्यावरण संकट और सामाजिक साहित्यिक चिन्तन'' विषयक एक दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी में विषय विशेषज्ञ/सत्राध्यक्ष/मुख्य वक्ता/पत्र प्रस्तोता/प्रतिभागी/सत्र संचालक/सदस्य आयोजक मण्डल के रूप में 21वीं सदी के हिन्दी निबन्ध साहित्य में प्रकृति और पर्यावरण विषय पर शोध पत्र प्रस्तुत किया/व्याख्यान दिया /कार्य किया।

डॉ. मदन सिंह पूनिया	डॉ. घनश्याम बैरवा	डॉ. नवज्योत भनोत	डॉ. गोपीराम शर्मा	डॉ. भूपेन्द्र कुमार महेन्द्रा
संरक्षक एवं प्राचार्य	संयोजक	सह-संयोजक	आयोजन सचिव	आयोजन सह-सचिव

माउंट कार्मेल कॉलेज, स्वायत्त, बैंगलूरू

५८, पैलेस रोड, वसन्तनगर, बैंगलुरू–५६००५२

हिन्दी विभाग द्वारा आयोजित

द्वि–दिवसीय अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी 'प्रवासी साहित्य एवं हिन्दी भाषा का महत्व'

दिनांक ७,८ जनवरी २०१९

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि मनप्रीत सिंह

विश्वविद्यालय/महाविद्यालय लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी जालन्धर

ने दि.७ तथा ८ जनवरी २०१९ को 'प्रवासी साहित्य एवं हिन्दी भाषा का महत्व'

विषय पर आयोजित द्वि–दिवसीय अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी में अतिथि/सत्राध्यक्ष/विषय प्रवर्तक/आलेख वाचक/प्रतिभागी

के रूप में उपस्थित रहकर सक्रिय सहयोग प्रदान किया तथा

प्रवासी साहित्यकार एवं उनका साहित्य

विषय पर शोध आलेख प्रस्तुत किया। सन्मानार्थ यह प्रमाणपत्र दिया जाता है।

Madhu

डॉ. मधुछन्दा चक्रवर्ती
(सह–संयोजिका)

डॉ. कोयल बिश्वास
(विभागाध्यक्ष एवं संयोजिका)

Sr. Arpana

डॉ. सिस्टर अर्पणा
(प्राचार्या)